क्रांतिकारी
कोश

इस श्रमसिद्ध व प्रज्ञापुष्ट ग्रंथ **क्रांतिकारी कोश** में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सामान्यतया भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन का काल १८५७ से १९४२ ई. तक माना जाता है; किंतु प्रस्तुत ग्रंथ में इसकी काल-सीमा १७५७ ई. (प्लासी युद्ध) से लेकर १९६१ ई. (गोवा मुक्ति) तक निर्धारित की गई है। लगभग दो सौ वर्ष की इस क्रांति-यात्रा में उद्‌भट प्रतिभा, अदम्य साहस और त्याग-तपस्या की हजारों प्रतिमाएँ साकार हुईं। इनके अलावा राष्ट्रभक्त कवि, लेखक, कलाकार, विद्वान् और साधक भी इसी के परिणाम-पुष्प हैं।

पाँच खंडों में विभक्त पंद्रह सौ से अधिक पृष्ठों का यह ग्रंथ क्रांतिकारियों का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। क्रांतिकारियों का परिचय अकारादि क्रम से रखा गया है। लेखक को जिन लगभग साढ़े चार सौ क्रांतिकारियों के फोटो मिल सके, उनके रेखाचित्र दिए गए हैं। किसी भी क्रांतिकारी का परिचय ढूँढ़ने की सुविधा हेतु पाँचवें खंड के अंत में विस्तृत एवं संयुक्त सूची (सभी खंडों की) भी दी गई है।

भविष्य में इस विषय पर कोई भी लेखन इस प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथ की सहायता के बिना अधूरा ही रहेगा।

क्रांतिकारी कोश

द्वितीय खंड

क्रांतिकारी कोश

द्वितीय खंड

श्रीकृष्ण 'सरल'

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001 : 2000 प्रकाशक
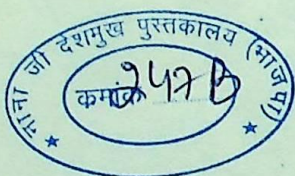
प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
४/१९ आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

संस्करण • २०१२

मुद्रक • भानु प्रिंटर्स, दिल्ली

मूल्य • चार सौ रुपए (द्वितीय खंड)
दो हजार रुपए
(पाँच खंडों का सेट)

KRANTIKARI KOSH (Encyclopaedia of Indian Freedom Fighters)
by Shrikrishna 'Saral'
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2

Vol II	Rs. 400.00	ISBN 81-7315-233-0
Set of five Vols.	Rs. 2000.00	ISBN 81-7315-237-3

e-mail: prabhatbooks@gmail.com

अनुक्रम

(अमेरिका तथा कनाडा में गदर पार्टी तथा प्रथम विश्वयुद्ध युग के क्रांतिकारी)

क्रांतिकारी कोश के पाँचों खंडों की संयुक्त सूची
(प्रत्येक क्रांतिकारी अकारादि क्रम से)
के लिए देखें—
'क्रांतिकारी कोश : पंचम खंड' के अंत में।

★ अतीन राय ★ प्रबोध विश्वास ★ मोहिनी भट्टाचार्य ★ शिशिर घोष ★ सुरेश चक्रवर्ती

फोन की घंटी बजी और दुकानदार ने चोंगा उठाकर अपने कान से लगाया। आवाज सुनाई दी—

''हैलो! क्या सेठ साहब हैं?''

चोंगा कान से लगानेवाले ने उत्तर दिया—

''हाँ, मैं सेठ बोल रहा हूँ। आप कौन हैं और कहाँ से बोल रहे हैं?''

उत्तर मिला—

''मैं शंभुनाथ पंडित रोड, भवानीपुर, कलकत्ता से दलाल बोल रहा हूँ।''

''अच्छा-अच्छा! कहिए, क्या समाचार हैं?''

''समाचार यह है कि पुराने चावल यहाँ उपलब्ध हैं। यदि लेना हो तो जल्दी आ जाएँ। ग्राहक बहुत हैं।''

''अच्छा-अच्छा! आप वहाँ हमारी प्रतीक्षा कीजिए।'' सेठ ने फोन का चोंगा रख दिया और अंदर चला गया। अंदर कुछ कारीगर अगरबत्तियाँ बनाने में व्यस्त थे। सेठ ने उनके पास जाकर धीरे से कहा—''पुराने चावल शंभुनाथ पंडित रोड पर बिक रहे हैं। क्या खरीदना चाहते हो?'' अगरबत्तियाँ बनानेवाले कारीगर संकेत समझ गए और उनके चेहरों पर प्रसन्नता दौड़ गई। वे सभी लोग क्रांतिकारी थे और सेठ भी। संकेत का अर्थ था—'हमारा पुराना दुश्मन वसंतकुमार चटर्जी इस समय यहाँ है।' फोन करनेवाला दलाल भी इसी दल का एक क्रांतिकारी सदस्य था।

बिना देर किए हुए क्रांतिकारियों ने एक टैक्सी की और भवानीपुर के शंभुनाथ पंडित रोड के चौराहे पर पहुँच गए। उन्होंने टैक्सी छोड़ दी। उन्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी कि दलाल उनके पास पहुँच गया। उसने बताया कि पास की गली में एक बड़ी चोरी हो गई है, उसीकी जाँच करने के लिए डिप्टी सुपरिंटेंडेंट

पुलिस वसंतकुमार चटर्जी एक अंगरक्षक के साथ वहाँ उपस्थित हुआ है। सेठ और दलाल नामधारी क्रांतिकारियों को मिलाकर कुल पाँच क्रांतिकारी उस समय वहाँ उपस्थित थे। वे थे—सुरेश चक्रवर्ती, प्रबोध विश्वास, अतीन राय, शिशिर घोष और मोहिनी भट्टाचार्य। योजना बन गई कि जहाँ वसंतकुमार चटर्जी तफतीश कर रहा है, उसीके निकट सुरेश चक्रवर्ती 'बचाओ! बचाओ!' कहकर सहायता के लिए चिल्लाएगा तथा शेष चारों उसे मारने-पीटने का अभिनय करेंगे और यदि वसंतकुमार चटर्जी सहायता के लिए दौड़ता है तो वे चारों उसपर गोलियाँ दागेंगे।

योजना के अनुसार घटनास्थल से कुछ हटकर सुरेश चक्रवर्ती ने 'बचाओ! बचाओ!' कहकर चिल्लाना प्रारंभ कर दिया और बाकी लोग उसे पीटने लगे। शोर सुनकर आसपास के लोग भी दौड़े और अपने अंगरक्षक के साथ डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस वसंतकुमार चटर्जी भी वहाँ पहुँच गया। क्रांतिकारियों की मुराद पूरी हो गई। चारों क्रांतिकारियों ने अपनी पिस्तौलें निकालकर उसपर गोलियों की बौछार छोड़ दी। पुलिस अफसर की तत्काल मृत्यु हो गई। उसका अंगरक्षक भी घायल हो गया और उसकी मृत्यु अस्पताल में हो गई।

जो कई बार क्रांतिकारियों के हाथों में आकर भी बच जाता था, आखिर वह क्रूर पुलिस अफसर वसंतकुमार चटर्जी ३० जून, १९१६ को उनके द्वारा समाप्त कर दिया गया। कोई भी क्रांतिकारी पुलिस के हाथ नहीं आ सका।

□

★ अत्तरसिंह ★ अब्दुल रज्जाक खाँ ★ इम्तियाज अली ★ जफर अली ★ तँवरसिंह ★ तन्नरसिंह ★ बग्गतसिंह ★ मुंशी ख़ाँ ★ रल्लासिंह ★ रसूला ★ रुकनुद्दीन ★ वीरसिंह ★ सुलेमान ★ हजारासिंह

लगभग तीन सौ भारतीय क्रांतिकारियों से भरा हुआ एक जहाज अमेरिका से चला। ये क्रांतिकारी गदर के द्वारा स्वाधीनता का युद्ध लड़ने के लिए भारत जा रहे थे। इन क्रांतिकारियों के अतिरिक्त कुछ अन्य यात्री भी उस जहाज में थे और वे भी क्रांति मंत्र से दीक्षित होते जा रहे थे। जहाज बीच के बंदरगाहों पर रुक-रुककर क्रांति की चिनगारियाँ सुलगाता हुआ जा रहा था। आखिर यह जहाज

सिंगापुर जा पहुँचा।

भारतीय क्रांतिकारी जहाज से उतरकर शहर के अंदर गए और उन्होंने वहाँ भारतीय फौजियों के साथ संपर्क स्थापित करने का यत्न किया। इस यत्न में उन्हें सफलता मिली। उस समय सिंगापुर का वातावरण क्रांतिकारियों के बहुत अनुकूल था। गदर पार्टी के महामंत्री भाई संतोखसिंह क्रांति का अच्छा वातावरण सिंगापुर में बना गए थे। उनका प्रभाव वहाँ शेष था। 'गदर' नामक अखबार की प्रतियाँ सिंगापुर पहुँचती रहती थीं और यह अखबार विद्रोह की आग भड़काने के लिए हवा का काम कर रहा था। तुर्क क्रांतिकारियों से भी विद्रोह की प्रेरणा मिल रही थी और वहाँ के मुल्ला-मौलवियों ने विद्रोह के लिए फतवा दे रखा था। इस फतवे की फोटो कॉपियाँ तैयार करवाकर उनका उपयोग फौज के मुसलमान भाइयों में किया जा रहा था। ऐसे ही समय भारतीय क्रांतिकारियों से भरा हुआ जहाज सिंगापुर जा पहुँचा।

उधर सिंगापुर की छावनियों में गोरों की संख्या बहुत कम थी। विश्वयुद्ध के विभिन्न मोरचों पर उन्हें भेज दिया गया था। भारतीयों की एक बटालियन पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री वहाँ थी, जिसमें सभी लोग मुसलमान थे और उन सबको भारत से भरती किया गया था। मिस्र और तुर्की से प्रेरणा पाकर ये मुसलमान फौजी भाई भी भारत माता को आजाद कराने के लिए उतावले हो रहे थे। यह स्थिति भी क्रांतिकारियों के लिए बहुत अनुकूल थी।

भारतीय क्रांतिकारियों ने सिंगापुर में उपस्थित फौज के भारतीय अफसरों और सैनिकों को एक सभाभवन में एकत्रित किया। उनकी संख्या लगभग दो सौ होगी। कुछ भारतीय नागरिक भी थे। क्रांतिकारियों ने अपने प्रतिनिधि के रूप में झाँसीवाले पं. परमानंद से उद्बोधन के लिए आग्रह किया। पं. परमानंद ओजस्वी वक्ता थें और सिंगापुर में पहले ही वे अपना बहुत अच्छा प्रभाव छोड़कर गए थे, जब अमेरिका जाते हुए वहाँ उन्होंने 'गीता' के कर्मयोग पर कई प्रभावशाली भाषण दिए थे।

पं. परमानंद ने गदर पार्टी के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए आजादी के लिए किए गए प्रयत्नों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए लोगों की भावनाओं को उभारना प्रारंभ कर दिया—

"...अगर तुम्हारी आँखों नें प्रताप और शिवाजी की दृष्टि है, दिल्ली के बूढ़े बादशाह की दृष्टि है तो आँखें खोलकर देखो, बदला लेने की वीर भावनाओं से ऊपर नजर उठाकर देखो। आजादी के दीवाने, तुम्हारे बहादुर पूर्वज तुम्हें पुकार रहे हैं, तुम्हें ललकार रहे हैं।"

ऐसे ओजस्वी विचार उन फौजियों को कहाँ सुनने को मिलते थे। उनपर नशा जैसा छाने लगा। उस नशे पर और नशा चढ़ाने के लिए पं. परमानंद ने कहना जारी रखा—

"अगर हमारा खून असली है तो वह हमारी भावनाओं की टक्कर लगते ही उछल पड़ेगा। अगर न उछले तो समझना कि हमारे रक्त में अवश्य कुछ फर्क पड़ गया है। वीरोचित भावनाएँ यदि आपके पवित्र रक्त में हिलोर पैदा करती हैं तो वीरों को युद्ध से अधिक परीक्षा का स्थान कब मिलता है!"

पं. परमानंद ने फौजियों के रक्त को चुनौती दे दी थी। भला ऐसा कौन फौजी होता, जो अपने रक्त की शुद्धता को प्रमाणित करके न दिखाता! भाषण की समाप्ति पर लोगों के चेहरों पर एक ही भाव दिखाई दे रहा था—कहकर नहीं, करके ही दिखाएँगे।

क्रांति की चिनगारी सुलगाकर क्रांतिकारियों का जहाज सिंगापुर छोड़कर चला गया। जब वह जहाज पीनांग पहुँचा तो वहाँ के गवर्नर ने जहाज को रुके रहने का आदेश दिया। उनकी आज्ञा के बिना वह आगे नहीं जा सकता था। क्रांतिकारियों की समझ में नहीं आ रहा था कि उनके जहाज को कैद करके क्यों रखा गया है। वे लोग जब पीनांग के गुरुद्वारे में गए तो उन्हें पता चला कि सिंगापुर के भारतीय फौजियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह प्रारंभ करके अंग्रेजों की मार-काट प्रारंभ कर दी है। क्रांतिकारियों की छोड़ी हुई चिनगारी वहाँ ज्वाला का रूप धारण कर चुकी थी।

□

भारतीय रेजीमेंट को सिंगापुर से हांगकांग ले जाने के लिए जहाज तैयार खड़ा था। जहाज पर सामान लादा जा रहा था। वह १५ फरवरी सन् १९१५ का दिन था और समय अपराह्न तीन बजे का था। फौज को जहाज पर चढ़ाने के पहले सिंगापुर के कमांडिंग जनरल डी. रीड्यूड ने पाँचवीं पल्टन का निरीक्षण किया। सबकुछ ठीक पाया गया। अचानक ही कहीं से एक गोली चली और 'मारो फिरंगी को' का नारा उठ खड़ा हुआ। अंग्रेज अफसर सकते में आ गए। उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया गया और उनमें से दो-एक गोलियों के शिकार हो गए।

क्रांतिकारी तीन टोलियों में विभक्त हो गए। एक टोली अंग्रेज अफसरों के बंगलों की तरफ बढ़ी, दूसरी उधर बढ़ी जिस तरफ जर्मन नजरबंदियों को रखा गया था और तीसरी टोली बाजार की तरफ बढ़ी।

जो टोली कर्नल के बंगले की तरफ बढ़ी थी, उसे कुछ अधिक सफलता नहीं मिली; क्योंकि दो अंग्रेज भागकर उस तरफ पहले ही पहुँच गए थे और कैप्टेन

स्मिथ तथा 'मलाया स्टेट गाइड्स' के कुछ जवान बीमार कर्नल तथा उसके परिवार की रक्षा के लिए नियुक्त हो चुके थे।

क्रांतिकारियों की जो टोली नजरबंदियों के कैंप की तरफ बढ़ी, उसने पहरेदारों पर गोलियाँ चलानी प्रारंभ कर दीं। कुछ पहरेदार मारे गए और कुछ भाग गए। क्रांतिकारियों ने जर्मन बंदियों से कहा, आप लोग आजाद हैं, आप हमारा साथ दें। कुछ जर्मन बंदी तो क्रांतिकारियों की ओर हो गए, पर अधिकांश ने वहाँ से भागने से इनकार कर दिया और क्रांतिकारियों द्वारा दिए गए हथियार भी उन्होंने नहीं लिये।

क्रांतिकारियों की जो टोली बाजार की तरफ बढ़ी थी, उसे रास्ते में जो अंग्रेज लोग मिलते गए, उन्हें मारती चली।

विद्रोह की पहली गोली १५ फरवरी को चली थी। २० फरवरी तक गोलियाँ निरंतर चलती रहीं। सिंगापुर में क्रांतिकारियों की स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी। वे आसपास के प्रदेशों में भी फैलने लगे थे।

इधर विद्रोह का दमन करने के लिए भी तैयारियाँ होती रही थीं। 'मलाया स्टेट गाइड्स' अंग्रेजों के साथ थे। जोहौर रियासत के सुलतान से भी मदद माँगी गई। उन्होंने लगभग एक सौ पचास सैनिकों की एक टुकड़ी क्रांतिकारियों का दमन करने के लिए भेजी। अंग्रेजों की सहायता के लिए फ्रांसीसी, जापानी और रूसी लड़ाकू जहाज भी पहुँच गए। अब स्थिति अंग्रेजों के पक्ष में थी और क्रांतिकारी लोग भाग-भागकर जंगलों की तरफ जा रहे थे। उनमें से कुछ लोग गोलियों का शिकार भी हो चुके थे। मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था और बड़ी बेरहमी के साथ विद्रोह को कुचला जा रहा था।

३ मार्च, १९१५ को कोर्ट मार्शल द्वारा तीन क्रांतिकारियों को गोलियों से उड़ा देने का हुक्म हुआ। उन्हें सरेआम गोलियों से उड़ा दिया गया। वे थे—

१. **रसूला :** इसपर कैप्टेन ईजार्ड की हत्या का अभियोग था।

२. **इम्तियाज अली :** इसपर आरोप था कि इसने विद्रोहियों को हथियार दिए हैं।

३. **रुकनुद्दीन :** इसपर भी विद्रोहियों को हथियार देने का आरोप था।

१३ मार्च, १९१५ को पैंतालीस विद्रोहियों पर मुकदमा चला और उन सबको गोलियों से उड़ा दिया गया। गोलियों से उड़ाए जानेवाले चार अफसर भी थे—

१. हवलदार सुलेमान,

२. नायक मुंशी खाँ,

३. नायक जफर अली,

४. लांस नायक अब्दुल रज्जाक खाँ।

मुसलमानों के अतिरिक्त सात सिख सैनिकों को भी कोर्ट मार्शल करके गोलियों से उड़ा दिया गया। वे थे—

१. बग्गतसिंह,

२. अत्तरसिंह,

३. तन्नरसिंह,

४. रल्लासिंह,

५. हजारासिंह,

६. तँवरसिंह,

७. वीरसिंह।

आमने-सामने की भिड़ंतों में लगभग एक सौ तीन सैनिक और नागरिक क्रांतिकारियों की गोलियों के शिकार हुए।

भारत माता के सपूत अपनी बंदिनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए अपने जीवन की बलि दे गए।

□

★ अनुकूल चक्रवर्ती ★ अमृत सरकार

"एक बार हम अंग्रेज अत्याचारियों को भले ही छोड़ दें, पर हम उन हिंदुस्तानियों को नहीं छोड़ सकते जो अंग्रेजों के सामने दुम हिलाते हैं और आजादी के रास्ते में रोड़े बनकर हम क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करते या कराते हैं।"

ये वे विचार थे, जो तरुण क्रांतिकारी अनुकूल चक्रवर्ती ने अपने साथी क्रांतिकारी अमृत सरकार के समक्ष रखे। अमृत सरकार की प्रतिक्रिया थी—

"मैं भी तुम्हारे विचार से पूर्ण सहमत हूँ और महसूस करता हूँ कि गुलाम प्रवृत्तिवाले हमारे भारतीय भाई अंग्रेजों की अपेक्षा हमारे अधिक दुश्मन हैं और वे हमारे रास्ते के काँटे हैं।"

अनुकूल चक्रवर्ती का कथन था—

"इसी प्रकार का एक काँटा खुफिया विभाग का बंकिमचंद्र चौधरी है, जो पूरे मैमनसिंह क्षेत्र में क्रांतिकारियों के लिए आतंक बना हुआ है। क्यों न हम इस काँटे को अपने रास्ते से हटा दें?"

"मैं स्वयं भी इसी मत का हूँ और मेरा तो आग्रह है कि बिना विलंब किए

हम इस काँटे को रगड़कर फेंक दें। यदि तुम सहमत होओ तो मैं चंद्रनगर जाकर कुछ बम लिये आता हूँ।'' यह विचार व्यक्त किया अमृत सरकार ने।

अनुकूल चक्रवर्ती ने सहमत होते हुए कहा—

''हाँ, रिवॉल्वर की अपेक्षा उसे बम से समाप्त करना अधिक आसान होगा, क्योंकि शाम के वक्त वह अपनी बैठक के बाहर अकेला ही बैठता है। वह समय बहुत ही उपयुक्त होगा।''

दोनों के विचार एक जैसे ही थे। योजना को अंतिम रूप मिलते देर नहीं लगी।

३० सितंबर, १९१३ की संध्या थी। बंकिमचंद्र चौधरी हवाखोरी के पश्चात् अपने घर वापस आ चुका था। परिवार के लोगों के साथ उसने कुछ बातचीत की और नौकर को आदेश दिया कि वह एक चारपाई बाहरी बैठक के सामने डाल दे और हुक्का तैयार करके उसे दे दे। नौकर ने आज्ञा का पालन किया।

बंकिमचंद्र चौधरी बैठक के बाहर चारपाई पर बैठ गया और नौकर से कुछ बातें करने लगा। उसकी पत्नी भी वहाँ पहुँचकर उससे कुछ निर्देश प्राप्त करने लगी। शाम का अँधेरा फैल चुका था। पास ही एक विशाल वृक्ष की ओट में अमृत सरकार और अनुकूल चक्रवर्ती बम लिये हुए उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि बंकिमचंद्र के अतिरिक्त किसी अन्य निर्दोष व्यक्ति की जान जाए। थोड़ी ही देर में बंकिमचंद्र चौधरी की पत्नी मकान के अंदर चली गई और नौकर भी आज्ञा लेकर अपने घर चला गया। क्रांतिकारियों के लिए यह उपयुक्त अवसर था। बंकिमचंद्र चौधरी चारपाई पर बैठा हुआ अपनी दोनों टाँगें नीचे लटकाए हुए था। वह आराम के साथ हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ अपनी थकान मिटा रहा था। अमृत सरकार ने अपने बम का प्रहार बंकिमचंद्र चौधरी के ऊपर कर दिया। बम उसके पैरों के पास गिरा और भयानक विस्फोट हुआ। क्रांतिकारी लोग वहाँ से खिसक गए और कोई उन्हें देख भी नहीं सका।

बम के प्रहार से बंकिमचंद्र चौधरी की दोनों टाँगें उड़कर दूर जा गिरीं। उसके शरीर में लोहे की कीलें चुभी पाई गईं। उसकी बाईं आँख में भी एक कील चुभी हुई थी। उसके बैठकखाने की बाहरी दीवार में भी कीलें चुभी पाई गईं। पीले रंग का पाउडर बंकिमचंद्र चौधरी के शरीर पर फैला हुआ था। आजादी के दीवानों को सताने का पुरस्कार उसे मिल चुका था।

पुलिस ने मामला दर्ज किया और बंकिमचंद्र चौधरी के हत्यारों का सुराग देनेवालों को भारी पुरस्कार घोषित किया गया; पर कोई परिणाम नहीं निकला।

□

★ अनुकूल चक्रवर्ती ★ अमृत सरकार ★ गिरिजा बाबू ★ वीरेंद्र चटर्जी

ढाका में 'बकलैंड बंद' संध्या के समय बड़ा मनोरम दृश्य उपस्थित करता है। इस ओर आड़ी-तिरछी बहती हुई नदी और दूसरी ओर उससे सटी हुई सुंदर सड़क, दोनों ही सैलानियों के लिए आकर्षण के केंद्र रहे हैं। चहल-पहल-भरी सड़क पर घूमते और नाव में सैर करने का आनंद लेनेवाले लोग उस क्षेत्र में संध्या समय ही पहुँचते हैं।

इसी 'बकलैंड बंद' स्थान पर १९ जुलाई, १९१४ को ढाका का डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस वसंत चटर्जी संध्या के समय पुलिस के काफी आदमियों के साथ किसी घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके लिए नदी में एक नाव तैयार थी, जिसमें उसके कुछ आदमी पहले से ही बैठे हुए थे। वह किसी क्रांतिकारी को पकड़ने या उसे गोली का निशाना बनाने की घात में था। क्रांतिकारियों को पहचानने के लिए उसने एक विशिष्ट व्यक्ति—रामदास—को नियुक्त कर रखा था। रामदास पहले 'ढाका अनुशीलन समिति' का ही सदस्य था, पर अब क्रांतिकारियों का साथ छोड़कर वह पुलिस का मुखबिर बन चुका था। इस समय उसके आसपास पुलिस के कई सिपाही नागरिक वेश में उपस्थित थे, जो उसके द्वारा बताए गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने या उसपर गोली चलाने के लिए तैयार थे। ये लोग वसंत चटर्जी के ही निर्देशन में काम कर रहे थे।

वसंत चटर्जी किसी विशेष घटना की प्रतीक्षा में था। विशेष घटना घटित भी हुई; पर गोलियाँ उसके दल ने नहीं, क्रांतिकारी दल ने चलाईं। चार क्रांतिकारी जाने कहाँ से वहाँ अचानक ही प्रकट हुए और उनमें से एक ने पुलिस के मुखबिर रामदास पर गोलियों की दनादन वर्षा प्रारंभ कर दी। रामदास वहीं गिरकर ढेर हो गया। गोली चलानेवाला क्रांतिकारी अमृत सरकार था और उसके साथी अनुकूल चक्रवर्ती, गिरिजा बाबू एवं वीरेंद्र चटर्जी इस बात के लिए तैयार थे कि यदि पुलिस के आदमी मुकाबला करें तो वे उनको डटकर टक्कर दे सकें। क्रांतिकारियों द्वारा किए गए इस आकस्मिक आक्रमण से डिप्टी सुपरिंटेंडेंट वसंत चटर्जी इतना घबरा गया कि वह अपने लिए तैयार नाव में कूदकर वहाँ से भाग गया। नागरिक वेश में रामदास के सहायक पुलिस के आदमियों ने भी इधर-उधर छिपकर जान बचाने में ही अपनी खैर समझी। वहाँ पड़ा रह गया केवल रामदास का शव, जो मूक भाषा में

कह रहा था कि क्रांतिकारी लोग भले ही किसी अत्याचारी को बख्श दें, पर वे किसी गद्दार को नहीं बख्श सकते।

कोई भी क्रांतिकारी न तो उसी समय गिरफ्तार किया जा सका और न उसके पश्चात् ही।

□

★ अनुकूल चक्रवर्ती ★ आदित्य दत्त

वसंतकुमार भट्टाचार्य एक होनहार युवक था। वह ढाका के क्रांतिकारी दल का सक्रिय सदस्य था। एक बार तो वह पकड़ा जाकर एक वर्ष के कठोर कारावास का दंड भी भुगत चुका था। कारावास का दंड भुगतने के पश्चात् उसने जहाज की एक कंपनी में नौकरी कर ली थी। नौकरी के समय के पश्चात् वह क्रांतिकारी दल की बैठकों में सम्मिलित होकर कार्य योजनाओं में भी उत्साह के साथ भाग लेता था।

एक शाम को वसंत भट्टाचार्य की भेंट एक पुलिस इंस्पेक्टर से हो गई, जिससे उसका परिचय जेल में रहते हुए हो गया था। पुलिस इंस्पेक्टर ने उसे समझाया—''देखो वसंत! तुम एक वर्ष की सजा काटकर भी क्रांतिकारी दल से अपना संबंध-विच्छेद नहीं कर पाए। हमारे जासूसों ने सूचना दी है कि तुम अपनी नौकरी के समय के पश्चात् कुछ संदिग्ध व्यक्तियों के साथ रहते हो।''

''नहीं-नहीं! मैं किसी संदिग्ध व्यक्ति के साथ नहीं रहता। मैं तो कभी-कभी अपने मित्रों से मिलने चला जाता हूँ। क्रांतिकारियों से संबंध तोड़े हुए मुझे कितना समय हो गया है।''

''उड़ने की कोशिश मत करो, वसंत! हमारे आदमी तुम्हारा निरंतर पीछा करते रहते हैं। मेरा तो परामर्श है कि तुम नौकरी भी करते रहो और अपने साथियों से भी मिलते रहो; पर उनकी गतिविधियों की सूचनाएँ हमें देते रहो।''

''अगर मेरे साथियों को भनक भी पड़ गई कि मैं पुलिस से मिला हुआ हूँ तो वे मुझे जिंदा नहीं छोड़ेंगे।''

''डरने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी सुरक्षा का प्रबंध हम किए देते हैं। बाँगला बाजार में एक नागरिक से तुम्हारा परिचय कराए देते हैं, जो वहाँ किराए के एक कमरे में रहता है। पुलिस का कोई आदमी तुमसे मिलने न तो तुम्हारे घर जाएगा और न तुम ही कभी पुलिस स्टेशन पहुँचना। जो सूचनाएँ तुम्हें देनी हों, उसी

नागरिक को देना। तुम्हें माहवारी खर्च भी उस नागरिक के माध्यम से मिलता रहेगा। मैं समझता हूँ कि अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।''

''ठीक है, यह व्यवस्था मुझे स्वीकार है। मेरा माहवारी खर्च पाँच सौ रुपए होगा।''

''वैसे यह बहुत अधिक है, पर तुम्हारी जोखिम को देखते हुए तुम्हारा प्रस्ताव हमें भी स्वीकार है।''

दोनों की बात पक्की हो गई। वसंतकुमार भट्टाचार्य अपने क्रांतिकारी साथियों की सूचनाएँ अपने नागरिक मित्र द्वारा पुलिस को देने लगा।

एक दिन रात के समय उसके क्रांतिकारी साथी आदित्य दत्त ने उसे बाँगला बाजार के उस कमरे की तरफ जाते हुए देख लिया। कमरे के अंदर पहुँचकर उसने दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। बातचीत समाप्त होने पर बाहर निकलकर उसने इस तरह झाँका जैसे उसे किसीने देखा तो नहीं। फिर वह चुपचाप एक गली में खिसक गया। आदित्य दत्त को वसंत के इस प्रकार के व्यवहार पर संदेह हुआ। वह छिपकर उस व्यक्ति के बाहर आने की प्रतीक्षा करता रहा, जिससे वसंत मिला था। नागरिक लिबास में वह व्यक्ति निकला, उसने कमरे का ताला लगाया और कहीं चल दिया। आदित्य ने चुपके-चुपके उसका पीछा किया। वह व्यक्ति इधर-उधर चक्कर लगाता हुआ अंततोगत्वा पुलिस थाने में प्रवेश कर गया।

आदित्य दत्त ने इस घटना की सूचना अपने साथी अनुकूल चक्रवर्ती को दी। सबसे पहला काम जो उन लोगों ने किया, वह यह कि उन्होंने अपने रहने का स्थान बदल लिया। उन्होंने छिपकर अगले दिन भी उसी कमरे में वसंतकुमार भट्टाचार्य को उस व्यक्ति से मिलते देखा। अनुकूल चक्रवर्ती उस व्यक्ति को जानता था। वह खुफिया पुलिस का आदमी था। इस संदेह की पुष्टि हो जाने पर कि वसंत पुलिस को क्रांतिकारियों की सूचनाएँ देता है, उन्होंने इस बात पर विचार करना प्रारंभ किया कि वसंत के साथ क्या सुलूक किया जाए! निश्चय हुआ कि मामला अनुशीलन समिति के सामने रखकर निर्देश प्राप्त किए जाएँ। अनुशीलन समिति का निर्णय था—

'यह ठीक है कि वसंतकुमार भट्टाचार्य हमारी समिति का सदस्य और हमारा क्रांतिकारी साथी है और उसने क्रांतिकारी कार्यों में भाग लेने के कारण एक वर्ष के कठोर कारावास का दंड भी भोगा है; पर अब पुलिस से मिल जाने के कारण वह हमारे लिए बहुत ही खतरनाक व्यक्ति बन गया है। उसके साथ रहम दिखाने या उसे जीवित छोड़ने का अर्थ होगा, हम सबकी गिरफ्तारियाँ और लंबी-लंबी सजाएँ तथा अपने कार्य की विफलता। इस सबको देखते हुए समिति निर्णय देती है कि

वसंतकुमार भट्टाचार्य को जैसे भी हो, समाप्त कर दिया जाए।'

वसंतकुमार भट्टाचार्य को समाप्त करने का दायित्व समिति ने अनुकूल चक्रवर्ती और आदित्य दत्त को ही सौंपा। एक दिन १६ नवंबर, १९१५ को दोनों साथी तैयारी के साथ बाँगला बाजारवाले उसी कमरे पर पहुँच गए, जहाँ वसंतकुमार भट्टाचार्य नागरिक वेशवाले खुफिया पुलिस को सूचनाएँ देता था। जब वसंतकुमार कमरे के बाहर निकला तो अनुकूल चक्रवर्ती ने उसपर लगातार चार गोलियाँ दाग दीं। एक गोली उसके सीने में लगी, जिसके कारण वह भूमि पर गिर पड़ा। आदित्य दत्त इस तैयारी के साथ प्रतीक्षा कर रहा था कि यदि खुफिया पुलिस का आदमी बाहर निकले तो उसे भी समाप्त कर दिया जाए। गोलियों की आवाज सुनकर उसने अंदर से दरवाजा बंद कर लिया।

वसंतकुमार भट्टाचार्य की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। दल के साथ विश्वासघात का पुरस्कार उसे मिल गया।

बहुत प्रयत्न करने पर भी पुलिस हत्या करनेवालों का सुराग नहीं पा सकी।

□

★ अबदुल्ला खाँ ★ इंदरसिंह (प्र.) ★ इंदरसिंह (द्वि.) ★ गज्जरसिंह ★ जेतासिंह ★ तारासिंह ★ बुधसिंह ★ बूटासिंह ★ भगतसिंह ★ मोतासिंह ★ लछमनसिंह ★ वधवानसिंह
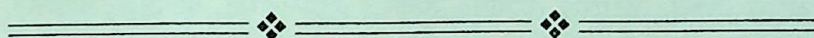
परवाना शमा पर जाकर जब गिरता है तो पता नहीं उसे यह मालूम होता है या नहीं कि शमा पर कूदने से उसके प्राण चले जाएँगे। लगता तो यही है कि वह यह नहीं जानता और घुप अँधेरे में एक चमकती हुई चीज देखकर उसकी तरफ चला जाता है। वह अपना जीवन खो देता है। दूसरे परवाने भी इतनी बुद्धि नहीं रखते कि वे उदाहरण से सबक ले सकें और अपने से पहले जल जानेवालों को देखकर शमा से दूर रहें।

क्रांतिकारी लोग इससे बहुत भिन्न और ऊँचे होते आए हैं। वे जानते थे कि क्रांति के क्षेत्र में कदम रखने का अर्थ है, निश्चित और समय से पहले मृत्यु। दूसरों को प्राण खोते हुए देखकर उन्हें अपने प्राण बचाने की चिंता होने के बजाय यह

चिंता होती थी कि हम भी अपने प्राण किस तरह दें।

प्रथम महायुद्ध के दिनों में भी भारतीय क्रांतिकारियों का यही हाल था। अमेरिका से भारत को चलनेवाले गदर पार्टी के सदस्यों को मालूम था कि उन दिनों भारत पहुँचने का अर्थ होता था, फाँसी या आजीवन कारावास। यह जानते हुए भी वे भारत पहुँचते थे और आजादी के प्रयत्नों में फाँसी या आजीवन कारावास का दंड हँसते हुए स्वीकार करते थे। इसी प्रकार छावनियों के वे फौजी लोग, जो गदर वीरों की प्रेरणा से गदर करने के लिए तैयार हो जाते थे, यह जानते थे कि उनका पुरस्कार गोली या फाँसी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, फिर भी वे अपनी मातृभूमि को स्वाधीन देखना चाहते थे और उसके लिए वे कुछ भी कीमत चुकाने के लिए तैयार रहते थे।

इसी प्रकार की बलिदान भावना से प्रेरित पंजाब स्थित 'तेईसवीं कैवलरी रेजीमेंट' के कुछ सैनिक गदर में भाग लेने के लिए तैयार हो गए। हमारे देश में जिस प्रकार देश के लिए प्राण देनेवालों की कमी नहीं है, उसी प्रकार नीच गद्दारों की कमी नहीं है, जो पैसा या पद के लालच में अपने ही भाइयों का गला फँसाने में और देश का काम बिगाड़ने में संकोच नहीं करते। किसी विश्वासघाती ने 'तेईसवीं कैवलरी रेजीमेंट' के उन वीरों की गतिविधियों की सूचना बड़े अधिकारियों को दे दी। वे लोग गिरफ्तार कर लिये गए।

१४ अगस्त, १९१५ को दगाशी में उन्हें कोर्ट मार्शल के समक्ष प्रस्तुत किया गया और उनपर कई आरोप लगाए गए। उनमें कुछ सैनिक और कुछ अफसर भी थे। सैनिक अदालत को निर्णय देने में कोई कठिनाई नहीं हुई। कोर्ट मार्शल के निर्णय के अनुसार—अबदुल्ला खाँ, भगतसिंह, बुधसिंह, बूटासिंह, गज्जरसिंह, इंदरसिंह (प्रथम), इंदरसिंह (द्वितीय), जेतासिंह, लछमनसिंह, मोतासिंह, तारासिंह और वधवानसिंह को ३ सितंबर, १९१५ को अंबाला की नागरिक जेल में फाँसी दे दी गई।

शहीदों की कतार और लंबी हो गई।

□

★ अबदुल्ला खाँ ★ लछमनसिंह

अमेरिका से आए हुए गदर वीर पूरे पंजाब एवं उत्तर प्रदेश में फैल चुके थे और वे विभिन्न छावनियों में पहुँचकर फौजियों के साथ गदर की साँठ-गाँठ कर रहे थे।

रावलपिंडी की छावनी में हवलदार लछमनसिंह बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था। वह भक्त किस्म का आदमी था, जो अपने फौजी जीवन में भी भजन-पूजन के लिए समय निकाल लिया करता था। कोई भी सामाजिक कार्य हो, वह अगुआ रहा करता था। दु:ख-बीमारी में भी वह सबका साथ देता था। उसके बेड़े के सिपाही उसको बहुत चाहते थे और उसके अफसर भी उससे प्रसन्न रहते थे।

जब गदर पार्टी के लोग रावलपिंडी से छावनी में पहुँचे तो उन्होंने हवलदार लछमनसिंह से संपर्क स्थापित किया। हवलदार लछमनसिंह ने उन लोगों की बातों को सुना और वह उनका साथ देने के लिए तैयार हो गया। उसके प्रभाव से उसके बहुत से साथी भी क्रांतिकारियों का साथ देने के लिए तैयार हो गए।

दुर्भाग्यवश गदर योजना असफल हो गई और धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। हवलदार लछमनसिंह और उसका एक साथी अबदुल्ला खाँ गिरफ्तार हो गए। बड़े अफसर ने लछमनसिंह को फुसलाते हुए कहा—

''यदि तुम अपने उन सभी साथियों के नाम बता दो, जो विद्रोह में तुम्हारा साथ देने वाले थे, तो मैं तुम्हें फाँसी से बचा सकता हूँ।''

हवलदार लछमनसिंह का उत्तर था—

''मेरे सिख धर्म ने मुझे यह नहीं सिखाया कि मैं अपने गले का फंदा किसी दूसरे के गले में डाल दूँ।''

अफसर ने अब अबदुल्ला खाँ को फोड़ने का प्रयत्न किया। वह उससे बोला—

''ये सिख लोग तो पंजाब में अपना शासन स्थापित करना चाहते थे। अपना काम निकल जाने पर ये तुम लोगों को मक्खी की तरह निकालकर फेंक देते। यदि इनकी हुकूमत हो जाती तो मुसलमानों पर न जाने कितने अत्याचार होते। तुम इनका साथ क्यों दे रहे हो? तुम्हीं विद्रोहियों के नाम बताकर फाँसी से बच जाओ।''

उस फौजी अबदुल्ला खाँ ने जो उत्तर दिया, वह हर भारतवासी को प्रेरणा देता रहेगा। वह बोला—

''मेरे दिल में तो एक ही अरमान है कि इसी सिख के साथ फाँसी पा जाऊँ। मुझे यकीन है कि इसके साथ मरने से मुझे बहिश्त हासिल होगा।''

और वे दोनों ही ३ सितंबर, १९१५ को अंबाला की सिविल जेल में फाँसी के तख्ते पर जा चढ़े।

□

★ अब्दुल गनी ★ चिश्ती खाँ ★ डुंडे खाँ ★ रहमत अली ★ हकीम अली
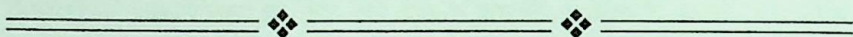
२३ मार्च, १९३१ को भारत के एक बहुत ही तेजवंत क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह को फाँसी का दंड दिया गया था। यह २३ मार्च पहली बार बदनाम नहीं हुई। सन् १९१५ में भी २३ मार्च आई थी, जो एक साथ भारत के बाईस क्रांतिकारी बेटों को निगल गई थी—वे नौजवान, जो भारत की आजादी के लिए हँसते-हँसते कुरबान हो गए।

कनाडा और अमेरिका के गदर वीरों ने विद्रोह की अग्नि सुदूर पूर्व में भी फैला दी थी। सभी जगह इस बात का प्रयत्न किया गया था कि सेनाएँ विद्रोह करें; क्योंकि भारतीय सेनाओं के बल पर ही तो अंग्रेजी साम्राज्यवाद टिका हुआ था।

सिंगापुर स्थित अंग्रेजी सेना की 'पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री' ने बगावत कर दी और उसने अपने अंग्रेज अफसरों को मारना प्रारंभ कर दिया। अंग्रेज लोगों के हाथ-पैर फूल गए। उस समय उस इन्फैंट्री के अतिरिक्त वहाँ अंग्रेजों के अधीन 'मलाया स्टेट गाइड्स' नाम से भी एक फौजी टुकड़ी रहती थी। 'मलाया स्टेट गाइड्स' को आदेश दिया गया कि वह 'पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री' के विद्रोही सैनिकों को काबू में करने के लिए उनपर गोली चलाए। 'मलाया स्टेट गाइड्स' के सैनिकों ने अपने ही भाइयों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। न तो उन्होंने अपने अधिकारियों की आज्ञा का पालन किया और न ही वे उनके सामने उपस्थित हुए। उनमें से कुछ लोग क्रांतिकारियों के साथ जा मिले।

विद्रोह दबा दिया गया और क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। विशेष सैनिक अदालत द्वारा क्रांतिकारियों के विरुद्ध अभियोग चलाया गया और 'पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री' के सत्रह तथा 'मलाया स्टेट गाइड्स' के निम्नलिखित पाँच लोगों को गोलियों से उड़ा दिया गया—

सूबेदार डुंडे खाँ, जमादार चिश्ती खाँ, हवलदार रहमत अली, हवलदार अब्दुल गनी, सिपाही हकीम अली।

वह २३ मार्च, १९१५ का दिन था। उस दिन सिंगापुर की छावनी में विशेष चहल-पहल दिखाई दी। सभी फौजी मार्च करते हुए परेड के मैदान में पहुँचे। उनकी परेड कराई गई और मृत्युदंड देखने के लिए उन्हें स्थित कर दिया गया। 'मलाया स्टेट गाइड्स' के पाँचों अभियुक्तों को एक बड़ी दीवार के सामने ले

जाकर खड़ा कर दिया गया। उन लोगों के हाथ पीठ की तरफ बँधे हुए थे; उन लोगों को एक साथ एक बल्ली के सहारे भी बाँध दिया गया। उनकी पीठ के पीछे निशानेबाजों को खड़ा कर दिया गया।

अपनी पीठ के पीछे निशानेबाजों को खड़े किए जाते देख देशभक्तों में कुछ खुसफुस जैसी हुई और सूबेदार डुंडे खाँ फौजी अधिकारियों को सुनाकर ऊँचे स्वर से बोल उठा—''हम लोग देशभक्त हैं। हम कायराना मौत नहीं मरना चाहते। हमारी इल्तिजा है कि गोलियाँ हमारी पीठ में नहीं, सीने में दागी जाएँ। हम मौत को अपने सामने से देखना चाहते हैं और जालिमों को दिखाना चाहते हैं कि बहादुर लोग किस तरह मरते हैं।''

शेष साथियों ने भी एक स्वर में कहा—''हम गोलियाँ अपनी छातियों पर झेलना चाहते हैं।''

फौज के अधिकारी ने उनकी बात मान ली और उनके मुँह निशानेबाजों की ओर करके उन्हें बाँध दिया गया। अधिकारी ने अपनी तलवार ऊपर उठाई। उसके द्वारा 'रेडी' कहने के साथ ही निशानेबाजों ने अपनी बंदूकें भर लीं। अधिकारी ने हाथ की तलवार नीचे करते हुए 'फायर' कहा। धाँय! धाँय! धाँय! की आवाजें गूँज उठीं। भारत के उन बहादुर बेटों की छातियों से खून के फव्वारे फूट पड़े। निर्जीव होकर उनके शरीर लटक गए। खून के प्यासे दुश्मनों को कुछ शांति मिली।

शेष रहे 'पाँचवीं लाइट इन्फैंट्री' के सत्रह जवानों को दीवार के दूसरे हिस्से की तरफ ले जाया गया। वहाँ सत्रह खंभे जमीन में पहले ही गाड़ दिए गए थे। एक-एक खंभे से एक-एक जवान को बाँध दिया गया। उनके सामने एक सौ निशानेबाजों को पचास-पचास की दो पंक्तियों में खड़ा किया गया। पिछली पंक्ति के पचास निशानेबाजों ने खड़े होकर अपनी स्थिति ली और अगली पंक्ति के पचास निशानेबाज भूमि पर घुटने टेककर निशाना साधने की स्थिति में बैठे। उसी प्रकार फौज का अधिकारी आया, विद्रोहियों का अपराध पढ़कर सुनाया, तलवार ऊपर उठाकर 'रेडी' कहा। 'प्रस्तुत' कहने के पश्चात् 'फायर' कहा और एक साथ सौ गोलियों ने सत्रह विद्रोहियों को छलनी कर दिया। कुछ ही सेकंड के अंतर से सौ गोलियों का दूसरा राउंड उनपर फिर बरसाया गया—इस बात का विश्वास करने के लिए कि उनमें से कोई जिंदा तो नहीं बच गया।

भारत के बाईस क्रांतिकारी बेटे इस प्रकार अपने देश की आजादी का चिंतन करते हुए दुश्मन की गोलियों के शिकार हो गए। क्या हम कह सकते हैं कि भारत की आजादी खून की एक बूँद बहाए बिना ही प्राप्त हो गई है?

□

★ अमरसिंह 'अमर'

स्याम देश (थाईलैंड) में उन दिनों निर्माण-कार्य तीव्र गति से चल रहा था। बहुत से भारतीय इंजीनियर उस देश के निर्माण-कार्य में सहयोग देकर अपनी आजीविका चला रहे थे। अमरसिंह भी उनमें से एक था। था तो वह इंजीनियर, पर बहुत भावुक और कवि-हृदय था। काम पर रहते हुए भी वह अपनी धुन में मस्त रहा करता था और राष्ट्रीय गीत गाया करता था।

एक दिन लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि अमरसिंह के निवास स्थान को पुलिस ने घेर रखा है, उसके मकान की तलाशी ली जा रही है और उसे गिरफ्तार किया जा चुका है।

वह कार नहीं रखता था, पर उसके बंगले में गैरिज था, जिसमें कुछ टूटा-फूटा सामान रखा हुआ था। उसकी भी तलाशी ली गई और टूटे-फूटे सामान के नीचे से बहुत सारे हथियार बरामद किए गए। ये हथियार जर्मनी में बने हुए थे।

अमरसिंह को गिरफ्तार करने का सुराग पुलिस को एक अन्य क्रांतिकारी के पास पाए गए कागजों से मिला था; जिसमें यह दर्ज था कि जर्मनी से आए हुए हथियार कहाँ-कहाँ रखे गए हैं। जर्मनी से उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों को बहुत सहायता प्राप्त हो रही थी। जहाज भर-भरकर हथियार जर्मनी से आते थे, जो कभी-कभी तो पकड़ लिये जाते थे और कभी-कभी क्रांतिकारियों के पास पहुँच जाते थे। स्याम, बर्मा, हांगकांग और सिंगापुर से ये हथियार भारत के गदर वीरों के पास भेजे जा रहे थे।

इंजीनियर अमरसिंह विप्लव आयोजन में सहयोग दे रहा था। उन दिनों भारत से बाहर रहनेवाले सभी भारतीयों के दिल में भारत माता को आजाद करने के अरमान थे और वे इस कार्य में अपने प्राणों को झोंक रहे थे।

देशभक्ति के अपराध में इंजीनियर अमरसिंह को सन् १९१५ में मृत्युदंड की सजा सुनाई गई। बाद में फाँसी की सजा आजीवन कालेपानी की सजा में परिवर्तित कर दी गई।

□

★ अमरसिंह ★ अली अहमद सादिक ★ मुज्तबा हुसैन ★ रामरक्खा

रामरक्खा

"आनेवाली 'बकरीद' हम लोग बकरों के स्थान पर गोरे लोगों को काटकर मनाएँ।"

यह प्रस्ताव था एक भारतीय क्रांतिकारी मुज्तबा हुसैन का, जो बर्मा के मांडले नगर में अपने अन्य तीन क्रांतिकारी साथियों के साथ बैठकर विप्लव की योजना का चिंतन कर रहा था। उसके तीन भारतीय क्रांतिकारी साथी थे—लुधियाना का अमरसिंह, होशियारपुर का रामरक्खा और फैजाबाद जिले के शहजादपुर का अली अहमद सादिक। स्वयं मुज्तबा हुसैन जयपुर का रहनेवाला था।

ये लोग अमेरिका स्थित भारतीय गदर पार्टी द्वारा पूर्व में विद्रोह भड़काने के लिए नियुक्त किए गए थे। गदर पार्टी साहित्य भेजकर, आदमी भेजकर और हथियार भेजकर पूरा प्रयत्न कर रही थी कि पूर्वी देशों में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह भड़काकर उन स्थानों का उपयोग भारत में अंग्रेजी साम्राज्य पर छलाँग लगाने के लिए किया जाए। गदर पार्टी द्वारा भेजे गए सोहनलाल पाठक का संपर्क इन लोगों से हो चुका था। यद्यपि जनवरी १९१६ में सोहनलाल पाठक फाँसी पर लटका दिए गए थे, पर उनकी अमर प्रेरणा इन लोगों में कार्य कर रही थी।

इस क्रांतिकारी दल के नेता मुज्तबा हुसैन थे, जो कहीं अपना नाम मूलचंद बताते थे और कहीं महमूद जफर। भारत, बर्मा तथा सिंगापुर में निरंतर घूम-घूमकर वे क्रांतिकारियों से संपर्क बनाए हुए थे और बर्मा स्थित अंग्रेजी फौज के भारतीय अफसरों एवं सैनिकों को विद्रोह के लिए तैयार कर रहे थे।

पहले इन लोगों ने १९१५ में 'बकरीद' का दिन विद्रोह के लिए निश्चित किया था, जिससे बकरों के स्थान पर गोरे अंग्रेजों को काटा जाए; पर हथियार की पूरी तैयारी न होने के कारण विद्रोह की तारीख दिसंबर में अंग्रेजों के त्योहार

'बड़े दिन' के लिए खिसका दी गई थी। इरादा यह था कि त्योहार के दिन ही उन लोगों का कत्ल किया जाए और भारत पर बलपूर्वक अधिकार जमा लेने का मजा चखाया जाए।

मुज्तबा हुसैन ने फौज के एक सूबेदार को इस बात के लिए राजी कर लिया कि जब उसकी फौज को बर्मा के बाहर भेजने की आज्ञा दी जाए तो वह उस आज्ञा को न माने और विद्रोह प्रारंभ कर दे। ऐसा ही हुआ। वह फौज किसी मोरचे पर भेजी जा रही थी। सूबेदार ने जाने से मना कर दिया। उसका कोर्ट मार्शल हुआ और उसे गोली से उड़ा देने का हुक्म हुआ। काफी संख्या में गोरी सेना वहाँ तैनात थी, इस कारण विद्रोह न भड़क सका। सूबेदार को खड़ा करके उसके सीने में गोली मारी ही जाने वाली थी कि उसने चिल्लाकर कहा—

''मेरा कोई हिंदुस्तानी भाई मेरी मौत का बदला ले!''

जिस गोरे कमांडेंट ने हिंदुस्तानी सूबेदार को गोली से उड़ाया था, उसके हिंदुस्तानी अर्दली ने अगले दिन ही अपने गोरे साहब को गोली से उड़ाकर अपने हिंदुस्तानी भाई की अंतिम इच्छा को पूरी करके उसकी मौत का बदला ले लिया। उसका भी कोर्ट मार्शल हुआ और वह भी गोली से उड़ा दिया गया।

होनेवाले विद्रोह को दबा दिया गया और सुराग लगाकर क्रांतिकारियों की धर-पकड़ प्रारंभ हो गई। १९१७ में 'मांडले पूरक षड्यंत्र केस' प्रारंभ हुआ और चार क्रांतिकारियों—मुज्तबा हुसैन, रामरक्खा, अमरसिंह और अली अहमद सादिक को मृत्युदंड सुनाया गया। बाद में गवर्नर जनरल महोदय की आज्ञा से मृत्युदंड आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया।

रामरक्खा को आजीवन कारावास का दंड देकर अंडमान भेज दिया गया। वह शरीर से काफी तगड़ा था और दिया हुआ सभी काम पूरा कर देता था। वह जेल के अपने अन्य साथियों के ऊपर किए जानेवाले जुल्म बरदाश्त नहीं कर पाता था। जेल के अधिकारियों के अत्याचारों के खिलाफ उसने अनशन प्रारंभ कर दिया। नली डालकर उसके पेट में कुछ भी पहुँचाने के प्रयत्न निष्फल गए। वह संघर्ष करता रहा। इस अशक्तता और संघर्ष के परिणामस्वरूप उसे खून की उलटियाँ होने लगीं और सन् १९१९ में जेल के अंदर ही उसकी मृत्यु हो गई। भारत माता की आजादी के लिए उसने अपने जीवन और उसके साथियों ने अपनी जवानी की भेंट दे दी।

□

★ मास्टर अमीरचंद
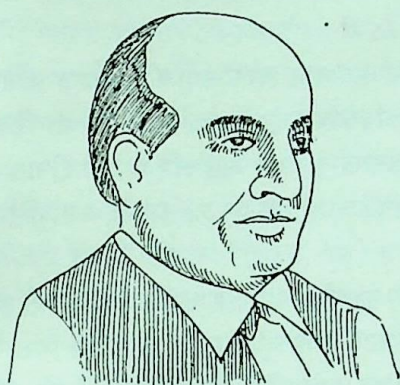
मास्टर अमीरचंद

दिल्ली की पुलिस ने बहुत सारे आदमियों को एक स्थान पर बंद कर दिया और वह उनमें से एक-एक को बुलाकर कुछ पूछताछ करने लगी। जो लोग बंद किए गए थे, उन्हें यह पता नहीं था कि वे किस अपराध में पकड़े गए हैं। उनसे तो केवल उनका नाम ही पूछा गया था। नाम बताने पर उन्हें धर लिया गया। यह कितनी विचित्र बात है कि उन सबका एक ही नाम था। वे सब 'दीनानाथ' नाम के व्यक्ति थे। दिल्ली के सभी दीनानाथ उस समय पुलिस की गिरफ्त में पहुँचकर दीन और अनाथ हो गए थे। पुलिस को दीनानाथ नाम के एक अपराधी की तलाश थी, इस कारण दिल्ली के सभी दीनानाथ पकड़ लिये गए।

पुलिस ने अपने 'दीनानाथ भंडार' में से एक को निकाला और पूछना प्रारंभ किया—

''तुम्हारा क्या नाम है?''

''दीनानाथ।''

''तुम्हारे पिता का क्या नाम है?''

''बैजनाथ।''

''तुम कहाँ के रहनेवाले हो?''

''दिल्ली का।''

''तुम क्या धंधा करते हो?''

''जी, मैं दर्जीगिरी करता हूँ।''

''तुम सरकार के खिलाफ परचे क्यों छापते हो?''

''मैं बगैर पढ़ा-लिखा आदमी हूँ। मैं परचे लिखना या छापना क्या जानूँ!''

''देखो, तुम सीधे-सीधे सबकुछ बता दो, वरना हम तुम्हें बुरी तरह मारेंगे और भूखा-प्यासा एक कोठरी में बंद कर देंगे।''

''आपको अख्तियार है, जो चाहें सो करें। मैं वह बात कैसे कह दूँ, जिसे

मैं जानता ही नहीं।''

''अच्छा तुम जा सकते हो।''

दर्जी दीनानाथ को सिपाही ने ले जाकर दूसरे कमरे में बंद कर दिया। उसे छोड़ा नहीं गया। जब तक असली अपराधी दीनानाथ का पता न चल जाता, कोई कैसे छोड़ा जा सकता था!

'दीनानाथ भंडार' से इसी प्रकार एक-एक दीनानाथ को बुलाया जाता, उससे पूछताछ की जाती और उसे डरा-धमकाकर दूसरे स्थान पर बंद कर दिया जाता। पुलिस की योजना थी कि पहले पूछताछ-भर की जाए और बाद में दीनानाथ पूजा प्रारंभ की जाए। पूजा से बड़े-बड़े बिगड़ैल भी राह पर आ जाते हैं, यह पुलिस का अनुभव था।

अगली बार जो दीनानाथ पुलिस के सामने लाया गया, उसके व्यवहार से ही यह लग रहा था कि वह अपराधी हो सकता है। वह पुलिसवालों से आँखें मिलाने से कतरा रहा था और उसकी आवाज में वह स्वाभाविक निर्भीकता नहीं थी, जो निरपराध व्यक्तियों की आवाज में होती है। उससे पूछा गया—

''सरकार के खिलाफ जो परचे छप रहे हैं, उनके बारे में तुम क्या जानते हो?''

''जी, मैं 'लिबर्टी' या किसी भी परचे के बारे में कुछ भी नहीं जानता।''

पुलिस ने अभी तक किसी व्यक्ति के सामने 'लिबर्टी' परचे का उल्लेख नहीं किया था। अपने आप ही वह नाम दीनानाथ नामधारी उस व्यक्ति के मुँह से निकल गया। असली अपराधी इस प्रकार पुलिस के हाथ लग गया। अंदर ले जाकर जब उसकी पूजा का उपक्रम किया गया तो उसने सबकुछ स्वीकार कर लिया। यही नहीं, उसने स्वयं को बचाने के लिए पुलिस का मुखबिर होना स्वीकार कर लिया और अपने उन साथियों के नाम बता दिए, जो सरकार के खिलाफ परचे छपवाकर गोपनीय रूप से बाँटा करते थे। जिन व्यक्तियों के नाम दीनानाथ ने बताए, उनमें से एक प्रमुख नाम था 'अमीरचंद'।

दीनानाथ नामधारी अन्य व्यक्तियों को छोड़ दिया गया। असली अपराधी दीनानाथ द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर अमीरचंद और उसके दत्तक पुत्र सुल्तानचंद को दिल्ली में १९ फरवरी, १९१४ को उसके मकान पर ही गिरफ्तार कर लिया गया। दीनानाथ और सुल्तानचंद दोनों ही सरकारी गवाह बन गए और उन्होंने क्रांतिकारी संगठन की सारी बातें पुलिस को बता दीं।

पेशे से अमीरचंद अध्यापक थे और इसीलिए वे मास्टर अमीरचंद के नाम से प्रसिद्ध थे। वे बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के समाजसेवी व्यक्ति थे। स्वामी रामतीर्थ

से उनका परिचय हो चुका था और बहुत समय तक उन्होंने रामतीर्थ विचारधारा का प्रचार भी किया था। वे सभी के प्रति दयालु थे और विशेष रूप से विद्यार्थियों की सहायता करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे।

एक अन्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल भी दिल्ली के ही रहनेवाले थे और मास्टर अमीरचंद उनके संपर्क में आ चुके थे। लाला हरदयाल के कारण ही वे क्रांति के क्षेत्र में पहुँचे। जब लाला हरदयाल विदेश चले गए तो पंजाब में क्रांति संचालन का कार्य वे मास्टर अमीरचंद को ही सौंप गए।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस भी पंजाब में क्रांति संगठन और विप्लव आयोजन का कार्य कर रहे थे। उनसे भी मास्टर अमीरचंद का परिचय हो गया। इस परिचय का जो परिणाम निकला, वह यह था कि भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर बम फेंकने की योजना बना ली गई।

कलकत्ता से भारत की राजधानी दिल्ली लाई जा रही थी। एक स्पेशल ट्रेन द्वारा वाइसराय महोदय कलकत्ता से दिल्ली पहुँचे। उनके स्वागत की तैयारियाँ शासकीय स्तर पर भी हो रही थीं और क्रांतिकारियों की ओर से भी। एक क्रांतिकारी वसंतकुमार विश्वास को बम विस्फोट का प्रशिक्षण रासबिहारी बोस पहले ही दे चुके थे। उस समय वसंतकुमार विश्वास लाहौर के एक प्राइवेट अस्पताल में कंपाउंडर का कार्य कर रहे थे। क्रांतिकारियों की ओर से वाइसराय महोदय के स्वागत के लिए वे भी दिल्ली पहुँच गए। रासबिहारी बोस भी वहाँ पहुँच गए। वसंतकुमार विश्वास को मास्टर अमीरचंद के घर ठहराया गया। घटना के दिन अर्थात् २३ दिसंबर, १९१२ को मास्टर अमीरचंद स्वयं वसंतकुमार विश्वास को चाँदनी चौक स्थित पंजाब नेशनल बैंक के भवन तक ले गए और वहाँ उनके बैठने की व्यवस्था कर दी। वसंतकुमार विश्वास एक लड़की के लिबास में महिलाओं के बीच बैठ गए और ज्यों ही वाइसराय महोदय की सवारी वहाँ पहुँची, उन्होंने बम छोड़ दिया। फलस्वरूप वाइसराय काफी घायल हो गए और उनका अंगरक्षक मारा गया। बहुत खोज़ करने पर भी घटना से संबंधित किसी भी व्यक्ति को पुलिस गिरफ्तार नहीं कर सकी।

मास्टर अमीरचंद खामोश बैठनेवाले व्यक्ति नहीं थे। 'लिबर्टी' नाम के परचे छपवाकर वे सारे भारतवर्ष में उन्हें वितरित कराने लगे। इन परचों के द्वारा वे देश में अंग्रेजी शासकों के प्रति घृणा का प्रसार करना चाहते थे। कभी ये परचे पंजाब में छपवाए जाते थे तो कभी बंगाल में; परचों में जो लिखा होता था, उसका एक नमूना यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'गीता, वेद और कुरान के मतानुसार यही उचित ठहरता है कि जाति, रंग

और संप्रदाय का भेद न करके मातृभूमि के सभी दुश्मनों का सफाया कर दिया जाए। दिल्ली में वाइसराय पर किए गए प्रयत्न से यही सिद्ध होता है कि ईश्वर की यही इच्छा है कि यह सब किया जाए।'

अंग्रेज हुकूमत को मात-पर-मात लग रही थी और वह किसी कांड का कोई सुराग नहीं पा रही थी। दिल्ली बम कांड और लाहौर बम कांड के अपराधियों की वह छाया भी नहीं छू सकी थी। अब उसने सारा ध्यान राजद्रोही परचों का प्रचार-प्रसार करनेवालों की ओर लगा दिया। किसी प्रकार उसे यह पता लग गया कि इन परचों से दिल्ली का कोई दीनानाथ नाम का व्यक्ति संबंधित है। दिल्ली के सभी दीनानाथ उसने धर लिये और आखिरकार पकड़े जाने पर असली दीनानाथ ने भंडाफोड़ कर दिया। परचों के अपराधियों की खोज करने पर दिल्ली और लाहौर में बम फेंकनेवाले पकड़ लिये गए।

दिल्ली बम कांड मुकदमा प्रारंभ हुआ और १६ मार्च, १९१४ को मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी, बालमुकुंद और वसंतकुमार विश्वास को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। न्यायालय में सरकारी गवाह बने अमीरचंद के भतीजे और दत्तक पुत्र सुल्तानचंद ने जब अपने धर्मपिता मास्टर अमीरचंद के विरुद्ध बयान दिए तो इस विश्वासघात को सहन न करके मास्टरजी अदालत में ही रो पड़े। वे सोचने लगे कि जिस व्यक्ति का मैंने पालन-पोषण किया, जिसको मैंने अपनी सारी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनाया और जिसको मैंने अपने हृदय का संचित स्नेह प्रदान किया, वही मेरे गले में फाँसी का फंदा डलवाने के लिए मेरे विरुद्ध गवाही दे रहा है। उनका हृदय इस ठेस को सहन नहीं कर पाया और वे खूब रोए। उस दिन से वे निरंतर उदास रहने लगे। उनकी उदासी तभी दूर हुई, जब न्यायालय ने उनके विरुद्ध फैसला सुनाते हुए उन्हें फाँसी का पुरस्कार दिया। फाँसी का दंड सुनकर मास्टर अमीरचंद खिल गए। आंतरिक हर्ष ने उनके चेहरे को देदीप्यमान कर दिया।

अंबाला जेल में मास्टर अमीरचंद को ११ मई, १९१५ के दिन फाँसी पर झुलाया गया। फाँसी का फंदा उन्होंने उसी प्रकार की प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया जैसे कभी उन्होंने वरमाला ग्रहण की थी।

अपनी मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण करके मास्टर अमीरचंद इस दुनिया से उठ गए और अपनी मस्ती की एक प्रेरक याद अपने देशवासियों के लिए छोड़ गए।

□

★ डॉ. अरुड़सिंह

डॉ. अरुड़सिंह

डॉ. अरुड़सिंह को गिरफ्तार करने के लिए सरकार ने वारंट निकाल रखा था; पर अरुड़सिंह थे, जिन्हें गिरफ्तारी का कोई भय नहीं था। वे स्वयं ही पुलिस थानों में चक्कर लगा आया करते थे और पुलिस की सरगर्मियों की खबरें लाकर क्रांतिकारियों को दे दिया करते थे। खोज-खबर लाने की बड़ी अद्‌भुत क्षमता थी डॉ. अरुड़सिंह में। एक बार अमेरिका से आया हुआ गदर पार्टी का आपका एक साथी गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। डॉक्टर साहब के मन में इच्छा हुई कि उससे मिला जाए। अर्जी दे दी कि मैं उसका नजदीकी रिश्तेदार हूँ और उससे मिलना चाहता हूँ। अर्जी मंजूर हो गई और आप जेल में जाकर अपने साथी से मिल आए। पुलिस को क्या पता था कि जिसे गिरफ्तार करने के लिए वह परेशान होती फिर रही है, वह खुद जेल में जाकर अपने साथी से मिल रहा है।

लाहौर जेल में डॉ. अरुड़सिंह का आना-जाना बहुत बढ़ गया। एक दिन पुलिस का एक अधिकारी पूछ बैठा—

''तुम कौन हो?''

''अरुड़सिंह हूँ, और कौन हूँ!'' इनका उत्तर था।

''कौन अरुड़सिंह?'' पुलिस अधिकारी ने फिर सवाल किया।

''वही अरुड़सिंह, जिसकी तुम्हें तलाश है।'' उत्तर दिया गया।

पुलिस अधिकारी ने उसके कथन को कोई महत्त्व नहीं दिया।

डॉ. अरुड़सिंह का चित्र तो पुलिसवालों के दिमाग में कुछ और ही था। पुलिस उसके नाम से काँपती थी; अधिकारी ने सोचा कि जिसके खिलाफ गिरफ्तारी का वारंट हो, वह खुद जेल के चक्कर क्यों लगाने चला। फिर भी उसके दिमाग में बात बनी रही और वह दो-चार सिपाहियों के साथ वहाँ फिर पहुँच गया, जहाँ डॉ. अरुड़सिंह जेल में अपने एक साथी से मुलाकात कर रहे थे। उन सिपाहियों में एक ऐसा भी था, जो डॉ. अरुड़सिंह को जानता था। उसने देखकर ही बता दिया कि

यह वही अरुड़सिंह है, जिसकी हमें तलाश है। बस, फिर क्या था, डॉ. अरुड़सिंह गिरफ्तार कर लिये गए।

डॉ. अरुड़सिंह पर मुकदमा चला और उन्हें फाँसी का दंड हुआ। एक दिन जेल में एक थानेदार आपसे मिला और पूछा कि क्या आज से पहले भी मुझसे कभी मिले हैं? डॉ. अरुड़सिंह ने उत्तर दिया—

''तुम्हारी सभी हरकतें मेरी डायरी में दर्ज हैं।'' उन्होंने उस थानेदार की कुछ हरकतें बताईं भी। वह आश्चर्यचकित रह गया।

फाँसी के दिन तक डॉ. अरुड़सिंह का स्वास्थ्य काफी अच्छा हो गया था। सुबह फाँसी होने वाली थी। रात-भर आप खूब बेफिक्री की नींद सोए। जेलर ने आकर जगाया और फाँसी के तख्ते पर चलने के लिए कहा। आप हड़बड़ाकर उठे, 'वंदेमातरम्' का नारा लगाया और फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए। फिर वही हुआ, जो होता आया है।

डॉ. अरुड़सिंह जालंधर जिले के उसी 'सगवाल' गाँव के रहनेवाले थे, जहाँ का प्रसिद्ध क्रांतिकारी बंतासिंह था।

□

★ अर्जुनलाल सेठी

एक नौजवान अध्यापक जयपुर में अपनी पाठशाला में विद्यार्थियों को पढ़ा रहा था। वह उनसे प्रश्न करता था और कुछ विद्यार्थी उत्तर देने के लिए हाथ उठाते थे। किसी विद्यार्थी से वह अध्यापक उत्तर प्राप्त कर अपने पाठ को आगे बढ़ा रहा था। उसने अपनी कक्षा में कुछ प्रश्न छोड़े, जिनके उत्तर उसे इस प्रकार प्राप्त हुए—

''हमारे देश का क्या नाम है?''

''भारतवर्ष।''

''भारतवर्ष में रहनेवाले लोगों का आपस में क्या संबंध हुआ?''

''भारतवर्ष में रहनेवाले लोग आपस में भाई-भाई हुए।''

''हम सब लोगों की एक माता कौन है?''

''हम सब लोगों की एक माता भारत माता है।''

''आजकल अपनी भारत माता की क्या दशा है?''

''आजकल अपनी भारत माता पराधीन है।''

''अपनी पराधीन भारत माता को बंधनमुक्त करने के लिए हम सब लोगों

का क्या कर्तव्य है?''

''हम लोगों का कर्तव्य है कि हम सब उन लोगों से लड़ें, जिन्होंने हमारी भारत माता को दासता के बंधनों में जकड़ रखा है।''

''किन लोगों ने हमारी भारत माता को बंधनों में जकड़ रखा है?''

''हमारी भारत माता को अंग्रेजों ने बंधन में जकड़ रखा है।''

''इस नाते अंग्रेज हमारे कौन हुए?''

''अंग्रेज हमारे शत्रु हुए।''

''शत्रु के साथ हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?''

''हमें अपने शत्रु के साथ युद्ध करना चाहिए और उसे मार डालना चाहिए।''

प्रश्नोत्तर का क्रम समाप्त हो चुका था और अध्यापक ने प्राप्त जानकारी का समापन करते हुए कहा—

''बच्चो! अभी तुम लोगों ने ही बताया कि अंग्रेज हमारे शत्रु हैं और अपने शत्रु का नाश करना हमारा सबका कर्तव्य होता है। जो उम्र में बड़े और साधन-संपन्न हैं, वे अपने शत्रु के साथ लड़ें तथा अन्य लोग तन, मन एवं धन से सहयोग दें। यदि हम सभी अपने कर्तव्यों का पालन करें तो हम अपनी भारत माता को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कर सकते हैं।''

ये विचार प्रकट किए राजस्थान के एक प्राइवेट विद्यालय के अध्यापक अर्जुनलाल सेठी ने। अर्जुनलाल सेठी एक क्रांतिकारी थे और वे क्रांति के बीज निष्कलुष हृदयों में बोना चाहते थे; क्योंकि वे जानते थे कि इस उम्र में जमाए गए संस्कार उखड़ते नहीं हैं।

अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय में पढ़े हुए चार विद्यार्थियों ने क्रांति की चिनगारी ग्रहण की और वे उसे उत्तरोत्तर प्रज्वलित करने लगे। वे चार विद्यार्थी थे—मोतीचंद, मानिकचंद, जयचंद और जोरावरसिंह। विद्यालय से निकलकर वे लोग क्रांतिकारी संगठन में सम्मिलित हो गए। वे क्रांतिकारी थे और हथियार खरीदने के लिए क्रांतिकारियों को धन की आवश्यकता होती थी। उन दिनों हथियार खरीदने के लिए क्रांतिकारी लोग राजनीतिक डकैतियों का सहारा भी लेते थे। इन क्रांतिकारियों को मालूम पड़ा कि बिहार में आरा जिले के अंतर्गत 'नीमेज' नामक स्थान पर एक आश्रम है, जिसके महंत के पास अपार धन है। उस आश्रम पर क्रांतिकारियों ने छापा मारा और संघर्ष में उसके महंत की मृत्यु हो गई। धन तो वहाँ अवश्य था; पर भंडार की चाबी कहाँ रहती है, इसका पता केवल महंत को ही था। महंत की मृत्यु हो जाने के कारण क्रांतिकारियों को चाबी नहीं मिली और वे उस धन को प्राप्त नहीं कर सके।

क्रांतिकारी दल को जोधपुर राज्य के अंतर्गत एक अन्य आश्रम का पता चला, जिसके महंत के पास काफी हीरे-जवाहरात थे और वह उन्हें बाँस की एक पीली लाठी के अंदर छिपाकर रखता था। क्रांतिकारियों ने उसे अच्छी तरह समझा-बुझाकर कहा कि देशभक्ति के कार्यों में आपको सभी तरह की सहायता देनी चाहिए और यदि आप हमको अपने पास के धन में से थोड़ा धन भी दे देंगे तो भारत माता को स्वतंत्र करने के यश में आप भी साझीदार होंगे। महंत ने क्रांतिकारियों को अपने ऊपर हाथ नहीं धरने दिया। विवश होकर क्रांतिकारियों को महंत के साथ बल-प्रयोग करना पड़ा और उस संघर्ष में वह महंत भी चल बसा। क्रांतिकारियों ने उसकी लाठी को तोड़ा; पर उसके अंदर हीरे-जवाहरातों के स्थान पर कोयले निकले। हीरे-जवाहरात उसने पहले ही अन्यत्र छिपा दिए थे।

नीमेज और जोधपुर कांडों के पश्चात् क्रांति के क्षेत्र में वे घटनाएँ हुईं, जिन्हें 'दिल्लो बम कांड' और लाहौर के 'लॉरेंस गार्डन बम कांड' के नाम से जाना जाता है। इस समय तक पुलिस की निगाह अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय पर पड़ चुकी थी और विवश होकर सेठी को जयपुर छोड़कर इंदौर में विद्यालय खोलना पड़ा। दिल्ली तथा लाहौर के बम कांडों के पश्चात् क्रांतिकारियों ने कुछ विद्रोही परचे छपवाए और सारे भारतवर्ष में उन्हें वितरित किया। ये परचे राजस्थान और इंदौर भी पहुँचे। इंदौर में अर्जुनलाल सेठी का विद्यालय क्रांतिकारियों का आश्रयस्थल बना हुआ था। एक बार पुलिस ने उनके विद्यालय पर छापा मारा। पुलिस को वहाँ ठहरे हुए उनके एक पुराने विद्यार्थी शिवनारायण के पास उन आपत्तिजनक परचों की कुछ प्रतियाँ मिल गईं। उसके बयानों से नीमेज कांड और जोधपुर कांड के रहस्य भी पुलिस के हाथ लग गए। नीमेज कांड के विष्णुदत और मोतीचंद पकड़ लिये गए। ये विष्णुदत्त मिर्जापुर के रहनेवाले थे और जयपुर के विद्यालय में वे अर्जुनलाल सेठी के साथ अध्यापन कार्य करते थे। मानिकचंद और जोरावरसिंह को पुलिस पकड़ नहीं सकी। जोधपुर कांड में सम्मिलित केशरीसिंह एवं हीरालाल जगलोरी पर मुकदमा चला और सरकार ने उनकी सारी जायदाद भी जब्त कर ली। केशरीसिंह के भाई किशोरसिंह एक अच्छे इतिहासवेत्ता थे। उनकी संपत्ति भी सरकार ने जब्त कर ली।

अर्जुनलाल सेठी को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उनका नाम दिल्ली कांड तथा नीमेज कांड के साथ जोड़ा गया। उनके विरुद्ध कोई यथेष्ट प्रमाण न मिलने के कारण उन्हें कोई सजा तो नहीं मिली, पर जयपुर की जेल में उन्हें नजरबंद करके रखा गया।

सन् १९२० में कांग्रेस के साथ संधिवार्त्ता चलाने के लिए सभी राजबंदियों

और कुछ क्रांतिकारियों को जेल से मुक्त किया गया। अर्जुनलाल सेठी भी जयपुर से छूट गए। कुछ दिन तक सेठी ने विजयसिंह पथिक के साथ 'राजस्थान केसरी' पत्र का संपादन किया। अपने शेष जीवन में वे गांधीजी द्वारा संचालित आंदोलन में भाग लेते रहे।

सच्चा क्रांतिकारी कभी खाली नहीं बैठता।

□

★ अवधबिहारी

अवधबिहारी

दिल्ली के मिशन स्कूल में मास्टर अमीरचंद अपनी कक्षा को पढ़ा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने अपने छात्रों को बताया कि भारतवासियों की भलाई के लिए अंग्रेजों ने बहुत से कार्य किए हैं। वे अपने वक्तव्य को और भी आगे बढ़ाने वाले थे कि कक्षा के एक विद्यार्थी ने अपना हाथ ऊँचा कर दिया। मास्टरजी ने पूछा—

"क्या मेरे वक्तव्य से तुम्हें कुछ आपत्ति है?"

"जी हाँ, श्रीमान! मैं यह कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजों ने भारतवर्ष में जो कार्य किए हैं, वे हमारी भलाई के लिए नहीं, वरन् अपनी प्रशासनिक सुविधा के लिए किए हैं।"

"क्या तुम कुछ उदाहरण दे सकते हो?"

"जी हाँ, श्रीमान! अभी आप ही ने बताया था कि अंग्रेजों ने भारतवर्ष में रेलें चलाईं और सड़कों का निर्माण किया। मैं तो यह समझता हूँ कि अंग्रेजों ने रेलें इसलिए चलाईं कि उनके द्वारा वे सभी स्थानों पर पहुँचकर हुकूमत कर सकें और विद्रोह की स्थिति में उसके दमन के लिए अपनी पुलिस तथा सेना भेज सकें। सड़कें भी तो उन्होंने इसी उद्देश्य से बनाई हैं।"

विद्यार्थी के उत्तर ने अध्यापकजी को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने उस विद्यार्थी का नाम पूछा। उसने अपना नाम 'अवधबिहारी' बताया। अध्यापकजी

अवधबिहारी को कभी-कभी अपने घर भी बुलाने लगे। एक दिन उन्होंने उससे कहा—"देखो अवधबिहारी! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में अंग्रेजों के प्रति घृणा भरी हुई है। मैं भी तो उनका शत्रु हूँ; पर प्रकट में ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे किसीको मुझपर संदेह करने का अवसर मिले। तुमको भी मेरा यही परामर्श है कि अंग्रेजों के प्रति अपनी भावनाओं को तुम खुल्लमखुल्ला प्रकट मत किया करो। हमें शीघ्र ही ऐसे अवसर मिलेंगे, जब हम अंग्रेजों को कुछ ठोस हानि पहुँचा सकें।"

बात अवधबिहारी की समझ में आ गई। उस दिन से वह अध्ययन के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु क्रांति के क्षेत्र में भी मास्टर अमीरचंद का शिष्य बन गया।

बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् अवधबिहारी ने अध्यापक बनने की दिशा में एक कदम उठाया और बी.टी. का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए वह लाहौर के ट्रेनिंग कॉलेज में भरती हो गया। अवधबिहारी ने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया और परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके उन्होंने स्वर्णपदक प्राप्त किया। उनकी योग्यता का मूल्यांकन करके उन्हें ट्रेनिंग कॉलेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया गया।

अवधबिहारी को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह एक अच्छा अवसर मिला। दिल्ली के क्रांतिकारियों से तो उनका परिचय था ही, पंजाब के क्रांतिकारियों के साथ भी उनका मेल-जोल बढ़ गया। वे अपने छात्रों के दिलों में भी क्रांति की आग सुलगाने लगे। समाज के प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने दल में मिलाने के लिए अवधबिहारी ने पहले उनके साथ मिलकर समाज सुधार के कार्यों में भाग लेना प्रारंभ किया और फिर उन्हें अपने रंग में रँग लिया। दिल्ली के इस प्रकार के लोगों में मास्टर गणेशीलाल खस्ता, हंसराज और लाला हनुमंत सहाय प्रमुख थे। लाला हनुमंत सहाय तो बहुत बड़े व्यवसायी थे और उनके आ जाने के कारण क्रांति दल को अर्थाभाव नहीं रहा।

अवधबिहारी ने बम बनाने और उनका विस्फोट करने में भी निपुणता प्राप्त कर ली। उस समय रासबिहारी बोस के माध्यम से बंगाल के क्रांतिकारी पंजाब के क्रांतिकारियों को बम निर्माण कला सिखा रहे थे। मास्टर अमीरचंद के माध्यम से अवधबिहारी भी रासबिहारी बोस के संपर्क में आए और भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज को बम से उड़ाने की योजना में सम्मिलित हो गए। दिल्ली में २३ दिसंबर, १९१२ को लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर किए गए बम प्रहार और लाहौर में १७ मई, १९१३ को लॉरेंस गार्डन बम कांड—दोनों में अवधबिहारी की प्रमुख भूमिका थी। इस सबके अतिरिक्त 'लिबर्टी' तथा अन्य राजद्रोही परचे लिखने और छपवाने में भी अवधबिहारी ने प्रमुख भूमिका अदा की।

अवधबिहारी ने क्रांति कार्य सुचारु रूप से करने के लिए कुछ संकेत शब्द भी निश्चित किए। उदाहरण के लिए एक वाक्य ले सकते हैं—

'चार सौ रुपए आठ आना दस पाई में सौदा निश्चित है।'

इस सांकेतिक वाक्य में अर्थ निहित है कि अवधबिहारी के मकान पर आठ बजकर दस मिनट पर मीटिंग होगी। यह उन्होंने पहले ही निश्चित कर लिया था कि मास्टर अमीरचंद के मकान को 'सौ रुपए' और अवधबिहारी के मकान को 'चार सौ रुपए' के नाम से पुकारा जाएगा। घंटे और मिनट के लिए आना-पाई के संकेत थे।

क्रांति दल के सदस्य दीनानाथ की कमजोरी के कारण अवधबिहारी भी पुलिस के हाथों १९ फरवरी, १९१४ को गिरफ्तार हो गए। उनके मकान की तलाशी ली गई और तलाशी में 'लिबर्टी' एवं 'तलवार' नाम के कुछ परचे पुलिस के हाथ लगे। 'तलवार' नाम के परचे पर शहीद मदनलाल धींगरा का चित्र छपा था, जिसे लंदन में फाँसी दी गई थी। पहले यह परचा बर्लिन से छपवाकर सभी जगह भेजा गया था। उनके मकान से कुछ पेट्रोल और बम विस्फोट करनेवाली टोपियाँ भी मिलीं। पाए गए परचों में यही बात कही गई थी कि जिस तरह भी हो, अंग्रेजों का वध कर देना चाहिए।

दिल्ली षड्यंत्र कांड के अंतर्गत अवधबिहारी पर भी मुकदमा चलाया गया और उनका भी वही परिणाम हुआ, जो उनके गुरु मास्टर अमीरचंद का हुआ था। उन्हें इस बात का हर्ष था कि जिस गुरु के चरणों में बैठकर उन्होंने जीवन तथा क्रांति की शिक्षा प्राप्त की थी, उन्हींके साथ उन्हें फाँसी के फंदे पर लटकने का सौभाग्य मिला।

सन् १९१५ की ११ मई को अंबाला जेल में अवधबिहारी को फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया। अपने गुरु को प्रणाम करके हँसते-हँसते वे फाँसी के फंदे पर झूल गए।

□

★ आत्माराम

वह गोरे रंग का और छरहरे बदन का क्रांतिकारी था, जिसकी आँखों में पारदर्शी किरणों जैसी क्षमता थी। वह किसी व्यक्ति को देखकर सरलता से यह अंदाजा लगा सकता था कि कौन व्यक्ति विश्वसनीय है और कौन अविश्वसनीय। उन दिनों वह स्याम देश (थाईलैंड) में रहनेवाले भारतीय क्रांतिकारियों का बहुत उपयोगी सहयोगी था। उसका नाम आत्माराम था। उसकी उम्र बीस-बाईस वर्ष के लगभग ही होगी।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में गदर पार्टी की लहर न केवल अमेरिका तथा कनाडा में ही फैल रही थी, अपितु सुदूर पूर्व के देशों में भी भारत-मुक्ति के लिए आंदोलन छिड़ा हुआ था और भारतीय नागरिकों के अतिरिक्त ब्रिटिश फौजों में भी बगावत फैल रही थी। अंग्रेजी सरकार ने जगह-जगह अपने जासूस छोड़ रखे थे, जो बगावत की गंध ले-लेकर सरकार को सूचनाएँ देते रहते थे और विद्रोहियों का दमन कराते रहते थे।

अंग्रेज अधिकारियों ने हरनामसिंह नाम के एक व्यक्ति को पाला और उसके माध्यम से स्याम के भारतीय क्रांतिकारियों की सूचनाएँ उन्हें प्राप्त होने लगीं। हरनामसिंह अपने काम में होशियार और बहुत चालाक व्यक्ति था, जो किसीको अपनी छाया भी नहीं छूने देता था।

कहावत है कि सेर को सवा सेर मिल ही जाता है। हरनामसिंह से निबटने के लिए भारतीय क्रांतिकारियों को आत्माराम मिल गया। आत्माराम भी बहुत फुर्तीला और कुशाग्र बुद्धि का नवयुवक था। उसने स्याम में क्रांति का ऐसा जाल बिछा रखा था कि उसकी गतिविधियों से स्याम की सरकार भी चिंतित हो उठी। आत्माराम को स्याम से निर्वासित कर दिया गया।

आत्माराम अपना काम अधूरा छोड़कर स्याम से बाहर नहीं जाना चाहता था। एक दिन घात लगाकर वह देशद्रोही हरनामसिंह पर टूट पड़ा और उसकी जान ले ली। वह भी गिरफ्तार कर लिया गया। मामला अधिक नहीं चला; क्योंकि

आत्माराम ने स्वयं ही स्वीकार कर लिया कि उसने हरनामसिंह को मारा है। उसने कहा कि मैं हरनामसिंह जैसे गद्दार को भारत के देशभक्तों के रास्ते से हटाना चाहता था।

उस जोशीले नौजवान को शंघाई में २ जून, १९१७ को फाँसी पर लटका दिया गया।

□

★ आत्मासिंह ★ कालूसिंह ★ चाननसिंह ★ बंतासिंह ★ बूटासिंह ★ हरनामसिंह
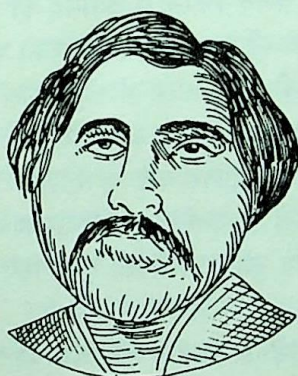
आत्मासिंह बंतासिंह

एक दिन लाहौर के अनारकली बाजार में गदर पार्टी का एक क्रांतिकारी जा रहा था। उसका नाम था बंतासिंह। उसके साथ एक साथी और था, जिसका नाम था सज्जनसिंह फिरोजपुरी। पुलिस के एक थानेदार ने बंतासिंह को देख लिया। पुलिस को उसकी तलाश भी थी। बंतासिंह को रोककर पुलिस दारोगा ने कहा—"ठहरो!"

"लीजिए जनाब, ठहर गया! कहिए, क्या हुक्म है?"

"हम तुम्हारी तलाशी लेंगे।"

"शक्ल से तो आप भले आदमी मालूम होते हैं और आदमी तो मैं भी बुरा नहीं हूँ। जाने दीजिए न, दारोगा साहब!"

"नहीं, हम बिना तलाशी लिये तुम्हें नहीं जाने देंगे।"

''मैं एक बार आपसे फिर अर्ज कर रहा हूँ कि आप मेरी तलाशी न लें। सरे बाजार एक भले आदमी को बेआबरू करते हुए आपको क्या मिलेगा?''

क्रांतिकारी की बातों में न आकर थानेदार तलाशी लेने के इरादे से उसकी तरफ बढ़ा। बंतासिंह दो कदम पीछे हट गए और झट से अपनी पिस्तौल हाथ में लेते हुए बोले—

''मेरे पास तो बस यह है। अगर आप नहीं मानते तो इसका तोहफा मैं खुद ही आपको दिए देता हूँ।''

यह कहते हुए बंतासिंह ने दो गोलियाँ थानेदार साहब की खोपड़ी में उतार दीं। थानेदार साहब धराशायी हो गए और बंतासिंह अपने साथी के साथ भाग निकले। थानेदार के साथ के सिपाहियों और बाजार के लोगों ने उसका पीछा किया। बंतासिंह का साथी ठोकर खाकर गिर पड़ा। बंतासिंह ने अपनी पिस्तौल के बल पर पीछा करनेवालों को रोक दिया और अपने साथी को खड़ा कर दिया। अधिक चोट लगने के कारण वह चलने-फिरने में असमर्थ हो गया था। बंतासिंह अकेले ही भाग निकले और रेलवे स्टेशन पहुँच गए। उनका पीछा करती हुई पुलिस भी वहाँ पहुँच चुकी थी। गाड़ी छूटने वाली थी। बंतासिंह झट से एक डिब्बे में सवार हो गए। पुलिस के कुछ जवान भी उस डिब्बे में चढ़ गए। बंतासिंह डिब्बे के एक सिरे पर थे और पुलिसवाले दूसरे सिरे पर। बंतासिंह के हाथ में पिस्तौल थी और पुलिसवाले लाठियाँ लेकर ही उनके पीछे दौड़ पड़े थे। अपनी पिस्तौल के बल पर उन्होंने पुलिसवालों को दूसरे सिरे पर ही रोके रखा।

हमें उन स्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा, जिन्होंने बंतासिंह को एक भयंकर बागी बना दिया और पंजाब की पुलिस उनके नाम से काँपने लगी। बंतासिंह क़ा जन्म जिला जालंधर के 'सगवाल' नामक गाँव में सन् १८९० में हुआ था। बालक पढ़ने-लिखने में होशियार निकला। नेतृत्व के गुण उसमें प्रारंभ से ही थे। १९०४-५ में काँगड़ा में भारी भूकंप आया। बंतासिंह ने विद्यार्थियों का एक दल बनाया और भूकंप-पीड़ितों की खूब सेवा की। समाजसेवा के और भी कई कार्यों में इस दल ने प्रशंसनीय कार्य किया।

अध्ययन समाप्त करके बंतासिंह चीन होते हुए अमेरिका जा पहुँचे। अमेरिका पहुँचकर जीवन की गाड़ी गदर की पटरियों पर दौड़ने लगी, जिसके स्टेशन थे— विदेशियों द्वारा पग-पग पर अपमान, गदर पार्टी की सक्रियता, भारत पहुँचने का आह्वान, विप्लव दल में सम्मिलित होकर अंग्रेजी शासन पलटने के क्रिया-कलाप।

लाहौर के अनारकली बाजार में थानेदार को मारकर बंतासिंह फरारी

क्रांतिकारी हो गए। अब आप विप्लव दल के नेता थे। योजनाएँ बनने लगीं और फौज को भड़काने के प्रयत्न किए जाने लगे। थोड़े ही दिनों में आपकी पार्टी का एक अन्य प्रभावशाली सदस्य प्यारासिंह पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। बंतासिंह को यह लगा कि कोई-न-कोई व्यक्ति हमारे पीछे अवश्य है, जो हमारी गतिविधियों की सूचनाएँ पुलिस को देता रहता है। छानबीन से वे इस नतीजे पर पहुँचे कि नंगल कलाँ के जेलदार चंदासिंह की सूचना पर ही साथी प्यारासिंह की गिरफ्तारी हुई है। मीटिंग की गई और तय हुआ कि जेलदार चंदासिंह को दूसरी दुनिया की सैर कराई जाए। योजना निश्चित हो गई। एक गुप्तचर को यह पता लगाने के लिए भेजा गया कि चंदासिंह घर पर है या नहीं। गुप्तचर ने सूचना दी कि चंदासिंह घर पर ही है। तीन क्रांतिकारी २५ अप्रैल, १९१५ को चंदासिंह के घर जा पहुँचे। ये तीन क्रांतिकारी थे—बंतासिंह, बूटासिंह और जिवंदसिंह। इन तीनों ने चंदासिंह के घर पहुँचकर उसे गोलियों से भून डाला। मुखबिरी करने का पुरस्कार उसे दे दिया गया।

देशद्रोहियों को दंड देने का क्रम बंद नहीं हुआ। एक और थे जगतपुर के सरदार बहादुर अच्छरसिंह, जो क्रांतिकारियों के भेद सरकार बहादुर को दे रहे थे। बंतासिंह ने इस बार कुछ नए साथियों को अपने साथ लिया और अच्छरसिंह को ठिकाने लगाने की योजना बन गई। ४ जून, १९१५ को सायंकाल लगभग छह बजे बंतासिंह, कालूसिंह, आत्मासिंह और चाननसिंह ने सरदार बहादुर अच्छरसिंह पर आक्रमण करके उन्हें घटनास्थल पर ही समाप्त कर दिया।

यह तो देशद्रोहियों को सबक सिखाने और उन्हें अपने रास्ते से हटाने की बात थी। क्रांतिकारियों का उद्देश्य केवल यही तो नहीं था। वे तो एक व्यापक गदर की तैयारी में संलग्न थे और इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए उन्हें हथियारों की आवश्यकता थी। हथियार इकट्ठे करने के लिए कई योजनाएँ बनीं। एक योजना यह भी थी कि अमृतसर के पास 'वल्ला' नामक स्थान पर जो नहर का पुल है, उसकी रक्षा के लिए तैनात गार्डों से हथियार छीन लिये जाएँ। इस योजना में बंतासिंह के तीन साथी वही थे, जिन्होंने अच्छरसिंह को मारने की योजना में साथ दिया था। कुछ नए साथियों को और साथ लिया गया। ये थे—हरनामसिंह, रंगासिंह और रूढ़सिंह।

सुबह चार बजे एक रेलगाड़ी वल्ला पुल के ऊपर से होकर जाती थी और पुल पार करने के लिए यह अत्यंत धीमी हो जाती थी। १२ जून, १९१५ को सभी क्रांतिकारी उस गाड़ी में सवार हो गए। उन्होंने बाहर झाँककर देख लिया कि पुल की रक्षा करनेवाले गार्ड पुल के किस तरफ हैं। जब गाड़ी पुल के पास

धीमी हो गई, तो पुल-रक्षकों की दूसरीवाली दिशा में क्रांतिकारी लोग उतर पड़े। बीच में गाड़ी थी। उसके एक ओर छह रक्षकों का दल था और दूसरी ओर क्रांतिकारियों का दल। जैसे ही गाड़ी पार हुई, क्रांतिकारियों ने झुककर दनादन फायर करना प्रारंभ कर दिया। रक्षक लोग इस आकस्मिक और तगड़े हमले के कारण अपने हथियार छोड़कर भाग खड़े हुए। वे असावधान थे और अँधेरा था। उनका अनुमान होगा कि बीस-पच्चीस लोगों के गिरोह ने हमला किया है। रक्षकों में से सिपाही फूलसिंह और हवलदार चत्तर नायक घटनास्थल पर ही मारे गए। चार व्यक्ति भाग खड़े हुए। छह राइफलें और बहुत सारे कारतूस क्रांतिकारियों के हाथ लगे।

हथियार लूटकर क्रांतिकारी लोग भाग खड़े हुए। पुलिस भी उनके पीछे लग गई। 'पालासौर' गाँव के निकट क्रांतिकारियों को एक घुड़सवार मिला। उन्होंने उससे घोड़ा माँगा, पर उसने घोड़ा देने से इनकार कर दिया। उसे गोली मार दी गई। मरनेवाले घुड़सवार का नाम गुलाब था। इसी बीच पीछा करती हुई पुलिस पार्टी पहुँच गई और क्रांतिकारियों को घोड़ा छोड़कर भागना पड़ा।

भागने और पीछा करने के क्रम में क्रांतिकारियों और पुलिस पार्टी के बीच गोलियों का आदान-प्रदान होता जा रहा था। रास्ते में एक नदी पड़ी, जिसका नाम 'कलंगा' था। उसे बिना नावों के पार नहीं किया जा सकता था। वहाँ नावें भी थीं और नाववाले भी थे। क्रांतिकारियों ने नाविकों से उन्हें पार ले जाने के लिए कहा। मलंग नाम का एक नाविक उद्दंड था। उसने अपने सभी साथियों से मना कर दिया कि इन लोगों को नाव पर चढ़ाकर कोई भी पार न उतारे। क्रांतिकारियों ने एक गोली चलाकर उस उद्दंड नाविक मलंग को दुनिया के पार उतार दिया। अब क्रांतिकारी लोग दो अलग-अलग दिशाओं में भागने लगे। एक दिशा में भागे बंतासिंह और दो साथी। बंतासिंह नहीं पकड़े गए, दोनों साथी पकड़े गए। दूसरी दिशा में कपूरथला की तरफ चार क्रांतिकारी भागे और उन्होंने चालीस मील का सफर तय किया। आखिर कपूरथला रियासत में चार क्रांतिकारी—कालूसिंह, चाननसिंह, हरनामसिंह और आत्मासिंह पकड़ लिये गए।

बंतासिंह पुलिस पार्टी के हाथ नहीं आ सके, लेकिन उनका पीछा किया जाता रहा। एक बार घुड़सवार पुलिस ने जंगल में उन्हें घेर लिया। बंतासिंह आगे भाग रहे थे और घुड़सवार पीछे-पीछे। घुड़सवारों को चकमा देते हुए और लुका-छिपी करते हुए बंतासिंह को साठ मील तक भागना पड़ा। क्रांतिकारियों के लिए इतना भागना असंभव बात नहीं थी। उनके चार साथी भी चालीस मील भागकर गिरफ्तार हुए थे। बंगाल के क्रांतिकारी नलिनी बागची तो पुलिस को छकाते हुए

अस्सी मील भागे थे।

घुड़सवार पुलिस के साथ साठ मील की इस दौड़ में बंतासिंह जीत तो गए, पर उनका शरीर लगभग टूट-सा गया। उनके पैर लहूलुहान हो गए और वे बीमार पड़ गए। सोचा कि जंगल में मरने के बजाय तो अच्छा है कि घर चलकर मरा जाए। अपने घर जा पहुँचे। छिप-छिपकर घर में रहने लगे और वहाँ उनका उपचार होने लगा। उनके घर पहुँचने का समाचार एक पड़ोसी रिश्तेदार को लग गया, जो पुलिस से मिला हुआ था। उसने आग्रह किया कि तुम्हारा अपने घर ठहरना ठीक नहीं, मेरे घर चलो। बंतासिंह अपने उस रिश्तेदार के घर पहुँच गए। वह पुलिस को बुला लाया और बंतासिंह को २५ जून, १९१५ को गिरफ्तार करा दिया।

जब पुलिस पार्टी इन्हें गिरफ्तार करने पहुँची तो उसे देखकर बंतासिंह ठहाका मारकर हँस पड़े और अपने रिश्तेदार से कहने लगे—

''अरे भाई, गिरफ्तार ही कराना था तो कुछ हथियार तो मेरे पास रहने देते। और कुछ नहीं तो कम-से-कम एक लाठी ही होती तो दो-दो हाथ करके अपने अरमान तो निकाल लेता।''

यह उक्ति सुनकर पुलिस कप्तान ने कहा—

''तो जनाब, क्या आपने हम लोगों को बुजदिल समझ रखा है?''

बंतासिंह का उत्तर था—

''आप क्या हैं, यह तो तब बताऊँगा जब आप मुझे निहत्था ही बाहर आ जाने दें।''

पुलिस कप्तान ने इस चुनौती को स्वीकार नहीं किया और अपने दल के साथ कमरे के अंदर घुसकर ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया। आपको गिरफ्तार करके होशियारपुर पहुँचाकर डिप्टी कमिश्नर की अदालत में पेश किया गया। डिप्टी कमिश्नर बंतासिंह को देखकर और उससे बातचीत करके अत्यधिक प्रभावित हुआ।

बंतासिंह की गिरफ्तारी का समाचार नगर-भर में आग की तरह फैल गया। जिसने सुना, वही दर्शनों के लिए दौड़ पड़ा। अदालत में अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। उनका उद्बोधन था—

''प्यारे भाइयो!

''आज हमें इस तरह बेड़ियों और जंजीरों में कसा हुआ देखकर आप लोग निराश न हों। हमारी निश्चित मृत्यु देखकर आप लोग घबराएँ नहीं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे बलिदान व्यर्थ नहीं जाएँगे। वह दिन शीघ्र आ रहा है, जब भारत पूर्णतः स्वतंत्र हो जाएगा और अकड़बाज गोरे लोग आपके पैरों पर आ

गिरेंगे। आप सब लोगों को स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राण देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।''

बंतासिंह के साथियों में से देशद्रोही चंदासिंह को मारने में सहयोगी बूटासिंह ६ जून को ही पकड़ लिये गए थे। बूटासिंह को १२ अगस्त, १९१५ को लाहौर जेल में फाँसी दे दी गई।

देशद्रोही अच्छरसिंह को मारने के अपराध में आत्मासिंह, कालूसिंह और चाननसिंह को पहले ही ६ अगस्त को लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया था। हरनामसिंह को ९ अगस्त और बंतासिंह को १४ अगस्त, १९१५ को लाहौर जेल में ही फाँसी पर लटका दिया गया।

गिरफ्तार होने की तारीख २५ जून, १९१५ से फाँसी की तारीख १४ अगस्त, १९१५ तक जेल में रहते हुए बंतासिंह का वजन ग्यारह पाउंड बढ़ गया था। फाँसी का फंदा चूमते हुए इस वीर ने परमात्मा को धन्यवाद देते हुए कहा—

''हे परमात्मा! तुझे कोटिशः धन्यवाद है, जो तूने मुझे देशसेवा में जीवन की बलि देने का सुअवसर प्रदान किया है।''

□

★ आशुतोष लाहिड़ी

आशुतोष लाहिड़ी का जन्म बंगाल में हुआ था। १९०८ के मानिक तल्ला बम कांड ने उन्हें उत्प्रेरित किया। उन्होंने श्री यतींद्रनाथ मुखर्जी, श्री नरेंद्र भट्टाचार्य एवं श्री अविनाशचंद्र चक्रवर्ती आदि क्रांतिकारियों के साथ कार्य किया और शस्त्रास्त्र इकट्ठे कर युवकों में वितरित किए। उन्होंने युवकों को बम बनाने का प्रशिक्षण भी दिया।

१९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू की तो आशुतोष लाहिड़ी को भी १८ मई, १९१५ को बंदी बना लिया गया और सरकार के खिलाफ षड्यंत्र रचने का आरोप लगाकर उनपर मुकदमा चलाया गया।

देशबंधु चित्तरंजन दास ने उनकी पैरवी की। अगस्त १९१५ में उन्हें दस वर्ष का दंड देकर कालापानी भेज दिया गया।

कालापानी में अंग्रेज लोग देशभक्त क्रांतिकारियों पर अमानवीय अत्याचार करते थे। उन्हें कोल्हू में बैलों की जगह जोतकर तेल पेरवाया जाता था। आशुतोष लाहिड़ी ने एक दिन कोल्हू में जुतने से इनकार कर दिया तो उन्हें पंद्रह बेंतों की

सजा दी गई।

१९२१ में उन्हें कालापानी से मुक्त कर दिया गया। वे पुनः क्रांतिकारी कार्यों में जुट गए।

१९३० में 'स्टेट्समैन' के अंग्रेज संपादक मि. वाट्मन की हत्या कर दी गई। आशुतोष लाहिड़ी को इस हत्याकांड के आरोप में बंदी बना लिया गया। 'बंगाल ऑर्डिनेंस' के अंतर्गत भी उन्हें चार वर्षों तक नजरबंद रखा गया।

□

★ इंदरसिंह ★ प्रेमसिंह

क्रांतिकारियों का वह दल अमेरिका से लौटते हुए गदर वीरों का था। ये लोग गिरफ्तारी से बचने के लिए कलकत्ता होकर न आते हुए, मद्रास होकर भारत पहुँचे थे और पूरे पंजाब में फैलकर सैनिकों को विद्रोह के लिए भड़का रहे थे। उनके कार्यक्रम के मुख्य अंग थे—

१. छावनियों में जाकर भारतीय अफसरों और सैनिकों को विप्लव के लिए तैयार करना। वे बहुत बड़े पदवाले अफसरों के पास नहीं जाते थे; क्योंकि बड़ा पद छिन जाने के भय से वे विद्रोहियों का साथ देने के लिए तैयार नहीं होते थे और सरकार को सूचनाएँ भी दे देते थे।

२. विप्लव के लिए खरीदकर या लूटकर हथियारों का संग्रह करना।

३. सरकारी खजानों को लूटकर हथियार खरीदने के लिए धन-संग्रह करना।

४. विद्रोहियों के रास्ते में आनेवाले अफसरों को उचित दंड देना।

५. मुखबिरों और देशद्रोहियों को उचित दंड देना। ऐसे व्यक्तियों के लिए मृत्युदंड ही एकमात्र दंड होता था।

अमृतसर के पादरीकलाँ गाँव में बैठा हुआ क्रांतिकारियों का वह दल इसी बात पर विचार कर रहा था कि मुखबिर कपूरसिंह को कैसे ठिकाने लगाया जाए। कपूरसिंह पहले तो इन्हीं लोगों के साथ था, पर प्रलोभनवश सरकारी गवाह बन गया था और क्रांतिकारियों के भेद देकर उन्हें पकड़वाने का काम कर रहा था।

क्रांतिकारियों के दल को २ अगस्त, १९१५ को मुखबिर कपूरसिंह से बदला लेने का अवसर मिल गया। पादरीकलाँ गाँव में वह कुएँ पर स्नान करके लौट रहा था कि क्रांतिकारी दल ने गोलियाँ चलाकर उसे देशद्रोह का पुरस्कार दे दिया।

बाद में कुछ क्रांतिकारी पकड़े गए। कुछ फरार भी रहे। ७ मार्च, १९१६ को लाहौर में विशेष ट्रिब्यूनल की नियुक्ति करके उन लोगों पर मुकदमा चलाया गया और पाँच क्रांतिकारियों को आजीवन कारावास का दंड तथा प्रेमसिंह और इंदरसिंह को मृत्युदंड दिया गया। उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

□

★ ईश्वरसिंह ★ उत्तमसिंह ★ रंगासिंह ★ रूढ़सिंह ★ वीरसिंह ★ हरिसिंह बाहुबल

क्रांतिकारियों में बहस इस बात पर चल रही थी कि गदर योजना विफल हो जाने के कारण जो साथी गिरफ्तार करके लाहौर जेल में बंद कर दिए गए हैं, क्या उन्हें जेल से छुड़ाने का कोई उपाय हो सकता है? बहस में भाग लेते हुए रंगासिंह ने कहा—"साथियों को जेल से छुड़ाने के लिए एक बड़े दल की आवश्यकता होगी, जो दो भागों में विभक्त हो। एक दल जेल पर हमला करके साथियों को छुड़ाए और दूसरा प्रत्याक्रमण करनेवाली पुलिस का मुकाबला करे।"

रंगासिंह का प्रस्ताव तो ठीक था और क्रांतिकारियों के पास इतना बड़ा दल भी था तथा उनमें मरने-मारने के हौसले भी थे; पर यदि कमी थी तो बस अच्छे हथियारों की। इस कमी को दूर करने के लिए वीरसिंह का सुझाव था—

"जितना खतरा मोल लेकर हम लाहौर जेल पर हमला करेंगे, उससे कम खतरा मोल लेकर हम कपूरथला राज्य के हथियारखाने पर हमला करके हथियारों का जखीरा हस्तगत कर सकते हैं। जब इतने हथियार हमारे पास हो जाएँगे तो फिर हम लोग दल-बल के साथ लाहौर जेल पर आक्रमण करके अपने साथियों को छुड़ा लेंगे।"

वीरसिंह के प्रस्ताव से सब सहमत तो हुए, पर मूल समस्या का अभी समाधान नहीं हुआ था। कपूरथला राज्य के मैगज़ीन को लूटने के लिए भी तो हथियारों की आवश्यकता थी और अभी उन लोगों के पास इतने अच्छे हथियार नहीं थे, जिनसे कपूरथला पर हमला किया जा सके। इस समस्या के प्रति रंगासिंह ने ही फिर एक सुझाव रखा—

"अमृतसर के पास नहर पर जो वल्ला का पुल है, उसकी रक्षा के लिए गार्ड रहते हैं। उनपर हमला करके हथियार छीन लेना उतनी बड़ी बात नहीं है।

यह ठीक है कि गार्डों में से कुछ लोगों की जान जाएगी और कुछ की जान हम लोगों में से भी जाएगी; पर यदि जान जाने का भय बना रहा तो कुछ काम भी नहीं होगा।''

रंगासिंह की यह योजना सभी को पसंद आ गई और वल्ला के पुल पर तैनात पुलिस गार्डों पर क्रांतिकारियों के एक दल ने १२ जून, १९१५ को सुबह चार बजे अचानक हमला कर दिया, जिसमें सिपाही फूलसिंह और हवलदार चत्तर नायक मारे गए। क्रांतिकारियों में से कोई हताहत नहीं हुआ। भारी मात्रा में कारतूस और राइफलें क्रांतिकारियों के हाथ लगीं।

वल्ला पुल कांड के पश्चात् तुरंत ही क्रांतिकारी दल का पीछा किया गया। कुछ लोग उसी समय गिरफ्तार हो गए और कुछ बाद में। उन लोगों पर 'लाहौर षड्यंत्र केस' के अंतर्गत ही 'प्रथम पूरक अभियोग' दायर हुआ। यह अभियोग २९ अक्तूबर, १९१५ को आरंभ हुआ। इसमें एक सौ दो व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया, जिनमें से नौ गिरफ्तार नहीं हुए थे। ३० मार्च, १९१६ को इस मुकदमे का निर्णय सुना दिया गया। छह क्रांतिकारियों को मृत्युदंड सुनाया गया। पैंतालीस क्रांतिकारियों को आजन्म कारावास का दंड मिला और आठ को विभिन्न अवधि के कारावास का दंड। पंद्रह क्रांतिकारियों को बिना सजा के छोड़ दिया गया। बाद में मृत्युदंड पानेवाले छह क्रांतिकारियों में से एक का दंड आजन्म कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। फाँसी का दंड पानेवाले क्रांतिकारी थे—

१. **हरिसिंह बाहुबल :** हरिसिंह बाहुबल ने करतारसिंह के साथ सनेवाल डकैती कांड में भी भाग लिया था, जिसमें एक व्यक्ति मारा गया था। इनपर कपूरथला कांड में भी अभियोग चलाया गया था। हरिसिंह बाहुबल क्रांतिकारियों में वरिष्ठ माने जाते थे और प्रत्येक साहसिक अभियान में इन्हें सम्मिलित किया जाता था।

२. **ईश्वरसिंह उर्फ सरनसिंह :** ईश्वरसिंह फिरोजपुर जिले के अंतर्गत मोगा तहसील के गाँव मूदी के रहनेवाले थे और कपूरथला कांड के प्रमुख अभियोगी थे।

३. **रंगासिंह :** रंगासिंह जालंधर जिले के खुर्दपुर नामक गाँव के रहनेवाले थे। पिता का नाम गुरुदत्तसिंह था। इनका जन्म सन् १८८५ में हुआ था। कुछ दिन फौज में नौकरी की और फिर अमेरिका चले गए। छह वर्ष अमेरिका में रहने के पश्चात् २१ दिसंबर, १९१४ को गदर योजना के अंतर्गत आप भारत आ गए और विप्लव यज्ञ में भाग लेने लगे। कई योजनाओं में भाग लिया, जिसमें वल्ला पुल कांड प्रमुख है। अंत में

२६ जून, १९१५ को एक शरबतवाले की दुकान पर आप पकड़ लिये गए।

४. **रूढ़सिंह :** ये तलबंदी के रहनेवाले थे, जो फिरोजपुर जिले का एक गाँव है। ये वल्ला पुल पर किए गए आक्रमण में सम्मिलित थे।

५. **उत्तमसिंह :** ये लुधियाना जिले के हंस गाँव के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम जीतसिंह था। उत्तमसिंह का दूसरा नाम राघौसिंह भी था। इन्होंने कुछ दिन अमेरिका में रहकर कार्य किया और भारत माता की स्वतंत्रता के आह्वान पर गदर वीरों के साथ भारत चले आए। वल्ला पुल कांड में इनका भी हाथ था।

उपर्युक्त पाँचों गदर वीरों को १२ जून, १९१६ को लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

वल्ला पुल कांड के अन्य आरोपी वीरसिंह की गिरफ्तारी ६ जून, १९१५ को चिट्टी गाँव में कुएँ पर स्नान करते समय हुई। ये होशियारपुर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम सरदार बूटासिंह था। १९०६ में ही वीरसिंह कनाडा चले गए थे। वहाँ से लौटकर आप गदर योजना में सम्मिलित हो गए। बाद में इनको भी लाहौर जेल में फाँसी द्वारा मृत्युदंड दिया गया।

ये क्रांतिकारी आजादी की शमा पर परवानों की तरह जल रहे थे। इनकी पुनीत स्मृति हमारे लिए प्रेरणा और गर्व की वस्तु है।

□

★ ईश्वरसिंह ★ फूलासिंह ★ बीबासिंह ★ हजारासिंह
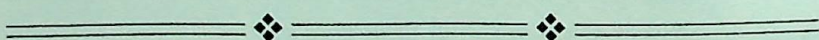
गदर पार्टी का अभियान पंजाब और उत्तर प्रदेश में बहुत तेजी के साथ चल रहा था। आजादी के दीवाने अपने प्राण हथेलियों पर लेकर गदर का प्रचार करते हुए घूम रहे थे। वे निडर होकर छावनियों में चले जाते थे और फौजियों को समझाते थे—''सारा संसार हमें इसलिए धिक्कार रहा है कि भारत में रहनेवाले केवल दो लाख गोरे हम तीस करोड़ भारतीयों को गुलामी की जंजीरों में बाँधे हुए हैं। इस समय विश्वयुद्ध में हमारा दुश्मन अंग्रेज फँसा हुआ है। यदि आप फौजी लोग भी दुश्मन के खिलाफ हो जाएँ तो भारत माता को आजाद होने से कोई रोक नहीं सकेगा।''

इस कथन का फौजियों पर असर होता था और वे विप्लवियों का साथ देने
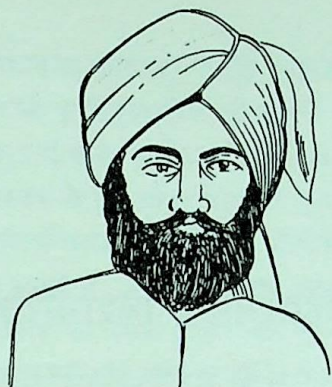
हजारासिंह

के लिए तैयार हो जाते थे। विद्रोहियों को इसी प्रकार साथ देने का वचन दिया था मेरठ स्थित बारहवीं कैवलरी के सवारों और एक सौ अट्ठाईसवें पायोनियर दल ने।

इन लोगों से कहा गया था कि २१ फरवरी, १९१५ गदर का दिन तय हुआ है और उन्हें उस दिन विद्रोह की खुली घोषणा करके अंग्रेजों को मारते-काटते हुए निकलना है। वे लोग तैयार थे। दुर्भाग्य से एक देशद्रोही ने पुलिस को समाचार देकर योजना को विफल कर दिया। सभी की गिरफ्तारियाँ होने लगीं।

मेरठ छावनी में सवार ईश्वरसिंह हवलदार, सवार हजारासिंह, क्वार्टर मास्टर हवलदार बीबासिंह एवं सिपाही फूलासिंह गिरफ्तार किए गए और उनका कोर्ट मार्शल किया गया। एक ही बैठक में फैसला दे दिया गया। देशभक्ति के अपराध का एक ही फैसला होता था उन दिनों, और वह था मृत्युदंड!

उन चारों देशभक्तों को २६ अप्रैल, १९१५ को मेरठ की नागरिक जेल में फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया। आजादी के सपने देखते हुए वे चारों वीर शहीदों की लंबी कतार में जा मिले।

□

★ उदयसिंह ★ कर्मसिंह ★ महेंद्रसिंह ★ विशनसिंह

पंजाब के ये चार क्रांतिकारी उस दिन अर्थात् १ सितंबर, १९२३ को कपूरथला राज्य के 'बोमेली' गाँव को छोड़कर बाहर निकले तो उन्हें पुलिस की सरगर्मी दिखाई दी। रात उन्होंने 'बोमेली' गाँव में ही बिताई थी और चारों ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध दृढ़ता के साथ आवाज बुलंद की थी। कर्मसिंह ने शहीदों के संबंध में दर्द-भरा एक गीत गाया था, जिसे सुनकर गाँव के लोगों की आँखों से अश्रुधाराएँ बह निकली थीं। सिख किसान वैसे ही सरल प्रकृति के तथा भावुक होते हैं और कर्मसिंह के स्वर में तो वह जादू था, जो हर किसी पर चढ़कर बोलने लगता था। दिल दहला देनेवाली बात यह थी कि भारत की आजादी के लिए काम आए शहीदों पर वह गीत लिखा गया था। गीत के भाव थे—

'वे लोग, जो मादरे-हिंद की आजादी के लिए कुरबानियाँ दे गए, हम और तुममें से ही थे। वे भी अपने बचपन में अपने पिताओं के बाजुओं के झूलों में झूले होंगे और अपनी माताओं के सीनों से चिपककर मीठी-मीठी नींद सोए होंगे। वे अपनी मातृभूमि की पीड़ा को सहन नहीं कर सके और उसकी आजादी के लिए दुश्मन से जूझ मरे। वे पवित्र फूल थे, जो माँ के मंदिर पर अर्पित हो गए। अगर हम अपने आपको उसी माता के पुत्र होने का दावा करते हैं, जिसके वे थे तो हमें भी बलिदान का पथ अपनाना होगा और अपनी रक्तांजलि देनी होगी।'

तबला एवं हारमोनियम की संगति ने तथा कर्मसिंह की दर्दीली आवाज ने गीत की धार को और तेज कर दिया था। उसने सीधे लोगों के कलेजों पर चोट की थी। गीत से निर्मित हुए वातावरण का पूरा लाभ उठाया उदयसिंह ने, जिन्होंने लोगों की भावनाओं को कुरेदते हुए ओजस्वी वाणी में उन्हें संबोधित किया—

''ब्रिटिश हुकूमत के जुल्मों को बरदाश्त करना अब हमारे बस की बात नहीं है। ये जुल्मो-सितम वे ही लोग बरदाश्त कर सकते हैं, जो अपना गौरव खो चुके हों या जिनका खून पानी हो गया हो। किसे नहीं मालूम कि ये वहशी भेड़िए

इनसान का ताजा खून पीने के आदी हो गए हैं ! किसे नहीं मालूम कि 'कामागाटामारू' जहाज के हिंदुस्तानियों को इन्होंने भूखा तथा प्यासा मारा है और उस जहाज को समुद्र में खड़ा करके इन लोगों की फौज ने उसपर गोलियाँ बरसाई हैं ! क्या हम बजबज के उस गोली कांड को भूल जाएँ, जब हमारे निहत्थे हिंदुस्तानी भाइयों पर गोलियाँ चलाकर इन्होंने उन्हें होलों की तरह भून डाला था ? क्या हम इतने मुरदादिल हो सकते हैं, जो जलियाँवाला बाग के उस हत्याकांड को भूल जाएँ, जो हमारे इतिहास का रिसता हुआ जख्म बनकर रह गया है ? क्या हम पंजाब में लगाए गए मार्शल लॉ और अपने सम्मानित नेताओं एवं बुजुर्गों को चौराहों पर नंगा कर उनपर बरसाए जानेवाले कोड़ों को दरगुजर कर दें और गुरु के पवित्र बाग में बेरहमी के साथ अपने भाइयों पर चलाए जानेवाले डंडों की मार को भूल जाएँ ? मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ, इतने जुल्म बरदाश्त करने के बावजूद हमारा खून नहीं खौले तो क्या हम उसे खून कह सकते हैं ? मैं समझता हूँ कि अगर हम अपने आपको इनसान समझते हों तो इन जुल्मों का बदला लेने का कस्द हमें कर लेना चाहिए और अपनी पराधीन भारत माता के बंधन काटने के लिए हमें अपने सिर कटाने के लिए तैयार रहना चाहिए।''

उदयसिंह के इन अग्निबाणों ने सीधे-सादे लोगों के दिलों को छुआ। उनकी आँखों में खून उतर आया और उनके बाजू फड़कने लगे। इस स्थिति का लाभ उठाकर विशनसिंह और महेंद्रसिंह ने बगावत से भरे हुए कुछ परचे लोगों में बाँटे। जो लोग उस जलसे में मौजूद थे, उन्होंने अपने नेताओं के आह्वान पर जलती हुई आग में कूद पड़ने का संकल्प किया।

और सचमुच ही उस गाँव में कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनके शरीर में लाल खून नहीं, काला खून बह रहा था। उन लोगों में से किसीने जाकर पुलिस को इस घटना की सूचना दे दी। परिणाम यह हुआ कि जब चार वीरों की टोली अगले दिन 'बोमेली' गाँव छोड़कर चली तो नजारा ही कुछ और था।

भेदिए द्वारा सूचना पाकर पुलिस सुपरिंटेंडेंट मि. स्मिथ ने फौज को तत्काल सूचना दी। घुड़सवार फौज की एक टुकड़ी फौरन 'बोमेली' गाँव की ओर रवाना कर दी गई। पुलिस सब-इंस्पेक्टर फतह खाँ भी अपने दल-बल के साथ 'बोमेली' जा पहुँचा। इन दोनों दलों ने व्यूह रचना इस प्रकार की कि कुछ दूर पर फतह खाँ के दल को इसलिए छिपा दिया गया कि क्रांतिकारी लोग यदि फौज की गोलियों से बचकर निकलें तो उनपर फतह खाँ का दल गोलियाँ बरसाए। फौज के जवान रास्ते के एक ओर छिपकर क्रांतिकारियों के वहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगे। ज्यों ही क्रांतिकारी लोग उस रास्ते से गुजरते हुए वहाँ पहुँचे तो फौज के जवानों ने उनपर

गोलियों की वर्षा प्रारंभ कर दी। तत्काल ही क्रांतिकारियों ने गोलियों का उत्तर गोलियों से देना प्रारंभ कर दिया। जहाँ वे लोग घिर गए थे, वहाँ से कुछ आगे चौंता साहब का गुरुद्वारा था। क्रांतिकारियों ने गुरुद्वारे में पहुँचकर मोरचा लेने का विचार किया। वे गुरुद्वारे की ओर बढ़ते जाते थे और बहादुरी के साथ मुकाबला करते जाते थे। अभी तक सब-इंस्पेक्टर फतह खाँ के आदमी गोलियाँ नहीं चला रहे थे। अब उन लोगों ने भी अपनी बंदूकों के मुँह खोल दिए। एक ओर तो सुसज्जित एवं प्रशिक्षित फौज तथा पुलिस के सैकड़ों आदमी और दूसरी ओर मामूली हथियारों से युक्त चार क्रांतिकारी—वे भला कब तक मुकाबला कर सकते थे! परिणाम यह हुआ कि कुछ देर युद्ध करने के पश्चात् क्रांतिकारियों को यह लगने लगा कि हममें से बचकर तो कोई जा नहीं सकता, अतः खुलकर युद्ध किया जाए। पीछे हटते हुए वे उस नाले के समीप पहुँच गए, जो गुरुद्वारे को घेरकर बह रहा था। क्रांतिकारी नाले के पानी में खड़े होकर युद्ध करने लगे। कुछ देर युद्ध करने के पश्चात् उदयसिंह और महेंद्रसिंह गोलियाँ खाकर वहीं पानी में गिर गए।

कर्मसिंह नाले को लगभग पार कर चुके थे और वे रान तक पानी में खड़े हुए दुश्मन का मुकाबला कर रहे थे। सब-इंस्पेक्टर फतह खाँ अपने आदमियों के साथ उसी किनारे पर था, जिधर कर्मसिंह पहुँचना चाहते थे। उसने ललकारकर कर्मसिंह से कहा—"आत्मसमर्पण कर दो।"

कर्मसिंह का कड़कता हुआ उत्तर था—"बहादुर लोग मुकाबला करते हैं, कायर लोग समर्पण करते हैं!"

दोनों ओर से दनादन गोलियाँ चलती रहीं और आखिर कर्मसिंह भी गोली खाकर पानी में ही गिर पड़े।

विशनसिंह को इस बात में सफलता मिल गई कि वे नाले के किनारे खड़े हुए नरकुल की झाड़ियों में छिपकर, दम साधकर बैठ गए। फतह खाँ के आदमी उनकी खोज करने लगे। एक स्थान पर नरकुल को झाड़ियों को हिलते हुए देखकर दो सैनिक उनकी खोज में वहाँ पहुँचे। उन्हें निकट आया हुआ देख विशनसिंह झाड़ी में से शेर की भाँति उछल पड़े और 'सतश्री अकाल!' का सिंहनाद करके तलवार का पूरा हाथ एक सैनिक पर दे मारा। वह वहीं पर धराशायी हो गया। वे दूसरे सैनिक की ओर भी झपटे; पर वह कुछ फासले पर हो गया था और इसी बीच उसने अपनी बंदूक साध ली थी। उसने विशनसिंह पर गोली छोड़ दी, जो उनके मर्मस्थल पर लगी। विशनसिंह भी गोली खाकर शहीद हो गए।

इस प्रकार 'बोमेली' के युद्ध में क्रांतिवीर अप्रतिम युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए। वे लोग बब्बर अकाली दल के सदस्य थे। बब्बर अकाली दल

पंजाब का क्रांतिकारी दल था और यह गाँवों में घूम-घूमकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का सृजन कर रहा था। यह दल खड़ा किया था किशनसिंह गड़गज्ज और उनके साथी धन्नासिंह ने; पर शीघ्र ही उसका विस्तार होने लगा और क्रांतिकारी विचारों के देशभक्त लोग उसमें सम्मिलित होकर दल का बल बढ़ाने लगे।

'बोमेली' के युद्ध में जो चार क्रांतिकारी शहीद हुए थे, उनमें से कर्मसिंह दौलतपुर के, उदयसिंह रामगढ़ झुगियाँ के, विशनसिंह मंगत के और महेंद्रसिंह पिंडोरी गंगासिंह गाँव के रहनेवाले थे। इन लोगों का यह कौल था कि हम लोग एक बार अपने दुश्मन को भले ही छोड़ दें, पर गद्दार को नहीं बख्श सकते। ये लोग गद्दारों को गोलियों से उड़ाने के कृत्य को 'सुधार आंदोलन' के नाम से पुकारते थे। सुधार आंदोलन के अंतर्गत उदयसिंह ने १४ फरवरी, १९२३ को हैयतपुर के दीवान को मार डाला था। वह बब्बर अकाली दल के भेद पुलिस को देने लगा था। इसी अपराध में बइबलपुर के गद्दार हजारासिंह का वध भी कर्मसिंह, उदयसिंह और उनके कुछ साथियों ने मिलकर कर डाला था। कुछ गद्दारों को इन लोगों ने नाक-कान काटकर भी छोड़ दिया था।

पुलिस ने बब्बर अकाली दल के लोगों की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर दिए थे। आखिर इस दल के चार क्रांतिकारी १ सितंबर, १९२३ को बोमेली गाँव के निकट घेर लिये गए और युद्ध में अप्रतिम वीरता का प्रदर्शन करते हुए वे लोग शहीद हो गए। क्रांतिकारी आंदोलन में यह घटना 'बोमेली का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध है।

□

★ ऊधमसिंह कसैल

मद्रास की वलारी जेल के अधिकारी उस दिन किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गए, जब उन्होंने देखा कि अंडमान से लौटा हुआ गदर पार्टी का एक भयंकर कैदी जेल से निकलकर लापता हो गया। सबको आश्चर्य इस बात का था कि कैदी की कोठरी का ताला बाहर से ज्यों-का-त्यों बंद था और कैदी भाग चुका था। उसका भाग जाना रहस्य और जेल के अधिकारियों की परेशानी का कारण बना हुआ था।

ऊधमसिंह कसैल

कैदी का नाम था—ऊधमसिंह कसैल। ऊधमसिंह कसैल का जन्म अमृतसर जिले के 'कसैल' गाँव में हुआ था। युवावस्था में व्यवसाय करने के उद्देश्य से ये अमेरिका चले गए। अमेरिका में गदर की लहर फैली और उस लहर में ऊधमसिंह भी सराबोर हो गए। सैकड़ों गदर वीरों के साथ आप सन् १९१४ में 'तोशामारू' जहाज द्वारा भारत के लिए प्रस्थित हो गए। कलकत्ता में आपको गिरफ्तार कर लिया गया और पंजाब भेज दिया गया।

प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत ऊधमसिंह पर मुकदमा चलाया गया और आजीवन कारावास का दंड देकर १० दिसंबर, १९१५ को अंडमान की जेल में भेज दिया गया।

जेल की यातनाएँ ऊधमसिंह के विद्रोही स्वभाव को बदल नहीं सकीं। उनके एक साथी अभियुक्त को जेलर ने बुरी तरह से गालियाँ दीं। उसका अपराध यही था कि वह अशक्त था और दिन-भर के लिए दिया हुआ कार्य पूरा नहीं कर सका था।

ऊधमसिंह कसैल से अपने साथी के प्रति जेलर का यह व्यवहार बरदाश्त नहीं हुआ। जेलर जिस समय अपने कार्यालय में बैठा हुआ था, ऊधमसिंह ने उसपर आक्रमण करके उसकी मरम्मत कर दी। जेलर ने कई भयंकर अपराधी कैदियों को उनके ऊपर छोड़ दिया और उनकी भी अच्छी धुनाई कर दी गई। ऊधमसिंह को इसका खेद नहीं था। उनको संतोष था कि उन्होंने अन्याय का प्रतिकार किया और जेलर को पिटाई का स्वाद चखा दिया।

भारत सरकार की परिवर्तित नीति के फलस्वरूप ऊधमसिंह को अंडमान जेल से हटाकर मद्रास की वलारी जेल में रख दिया गया। वलारी जेल में ऊधमसिंह ने अपना कमाल दिखाया। कोठरी में ताला पड़ा रह गया और वे भाग निकले।

अकथनीय कठिनाइयों का सामना करते हुए ऊधमसिंह पंजाब पहुँचे। पंजाब उस समय सुरक्षित जगह नहीं थी। पंजाब से पेशावर होते हुए सन् १९२२ में ऊधमसिंह अफगानिस्तान जा पहुँचे और वहाँ पहुँचकर छद्म नाम से 'किरती' अखबार निकालकर मार्क्सवाद के सिद्धांतों का प्रचार करने लगे।

अफगानिस्तान से ऊधमसिंह एक बार भारत आए और कुछ दिन रहकर फिर वापस अफगानिस्तान चले गए। पुलिस को उनकी बहुत आवश्यकता थी। जब ऊधमसिंह दूसरी बार अफगानिस्तान से भारत लौट रहे थे तो सरहद पर किसीने उन्हें गोली मार दी। गोली किसने मारी, यह भी रहस्य बना रहा।

आजादी का एक दीवाना देश का चिंतन करता हुआ रहस्यात्मक ढंग से शहीद हो गया।

□

★ करतारसिंह सराबा
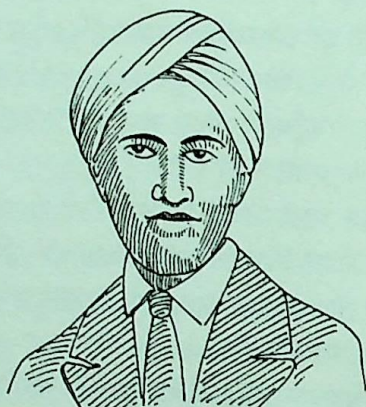
करतारसिंह सराबा

एक स्वस्थ, सुंदर सिख नौजवान सन् १९१२ में सानफ्रांसिस्को बंदरगाह पर उतरा और उसे इमीग्रेशन अधिकारी के दफ्तर में पूछताछ के लिए ले जाया गया। उस युवक का नाम करतारसिंह था। उम्र लगभग सोलह वर्ष की ही होगी। छरहरा और इकहरा गोरा बदन, पतले-पतले होंठ, उठकर नीचे की ओर झुकी हुई नुकीली नासिका, चमकती हुई कजरारी आँखें और उन्नत ललाट—यही रूप-रेखा थी उस नौजवान की, जो सानफ्रांसिस्को के इमीग्रेशन अधिकारी के सामने खड़ा होकर उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहा था।

''क्या नाम है तुम्हारा?''

''करतारसिंह सराबा।''

''कहाँ से आए हो?''

''हिंदुस्तान से।''

''किसलिए आए हो?''

''अध्ययन करने के लिए।''

''क्या हिंदुस्तान में अध्ययन करने के लिए कोई स्थान नहीं था?''

''अध्ययन करने के लिए तो वहाँ कई स्थान हैं, पर मैं कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में ही—विशेष प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए यहाँ आया हूँ।''

''यदि तुम्हें अमेरिका में प्रवेश करने की अनुमति न दी जाए तो?''

''तो मैं समझूँगा कि मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है। विद्यार्थियों के रास्ते में इस प्रकार की अड़चनें डालने से संसार की प्रगति रुक जाएगी। कौन जानता है कि मैं ही यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके संसार की भलाई के लिए कोई बड़ा कार्य कर सकूँ। हो सकता है कि मुझे यहाँ प्रवेश न मिलने पर संसार अपनी उस भलाई से वंचित हो जाए।''

इतना खरा और सटीक उत्तर सुनकर वह अधिकारी करतारसिंह का मुँह देखता रह गया। उसे प्रवेश करने की अनुमति मिल गई।

वह नौजवान, जो भारत से अमेरिका पहुँचा था, पंजाब के लुधियाना जिले के 'सराबा' गाँव के एक प्रतिष्ठित सिख परिवार का लड़का था। उसका जन्म सन् १८९६ में हुआ था। जन्म के कुछ दिन बाद ही उसके पिता सरदार मंगलसिंह का देहावसान हो गया; बाबा ने उसे बड़े लाड़-प्यार के साथ पाला। उसके एक चाचा उत्तर प्रदेश के पुलिस विभाग में सब-इंस्पेक्टर थे और दूसरे चाचा उड़ीसा प्रांत के वन विभाग में उच्च अधिकारी थे।

करतारसिंह की प्रारंभिक शिक्षा लुधियाना के खालसा स्कूल में हुई और हाई स्कूल की शिक्षा के लिए वह अपने चाचा के पास उड़ीसा चला गया। पढ़ाई से कहीं अधिक रुचि उसकी खेलों में थी। आज अपने ही विद्यालय की किसी टीम के साथ मैच खेला जा रहा है तो कल उसकी टीम किसी दूसरे विद्यालय की टीम के साथ भिड़ रही है और करतारसिंह है, जो अपनी टीम की विजय के लिए जी-जान लड़ा रहा है। शरारतें करने में भी उसे खूब मजा आता था। वह शरारती था, पर उद्दंड नहीं था। लड़के और अध्यापक, सभी उससे खुश रहते थे। छात्र मंडली का वह बना-बनाया नेता था। एक दिन धुन सवार हुई तो अपने चाचा के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—

''चाचाजी, मैं अमेरिका जा रहा हूँ।''

''क्यों?''

''उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए।''

''अभी तुम यहाँ की परीक्षा तो पास कर ही नहीं सके हो, फिर अमेरिका जाकर क्या करोगे?''

''यहाँ से अधिक उच्च शिक्षा अमेरिका में प्राप्त कर लूँगा। यहाँ की शिक्षा की कमी वहाँ पूरी हो जाएगी।''

चाचा करतारसिंह के स्वभाव से परिचित थे। उसकी आँखों में उन्होंने एक विशेष प्रकार की ललक देखी। उन्होंने सोचा कि अच्छा ही है, यह बच्चा अमेरिका

की उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने कुल और गाँव का नाम रोशन करे। उन्होंने अपने पिता और भाई से परामर्श करके करतारसिंह को अमेरिका भेजने का प्रबंध कर दिया।

करतारसिंह सानफ्रांसिस्को बंदरगाह पर उतरा और संबंधित अधिकारी को प्रभावित करके प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त कर ली।

एक स्वाधीन देश का उन्मुक्त वातावरण उसे अच्छा लगा। लोगों में उसे मस्ती, बेफिक्री और स्वच्छंदता दिखाई दी। एक गुलाम देश की घुटन का वातावरण वहाँ नहीं था। स्वाधीनता की झलक वहाँ पग-पग पर दिखाई देती थी। जो भारतीय लोग वहाँ रहते थे, वे खूब मेहनत करके पैसा कमाते थे और ठाट का जीवन व्यतीत करते थे। वहाँ मेहनत-मजदूरी करना बुरा नहीं समझा जाता था। यदि वहाँ बुरा समझा जाता था तो खाली बैठे रहना। जो भारतीय लोग अमेरिका के राज्यों में पहुँचते थे, वे स्वयं के उद्योग-धंधे चलाने के अतिरिक्त मेहनत-मजदूरी भी करते थे। संसार के अन्य लोगों की अपेक्षा वे अधिक मेहनत करते थे और अधिक पैसा कमाते थे। उनके हाथों को काम चाहिए था; वे दुनिया के किसी भी हिस्से में जाने के लिए तैयार रहते थे। युवक करतारसिंह भी एक बगीचे में फल चुनने का काम करके अपने अध्ययन के लिए पैसा जमा करने लगा।

एक बात जो करतारसिंह को वहाँ अखरी, वह यह थी कि वहाँ भारतीयों के साथ लोगों का व्यवहार अच्छा नहीं था। गुलाम देश का होने के कारण भारतीयों को वहाँ हेय दृष्टि से देखा जाता था और 'ब्लैक इंडियन' या 'डैमी कुली' कहकर संबोधित किया जाता था। उन्हें होटलों में ठहरने की अनुमति नहीं मिलती थी। वहाँ उन्हें लिखा मिलता था—'इस होटल में कुत्तों और भारतीयों को ठहरने के लिए जगह नहीं है।' इस प्रकार का अपमान सहकर भारतीय लोग तिलमिला उठते थे। उन्हें अपमानित करने की दृष्टि से अमेरिकन लोग उनसे पूछते थे—''हिंदुस्तान में तीस करोड़ आदमी रहते हैं या तीस करोड़ भेड़ें?'' अधिक अपमानित करने की दृष्टि से वहाँ के लोग भारतीय सरदारों को 'दाढ़ीवाली औरत' कहकर पुकारते थे। वे कहते थे कि यदि मर्द हो तो अंग्रेजों को भारत से भगाकर अपना पौरुष क्यों नहीं दिखाते हो? अपमान करने के साथ-ही-साथ वहाँ भारतीयों को अच्छे रहन-सहन की सुविधाएँ भी नहीं दी जाती थीं और इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि या तो उन्हें अमेरिका आने ही नहीं दिया जाए अथवा उन्हें शीघ्रातिशीघ्र वहाँ से भागने के लिए मजबूर कर दिया जाए।

करतारसिंह और उस समय वहाँ रहनेवाले सभी भारतीयों ने अनुभव किया

कि इस प्रकार अपमानित होने से तो कहीं अच्छा है कि देश की आजादी के लिए कुछ करके मरा जाए। लोगों का आक्रोश बारूद का रूप धारण कर चुका था कि इसी समय उसका विस्फोट करने के लिए चिनगारी के रूप में भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल इंग्लैंड और फ्रांस होते हुए अमेरिका जा पहुँचे। उन्हीं दिनों पंजाब के प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवानसिंह भी भारत से निष्कासित होकर अमेरिका जा पहुँचे। देश के दीवाने सानफ्रांसिस्को में एकत्र हो गए। धड़ाधड़ सभाएँ होने लगीं और क्रांति-प्रसार का कार्य चल निकला।

करतारसिंह ने उस समय तक कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त कर लिया था और एक गैर-सरकारी छात्रावास में रहने की व्यवस्था भी कर ली थी, जिसमें तीस भारतीय छात्र रहते थे। उनमें से कुछ वे थे, जो सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत की मुक्ति के लिए प्रयास करने के पक्ष में थे और कुछ छात्र वे थे, जो अध्ययन पूरा करके ब्रिटिश नौकरशाही में प्रवेश पाने की योजनाएँ बना रहे थे। एक बार दिसंबर १९१२ में लाला हरदयाल ने विद्यार्थियों की एक सभा में ओजस्वी भाषण दिया और छात्र वर्ग को भारत की आजादी के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देने का आह्वान किया। उनके भाषण का बड़ा अनुकूल प्रभाव हुआ और तीन छात्र—जितेंद्रनाथ लाहिड़ी, करतारसिंह सराबा और डी. चेनैया देश की आजादी के लिए सबकुछ अर्पित करने का संकल्प कर बैठे। उन लोगों ने तथा कुछ अन्य छात्रों ने मिलकर बर्कले में 'नालंदा छात्रावास' की स्थापना की और वहाँ रहने लगे। यह स्थान सानफ्रांसिस्को से लगभग बारह मील दूर था। लाला हरदयाल भी कभी-कभी उस छात्रावास में रहने के लिए पहुँच जाते थे और उत्साही छात्रों को क्रांति के लिए निर्देशित करते रहते थे।

प्रवासी भारतीयों ने संगठन और प्रचार की दृष्टि से एक समाचार-पत्र की आवश्यकता का अनुभव किया और परिणामस्वरूप वे सानफ्रांसिस्को से 'गदर' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालने लगे। जिस स्थान से यह साप्ताहिक पत्र निकाला गया, उसे 'युगांतर आश्रम' का नाम दिया गया और संगठनकर्ताओं ने अपनी सभा का नाम 'गदर पार्टी' रखा।

करतारसिंह अपना अधिकांश समय 'गदर' के प्रकाशन के लिए देने लगे। उन्होंने अपना 'लीथो प्रेस' स्थापित कर लिया और पत्र वहीं छपने लगा। पत्र के लिए सामग्री का संकलन करना, कविताएँ और लेख स्वयं लिखना, पत्र को छापना, वितरण करना और हिसाब रखना—ये सभी काम बड़े उत्साह के साथ करतारसिंह करने लगे। जब काम करते-करते थक जाते तो मौज में आकर कविता गाने लगते—

'सेवा देश दी जिंदड़ीए बड़ी औखी,
गल्लाँ करनीआँ ढेर सुखल्लियाँ ने।
जिन्हाँ इस सेवा बिच पैर पाया,
उन्हाँ लख मुसीबताँ झल्लियाँ ने।'

(हे मेरे जीवन! देश की सेवा बड़ी कठिन है। बातें बनाना बहुत आसान है। जो लोग देशसेवा के मार्ग पर कदम रखते हैं, उन्हें लाखों मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं।)

उर्दू में 'गदर' का पहला अंक १ नवंबर, १९१३ को निकला और शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। पंजाबी भाषा में भी 'गदर' का प्रकाशन ८ जनवरी, १९१४ से प्रारंभ हो गया। अब करतारसिंह का कार्य और अधिक बढ़ गया।

'गदर' के प्रकाशन और 'गदर पार्टी' की स्थापना ने अमेरिका में रहनेवाले भारतीयों की जीवन-पद्धति बदल डाली। उन लोगों में से हीनता की भावना दूर हुई, आत्मविश्वास जाग्रत हुआ और भारत की आजादी के लिए कुछ कर गुजरने का संकल्प घर कर गया। अंग्रेजों के जासूसों ने इस सबकी सूचना अपनी हुकूमत के पास भेज दी। ब्रिटिश शासन के उकसावे के कारण कैलीफोर्निया सरकार ने लाला हरदयाल को गिरफ्तार कर लिया और उनपर मुकदमा चलाया। वे जमानत पर छूट गए और उन्होंने 'गदर' के प्रकाशन की स्थायी व्यवस्था कर दी। गदर पार्टी के सचिव का कार्य अब संतोखसिंह करने लगे। करतारसिंह को हवाई जहाज उड़ाने का प्रशिक्षण दिलाने के लिए न्यूयार्क भेज दिया गया। करतारसिंह ने इतनी कुशलता का परिचय दिया कि छह महीने का कोर्स उन्होंने चार महीनों में ही पूरा कर लिया और हवाई जहाज उड़ाने के साथ-ही-साथ उसकी मरम्मत करना तथा पुरजे बनाना भी उन्होंने सीख लिया। जब वे उड़ान के लिए निकलते तो यह कल्पना करने में उन्हें बड़ा आनंद आता था कि एक दिन हवाई सेना का नेतृत्व करके मैं अंग्रेजों की विमान सेना के साथ युद्ध करने के लिए जाऊँगा।

इसी समय प्रवासी भारतीयों के साथ एक विशेष घटना घटित हुई, जिसे 'कामागाटामारू कांड' के नाम से जाना जाता है। यह एक जापानी जहाज था, जिसे भारत के एक क्रांतिकारी बाबा गुरुदत्तसिंह ने हांगकांग में किराए पर लिया था और उसमें कुछ भारतीय यात्रियों को भरकर वे कनाडा के वैंकोवर बंदरगाह पर उतारने वाले थे। जब जहाज वैंकोवर पहुँचा तो वैंकोवर के अधिकारियों ने उसे तट से नहीं लगने दिया। समुद्र में जहाज २२ मई, १९१४ से २३ जुलाई, १९१४ तक अर्थात् पूरे दो महीने खड़ा रहा। भोजन की सामग्री भी समाप्त हो गई और लगभग छह दिन

तक भारतीय यात्रियों को एक बूँद पानी भी नहीं मिला। जहाज को भारत लौट जाने के लिए कहा गया। रास्ते में उसे हांगकांग और मलाया के किनारों से भी नहीं लगने दिया गया। कलकत्ता के बजबज बंदरगाह पर यात्रियों को उतारा गया और उनपर अंग्रेजी सरकार द्वारा गोलियाँ चलाई गईं। कुछ यात्रियों को एक विशेष ट्रेन से जबरन पंजाब भेज दिया गया और कुछ कलकत्ता से इधर-उधर भाग खड़े हुए।

जिस समय वापसी यात्रा में 'कामागाटामारू' जहाज जापान के बंदरगाह 'कोब' पहुँचा, उस समय न्यूयार्क से एक हवाई जहाज लेकर करतारसिंह सराबा एक क्रांतिकारी साथी गुप्ता तथा एक अमेरिकन अराजकतावादी 'जैक' के साथ उड़ान भरकर कोब पहुँचे थे और वे बाबा गुरुदत्तसिंह से मिलकर कोई योजना उन्हें समझा आए थे।

भारत में गदर फैलाने की दृष्टि से करतारसिंह भी शीघ्रातिशीघ्र भारत पहुँच जाना चाहते थे; क्योंकि उस समय तक यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया था और जर्मनी ने इंग्लैंड पर आक्रमण कर दिया था।

गदर पार्टी के क्रांतिकारी इस अवसर से लाभ उठाने के लिए भारत पहुँचकर वहाँ सेनाओं में विद्रोह भड़काना चाहते थे।

करतारसिंह ने जोर-शोर से प्रचार करके लोगों को भारत पहुँचने की प्रेरणा दी और स्वयं भी एक 'निपनमारू' नाम के जापानी जहाज से कोलंबो एवं मद्रास होते हुए तथा पुलिस की आँखों से बचते हुए पंजाब जा पहुँचे। गदर पार्टी के विश्वस्त साथियों में से विष्णु गणेश पिंगले भी पंजाब पहुँच गए और विद्रोह का काम जोरों से चल निकला।

क्रांतिकारियों के पास न तो हथियार थे और न पैसे। हथियार खरीदने के लिए धन की आवश्यकता थी। सोचा गया कि गरीब जनता के रक्तशोषक सूदखोर लोगों एवं अंग्रेजों के मित्र धनी लोगों के घर डाके डालकर धन प्राप्त किया जाए और उससे हथियार खरीदे जाएँ। करतारसिंह के नेतृत्व में 'सहनेवाला' गाँव में डाका डाला गया। करतारसिंह इस बात के लिए नियुक्त हुए कि वे गोलियाँ चलाते रहें और गाँववालों को उस घर तक न पहुँचने दें, जहाँ डाका डाला जा रहा था। करतारसिंह फायर करते हुए लोगों को आगाह करते रहे। अन्य साथियों ने घर में से रुपया-पैसा और आभूषण लूटकर एक स्थान पर रख लिये। इसी बीच एक साथी को घर में एक लड़की दिखाई दी, जो अत्यंत रूपवती थी। उस व्यक्ति ने उस लड़की का हाथ पकड़ लिया। लड़की जोर से चिल्ला पड़ी। चीख की आवाज सुनकर करतारसिंह वहाँ पहुँच गए और उन्होंने अपनी पिस्तौल साथी के सीने पर रखकर उसे निरस्त्र कर दिया तथा धिक्कारते हुए बोले—

"तूने ऐसा नीच कृत्य किया है, जो क्रांतिकारियों के आदर्श के अनुकूल नहीं है। इसकी सजा केवल मौत है। मैं तुझे गोली से उड़ा देता, पर परिस्थितियों से विवश होकर तुझे छोड़ रहा हूँ। यदि तू इस लड़की को बहन मानकर, इसके पैरों पर सिर रखकर माफी माँगे और यदि यह तुझे माफ कर दे तो तेरी जिंदगी बच सकती है, अन्यथा मेरी गोली तेरी छाती के पार हो जाएगी।"

इसी बीच लड़की की माँ भी वहाँ पहुँच गई थी। उस व्यक्ति ने माँ तथा लड़की के पैर छूकर दोनों से क्षमा माँगी, तब कहीं करतारसिंह ने उसे छोड़ा। यह देखकर लड़की की माँ से रहा नहीं गया। वह करतारसिंह को संबोधित करती हुई बोली—

"बेटे! एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है। एक ओर तो तुम आदर्श और सच्चरित्रता की इतनी ऊँची-ऊँची बातें कर रहे हो, दूसरी तरफ डाके डालने जैसा नीच काम कर रहे हो?"

करतारसिंह ने उसे समझाते हुए कहा—

"माँ! सच बात तो यह है कि हम लोग पेशेवर लुटेरे या डाकू नहीं हैं। हम लोग क्रांतिकारी हैं, जो अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए हथियार खरीदने हेतु डाके डालने के लिए विवश हुए हैं।"

महिला का भाव उन लोगों के प्रति बदलता हुआ दिखाई दिया। उसने करतारसिंह से कहा—

"यह धन जो तुम लोगों ने लूटकर रखा है, मैंने अपनी लड़की की शादी के लिए बड़ी मेहनत करके जमा कर रखा था। क्या इसमें से तुम कुछ छोड़कर नहीं जा सकते?"

"माँ! यह सारा धन आपके सामने रखा है। इसमें से आप जितना चाहें, रख लीजिए। आप अपने हाथ से आशीर्वाद के साथ जो हमें दे देंगी, वही हम ले जाएँगे।"

उस धन में से महिला ने थोड़ा-सा उठा लिया और शेष आग्रह के साथ करतारसिंह को लौटा दिया तथा आशीर्वाद दिया कि जिस काम का तुमने बीड़ा उठाया है, उसमें तुम्हें सफलता मिले।

क्रांतिकारियों का वह दल लौट गया। उस दिन से डाके डालने के स्थान पर हथियार प्राप्त करने के दूसरे उपायों को काम में लाया जाने लगा। कुछ साथियों को हथियार लाने के लिए अफगानिस्तान भेजा गया, कुछ को बंगाल भेजा गया; कुछ हथियार उन्होंने पुलिस थाने पर हमला करके लूट लिये और कुछ हथियार उन्होंने पुलों के रक्षकों से छीन लिये। हथियार तो जमा होने लगे और जमा होते रहने के

आसार भी दिखाई देने लगे, पर समस्या यह थी कि गदर कैसे फैलाया जाए; क्योंकि उनमें से कोई भी अनुभवी क्रांतिकारी नहीं था। उन लोगों ने बंगाल के महान् क्रांतिकारी रासबिहारी बोस की बहुत प्रशंसा सुन रखी थी। बोस को पंजाब लाने के लिए क्रांतिकारी साथी विष्णु गणेश पिंगले को बंगाल भेजा गया।

विष्णु गणेश पिंगले को बंगाल पहुँचकर रासबिहारी बोस से मिलने में सफलता प्राप्त हो गई। रासबिहारी बोस पंजाब की पूरी स्थिति जाने बिना अपरिचित क्षेत्र में एकदम नहीं पहुँच जाना चाहते थे। उन्होंने अपने लेफ्टिनेंट शचींद्रनाथ सान्याल को पंजाब भेज दिया। पंजाब के क्रांतिकारियों को निराशा तो अवश्य हुई, पर बात उनकी समझ में आ गई। स्थिति की जाँच करने के पश्चात् शचींद्रनाथ सान्याल ने श्री बोस को अवगत कराया। उन्होंने करतारसिंह की बहुत प्रशंसा की। कुछ दिन पश्चात् रासबिहारी बोस भी पंजाब पहुँच गए।

रासबिहारी बोस के पंजाब पहुँच जाने पर काम अच्छा चल निकला। अलग-अलग कार्यों के समूह बना दिए गए। क्रांतिकारी लोग पूरे पंजाब में फैली हुई अंग्रेज छावनियों में पहुँचकर फौजियों को गदर के लिए तैयार करने लगे। हर छावनी में फौजी लोग उनके रिश्तेदार निकल आते थे, अतः उनसे संपर्क स्थापित करने में कठिनाई नहीं होती थी। कुछ लोग गाँव-गाँव घूमकर ग्रामीण जनता को विद्रोह के लिए तैयार कर रहे थे। करतारसिंह सबसे अधिक परिश्रम कर रहे थे। वे धड़ल्ले से छावनियों में भी पहुँच जाते थे और प्रतिदिन साइकिल पर चालीस-पचास मील का चक्कर लगा लेने के बाद भी थकान की शिकायत नहीं करते थे।

विप्लव की तिथि २१ फरवरी, १९१५ तय कर ली गई। विष्णु गणेश पिंगले तथा कुछ अन्य क्रांतिकारी उत्तर प्रदेश के उन सभी स्थानों का चक्कर लगा आए, जहाँ-जहाँ फौजी छावनियाँ थीं। वे सेना के विद्रोह के लिए जोड़-तोड़ कर आए। विप्लव की तिथि निकट आती जा रही थी। क्रांतिकारियों के दिलों की धड़कनें बढ़ गई थीं। स्वाधीन भारत के झंडे सरकारी भवनों पर फहराने के लिए तैयार करा लिये गए थे। संचार व्यवस्था भंग करने के लिए पुलों को तोड़ने, रेल की पटरियों को उखाड़ने और तारों को काटने की पूरी तैयारी कर ली गई थी। उन्हें क्या पता था कि जिस लहलहाती बेल से वे फल पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसकी जड़ों में एक चूहा बैठा हुआ उसे कुतर रहा था। एक फौजी जमादार बूटासिंह को विद्रोह की कुछ गंध मिल गई थी; क्योंकि कुछ संदेहास्पद व्यक्ति उसकी छावनी में आते-जाते थे। उसने अपना संदेह अपने अफसरों पर प्रकट कर दिया था। अंग्रेज अधिकारियों ने अपने एक गुप्तचर कृपालसिंह का प्रवेश क्रांतिकारियों में करा दिया था। वह क्रांतिकारियों की सभी गुप्त सूचनाएँ पुलिस के दफ्तर में भिजवा देता था। क्रांतिकारियों

को उसके आचरण पर संदेह हुआ और उन्होंने भी अपना एक जासूस कृपालसिंह के पीछे लगा दिया। कृपालसिंह छावनी जाने के बहाने निकला। एक-दो सड़कों के चक्कर लगाकर वह फुरती से लाहौर के पुलिस दफ्तर में घुस गया और २१ फरवरी को गदर होने की सूचना देकर फिर छावनी की तरफ चला गया। जासूस ने उसके इस आचरण की सूचना फौरन क्रांतिकारियों को दे दी।

कृपालसिंह लौटकर क्रांतिकारियों के अड्डे पर पहुँचा। उसके पहले ही पुलिस के साथ उसकी साँठ-गाँठ की सूचना जासूस लड़का दे आया था। उस अड्डे पर उस समय तीन क्रांतिकारी थे—हरनामसिंह तुंडिलात, लाला रामसरनदास और अमरसिंह। कृपालसिंह वहाँ पहुँचकर एक कुरसी पर बैठ गया और दीवार पर टँगे हुए कैलेंडर की तरफ देखने लगा। शायद वह गदर की तारीख आदि का हिसाब लगा रहा होगा। उन तीनों क्रांतिकारियों में इशारे होने लगे कि कृपालसिंह को खत्म कर दिया जाए। वहाँ बम और रिवॉल्वर भी थे; पर बाजार के बीच धमाका होने से उनके अड्डे का पूरा भेद खुल जाने की आशंका से वह विचार स्थगित करना पड़ा। फिर इशारों-इशारों में बात हुई कि गला दबाकर उसे समाप्त कर दिया जाए। हरनामसिंह एक हाथ के आदमी थे, इस कारण वे अयोग्य थे। लाला रामसरनदास दुबले-पतले और कमजोर व्यक्ति होने के कारण उस काम के लिए अयोग्य निकले। अमरसिंह चौबीस वर्ष का जवान था; पर कृपालसिंह जैसे तगड़े सिख पर हाथ डालने का साहस उसका भी न हुआ (कृपालसिंह उस समय तो बच गया, पर सन् १९३१ में एक दिन उस गद्दार को सोते हुए में कुछ लोगों ने ठिकाने लगा दिया और यह पता ही नहीं चल सका कि उसकी हत्या किन लोगों ने की)।

व्यापक विद्रोह की पूरी तैयारी हो चुकी थी और क्रांतिकारी लोग उसे निरस्त करना नहीं चाहते थे। शीघ्रता से २१ फरवरी के स्थान पर विप्लव की तारीख १९ फरवरी कर दी गई। इस परिवर्तित तारीख की सूचना दूर के स्थानों को नहीं भेजी जा सकी। इस बदली हुई तारीख की सूचना भी देशद्रोही कृपालसिंह ने पुलिस के पास भेज दी। यद्यपि उसपर निगरानी रखी जा रही थी और उसे बाहर नहीं जाने दिया जा रहा था, पर अवसर पाकर वह कुछ समय के लिए दरवाजे पर पहुँचा। उधर एक सफेदपोश जासूस जा रहा था। कृपालसिंह ने उससे धीरे से कह दिया— "जल्दी जाकर कह दो, गदर अब १९ फरवरी को होगा।" उस दिन १८ फरवरी थी और सुबह का समय था। कृपालसिंह पेशाब करने के बहाने ऊपर गया और गश्त लगाती हुई पुलिस को इशारे कर आया। थोड़ी ही देर में वह मकान पुलिस द्वारा घेर लिया गया और जो लोग वहाँ थे, वे गिरफ्तार कर लिये गए। सौभाग्य से उस समय वहाँ रासबिहारी बोस, करतारसिंह और अन्य प्रमुख क्रांतिकारी नहीं थे।

पुलिस ने सभी छावनियों में विद्रोह होने की सूचना दे दी। हथियार घरों से भारतीय सिपाहियों को हटाकर अंग्रेज सैनिकों को तैनात कर दिया गया। जिन भारतीय पल्टनों में विद्रोह होने की आशंका थी, उनके हथियार रखवा लिये गए। बाजारों में गोरे सैनिकों की गश्त बढ़ा दी गई। जगह-जगह छापे मारे गए तथा गोला-बारूद और हथियार बरामद किए गए। धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। गदर पार्टी के बहुत से लोग गिरफ्तार कर लिये गए। रासबिहारी बोस गिरफ्तार नहीं हो सके; क्योंकि वे ठहरने के स्थान बदलते रहते थे और केवल एक-दो विश्वस्त व्यक्तियों के अतिरिक्त उनके ठहरने के स्थान सबको मालूम नहीं होते थे।

करतारसिंह को इस सबका पता नहीं चल पाया। उसे फिरोजपुर छावनी पर हमला करने का काम दिया गया था। तैयारी के लिए वह पहले ही निकल चुका था। १९ फरवरी की सुबह वह सत्तर-अस्सी आदमियों को साथ लिये हुए फिरोजपुर छावनी की ओर गया और उन फौजियों से मिला, जो विद्रोह में साथ देने वाले थे। वहाँ का दृश्य बिलकुल बदला हुआ था। उन लोगों से हथियार रखवा लिये गए थे। उन लोगों ने करतारसिंह के सामने स्थिति स्पष्ट कर दी। यह तो अच्छा हुआ कि उनमें कोई गद्दार नहीं था, अन्यथा करतारसिंह वहीं गिरफ्तार हो जाता।

हताश और निराश करतारसिंह संध्या समय तक लाहौर लौट गया। उसे रासबिहारी बोस की चिंता थी। रात को वह उस मकान में पहुँच गया, जिसमें रासबिहारी बोस थे। वे एक चारपाई पर लेटे हुए थे। पास ही एक दूसरी चारपाई पर करतारसिंह मुरदा जैसे बनकर लेट गया। दोनों ही एक-दूसरे से बात नहीं कर रहे थे। उनके सपने टूट चुके थे। करतारसिंह को यह चिंता सता रही थी कि रासबिहारी बोस को सुरक्षित लाहौर से बाहर कैसे भेजा जाए; क्योंकि उसीके आमंत्रण पर वे लाहौर पहुँचे थे। मौन भंग रासबिहारी ने किया। वे बोले—

''आंदोलन तो विफल हो ही गया है, अब क्रांतिकारियों को स्वयं को गिरफ्तारी से बचाना चाहिए और उन्हें भूमिगत हो जाना चाहिए।''

उस समय उस मकान में रासबिहारी बोस व करतारसिंह के अतिरिक्त हरनामसिंह तुंडिलात और लाला रामसरनदास भी थे। निश्चित हुआ कि रासबिहारी बोस को जैसे भी हो, बनारस चले जाना चाहिए। रामसरन को कपूरथला जाने का आदेश हुआ और करतारसिंह तथा हरनामसिंह को एक दिन और वहाँ कुछ अन्य क्रांतिकारियों की प्रतीक्षा में रुकने की बात तय हुई।

निश्चय के अनुसार रासबिहारी बोस ने पंजाबी मुसलमान के लिबास में बनारस की गाड़ी पकड़ी और रामसरनदास कपूरथला चले गए। करतारसिंह और हरनामसिंह वहीं रुके रहे। अगले दिन वहाँ जगतसिंह व सूरसिंह पहुँच गए और वे

तीनों अफगानिस्तान की ओर जाने की तैयारियाँ करने लगे। अगले दिन गाड़ी पकड़कर वे लायलपुर पहुँचे और वहाँ से पेशावर के लिए प्रस्थान किया। बहुत ही होशियारी और सूझबूझ के साथ वे सरहद पार करके अफगानिस्तान के इलाके में पहुँच गए। उन्होंने निश्चिंतता की साँस ली और एक पहाड़ी नदी के किनारे बैठकर थोड़ा-सा विश्राम किया। करतारसिंह लेट गए और तरंग में आकर अपनी ही लिखी हुई एक कविता गाने लगे। गाते-गाते उस कविता में एक पंक्ति आई—

'बनी सिर शेराँ दे, की जाणां भज्जके।'

(शेरों के सिर पर आ बनी है, अब भागकर क्या जाएँगे।)

इस पंक्ति को गाने के साथ ही करतारसिंह उठ बैठे और साथी को संबोधित करते हुए बोले—

"क्यों जी जगतसिंह, क्या यह कविता दूसरों के लिए ही लिखी गई थी? क्या इस कविता से हमारा कोई संबंध नहीं है? अपने साथियों को विपत्ति में फँसाकर हमारा चुपचाप खिसक जाना कहाँ तक उचित है?"

जगतसिंह भी उसी धातु के बने हुए थे। झट बोल पड़े—

"अभी क्या बिगड़ा है, हम लोग वापस चलकर एक बार फिर कोशिश करके देख सकते हैं। यदि हमने बम बनाना सीख लिया तो कुछ तो कर दिखाएँगे।"

अब बारी हरनामसिंह की थी। उनका कथन था—

"और कुछ नहीं तो फाँसी का फंदा तो कमा ही लेंगे। संग-साथ झूलने का आनंद मिलेगा।"

बात जम गई और तीनों भारत की सीमा की तरफ लौट लिये। सरगोधा के पास चक नं. ५ में पहुँचे और फौजियों में विद्रोह की चर्चा करने लगे। सफलता तो क्या मिलती, वहीं पकड़ लिये गए। गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचाया गया। गाड़ी स्टेशन पर रुकी तो करतारसिंह बड़ी मस्ती से पुलिस के अधिकारी से बोल उठे—

"बड़ी जोर की भूख लगी है, मि. टॉमकिन! कुछ खाने को तो ला दो।"

क्या मस्ती थी उस अल्हड़ नौजवान में! जो कोई उसे देखता, देखता ही रह जाता था। वह लोगों से कहा करते थे—

"मेरे मरने के बाद लोग मुझे बागी करतारसिंह के नाम से याद करें।"

लाहौर की जेल में कड़े पहरे में उन्हें रख दिया गया। कुछ साथी वहाँ पहले से ही मौजूद थे। करतारसिंह को आया हुआ देखकर उन्हें दुःख हुआ। वे चाहते थे कि करतारसिंह फाँसी से बच जाएँ। करतारसिंह तो खुद ही नहीं बचना चाहते थे। जेल में रहकर भी मस्ती से दिन कटने लगे। कोई गीत गाता तो कोई गजल।

करतारसिंह अपनी ही कविताएँ सुनाता था। कोई-कोई अंग्रेज अफसरों की नकल करके दिखाते थे।

एक दिन सबको सूझी कि जेल से बाहर निकला जाए। साँठ-गाँठ करके लोहा काटने का सामान मँगा लिया गया। तय हुआ कि दो-चार बिलकुल कमजोर साथियों को वहाँ छोड़कर शेष पचास-साठ साथी जेल से निकल भागें और सीधे लाहौर छावनी पहुँचें। लाहौर छावनी में शस्त्रागार का अधिकारी इनका अपना आदमी था और उसने हथियार देने का वादा कर लिया था। वहाँ से हथियार प्राप्त करके उनका विचार अन्य जेलें तोड़कर, कैदियों को निकालकर अपने दल को बढ़ाने का था। अभियान प्रारंभ करने में थोड़ा ही समय रह गया था कि उस जेल के एक साधारण कैदी को सुराग लग गया और उसने वह बात जेल के किसी अधिकारी से कह दी। सभी की कोठरियों की तलाशी ली गई। करतारसिंह की कोठरी में सुराही रखने के स्थान पर एक गड्ढे में लोहा काटने का सब सामान मिल गया। उनकी दूसरी योजना भी विफल हो गई।

'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' के नाम से उन लोगों पर अभियोग चला। करतारसिंह और उनके साथियों को अपने बचाव में कोई रुचि दिखाई नहीं दी। उन्होंने कोई वकील करने से भी इनकार कर दिया। शासन ने न्याय का नाटक पूरा किया; यहाँ तक कि उसने स्वयं अभियुक्तों की ओर से कुछ नौसिखिए वकील खड़े कर दिए। दो अंग्रेज जज थे और एक भारतीय। एक जज का करतारसिंह के बारे में कथन था—

''इन इकसठ अभियुक्तों में यह सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और सबसे ज्यादा नामी-गरामी है। यह षड्यंत्र—चाहे उसकी संरचना अमेरिका में हुई हो, चाहे जहाज पर और चाहे भारत में—उसका कोई भी ऐसा कोना नहीं है, जहाँ इसने अपनी कारगुजारी नहीं दिखाई हो।''

एक दिन बयान देने के क्रम में करतारसिंह ने सबकुछ कबूल कर लिया और अपनी कारगुजारियों की कहानी खुद ही कह सुनाई। जज महोदय कलम रखकर सुनते रहे। उन्होंने कुछ लिखा नहीं। जब बयान पूरा हो गया तो बोले—

''आज तुम्हारा बयान लिखा नहीं गया है। कल सोच-समझकर बयान देना।''

यह करतारसिंह को सँभल जाने और अपना बयान बदल देने का काफी स्पष्ट संकेत था; पर करतारसिंह क्यों बदलने चले! वही-का-वही बयान फिर दे दिया। जज महोदय ने टोकते हुए कहा—

''तुम्हारे इस बयान से तुम्हें फाँसी का दंड भी मिल सकता है।''

करतारसिंह ने बड़ी मस्तानी अदा के साथ उत्तर दिया—

"फाँसी ही लगाओगे न! हम क्या उससे डरते हैं!" जज महोदय उत्तर सुनकर चिढ़ गए। वे नहीं चाहते थे कि उन लोगों को आसानी से फाँसी दे दी जाए। वे तो आरोप और बचाव की पूरी लंबी प्रक्रिया अपनाने के पक्ष में थे, जिससे भारत-भर में आतंक फैले और लोग आगे षड्यंत्र करने का साहस न दिखाएँ। निर्णय में करतारसिंह के विषय में लिखते हुए उन्होंने न्याय की गरिमा को ताक पर रखकर फूहड़ भाषा का इस्तेमाल करते हुए लिखा—

'निस्संदेह वह एक नौजवान है; पर वह इन षड्यंत्रकारियों में सबसे ज्यादा कठोर तथा बदमाश है और वह अपनी करतूतों के घमंड से चूर है, जिसके प्रति कोई भी दया नहीं दिखाई जानी चाहिए।'

भला दया चाहता कौन था! करतारसिंह तो चाहता था कि फाँसी जितनी जल्दी हो जाए, उतनी ही जल्दी उन्हें दूसरा जन्म पाकर आजादी के लिए फिर युद्ध करने का अवसर मिल जाए।

न्याय का नाटक पूरा हुआ। चौबीस अभियुक्तों को फाँसी का दंड और छब्बीस को आजन्म कारावास का दंड सुनाया गया। शेष को अलग-अलग अवधि के कारावास का दंड दिया गया। १४ नवंबर सन् १९१५ को गवर्नर जनरल ने सत्रह अभियुक्तों के फाँसी के दंड को आजीवन कारावास के दंड में परिवर्तित कर दिया जिन सात को फाँसी का दंड दिया जाने वाला था, वे थे—

१. बख्शीशसिंह,
२. विष्णु गणेश पिंगले,
३. सुरेंद्रसिंह (आत्मज ईश्वरसिंह),
४. सुरेंद्रसिंह (आत्मज भूरासिंह),
५. हरनामसिंह,
६. जगतसिंह,
७. करतारसिंह सराबा।

जब लोगों ने करतारसिंह को परामर्श दिया कि वह दया याचिका प्रस्तुत कर दें, तो वह बिगड़कर बोले—

"दया याचिका प्रस्तुत क्यों कर दूँ! मुझे तो इसी बात का खेद है कि मेरे पास एक ही जीवन है, जो मैं दे रहा हूँ। यदि मेरे पास और अधिक जीवन होते तो मातृभूमि की वेदी पर वे सब गौरव के साथ अर्पित कर देता।"

फाँसी के एक दिन पूर्व उनके बाबा उनसे मिलने जेल में पहुँच गए। बड़े प्यार के साथ समझाते हुए बोले—

"बेटे, तुम्हें फाँसी हो जाएगी तो मेरी आँखों की तो जैसे रोशनी ही चली जाएगी। दया याचिका पेश कर दो तो फाँसी से बच सकते हो। तुम जिंदा हो, इसी सहारे मैं अपनी जिंदगी के दिन गुजार दूँगा।"

करतारसिंह ने बड़े भोलेपन से बाबा से पूछा—

"बाबा! अपने अमुक रिश्तेदार कहाँ हैं?"

"वे तो प्लेग से मर गए।" बाबा का उत्तर था।

"और अपने अमुक रिश्तेदार का क्या हुआ?" करतारसिंह का अगला प्रश्न था।

"उनकी मृत्यु हैजे से हो गई।" बाबा ने उत्तर दिया।

करतारसिंह की बन पड़ी। बोले—

"बाबा! प्लेग से, हैजे से या बीमारी से बिस्तर पर खाँसते-खाँसते मरना क्या कोई अच्छी मौत है? क्या आप चाहते हैं कि मैं भी वैसी ही मौत मरूँ? आप मुझे उस मौत से वंचित क्यों करना चाहते हैं, जो लोगों को सदियों तक याद रहे और बलिदान की प्रेरणा देती रहे?"

बाबा अपने पोते की बात समझ गए। दो आँसू टपकाकर, आशीर्वाद देकर चले गए।

जाने कौन-कौन से सपने देखते हुए करतारसिंह की रात बीत गई। सुबह करतारसिंह अपनी कोठरी में कुछ गुनगुनाते हुए पाए गए। पास ही की कोठरी में झाँसीवाले पं. परमानंद थे। आवाज लगाकर पूछ बैठे—

"क्या कर रहे हो, करतारसिंह?"

"मैं एक कविता लिख रहा हूँ, पंडितजी।" करतारसिंह का उत्तर था।

पंडितजी ने उसकी मस्ती की बलाएँ लीं। कैसा मस्त नौजवान है! कुछ मिनटों बाद ही फाँसी लगने वाली है और वह है, जो कविता लिख रहा है। क्या संसार में ऐसे कवि हैं, जो इतनी मस्ती से कविता लिखें?

लाहौर की सेंट्रल जेल में १६ नवंबर, १९१५ को करतारसिंह और उनके साथियों को फाँसी के फंदों पर लटका दिया गया। करतारसिंह ने 'वंदेमातरम्' का उद्घोष किया और फाँसी का फंदा खुद ही अपने गले में डाल लिया। उस समय उनकी उम्र केवल उन्नीस वर्ष की थी।

भारत माता का एक महान् बेटा उसकी गोद सूनी करके चला गया। हाँ, उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। उसकी बलिदान गाथा ने न जाने कितने नौजवानों को शहीदों की पंक्तियों में खड़ा कर दिया। सरदार भगतसिंह उनमें से एक थे।

करतारसिंह सराबा को याद करते हुए भगतसिंह ने कहा—

'कोई भी आदमी उन्नीस वर्ष की अवस्था में उनके वीरतापूर्ण कार्यों के बारे में सोचकर आश्चर्यचकित रह जाता है। कोई मुश्किल से ही इतना साहस, इतना आत्मविश्वास तथा इतनी अधिक समर्पण-भावना पाता है। भारत ने बहुत ही कम ऐसे लोगों को उत्पन्न किया है, जो सही शब्दों में इतने विद्रोही हों। करतारसिंह इन इने-गिने लोगों में सबसे आगे हैं। क्रांति उनके खून में थी। उनका लक्ष्य इच्छा में और आशा क्रांति में निहित थी। वह इसके लिए जीवित रहे और इसीके लिए मरे।'

□

★ कर्मसिंह ★ धर्मसिंह

कर्म और धर्म की जोड़ी भी खूब जोड़ी थी। एक था कर्मसिंह, दूसरा था धर्मसिंह। दोनों ही क्रांतिकारी थे और हौसलेवाले क्रांतिकारी। वे दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। उन दोनों में खूब पटती थी, वे हमेशा साथ-साथ ही रहते थे। बब्बर अकाली आंदोलन ने उन्हें आकर्षित किया था। वे अपने-अपने घर-द्वार छोड़कर इस आंदोलन में कूद पड़े थे और सरकार के लिए सिरदर्द बन गए थे।

एक दिन उन दोनों में बातें हुईं—

"सुनो भाई धर्मसिंह!"

"कहो भाई कर्मसिंह!"

"गद्दारों और अत्याचारियों के लिए धर्म का क्या विधान है?"

"उन्हें दुनिया से उठाने का कर्म सचमुच महान् है।"

"तो सूबेदार गैंडासिंह के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है?"

"वह अत्याचारी अभी तक जिंदा है, यही तो मलाल है।"

"तो उसे ठिकाने लगाएँ?"

"नेकी का काम, किसीसे पूछने क्यों जाएँ!"

और इस प्रकार बातों-ही-बातों में कार्यक्रम निश्चित हो गया। सूबेदार गैंडासिंह इस दुनिया से उठ गया। क्रांतिकारियों के रास्ते का एक काँटा हट गया। भला पुलिस निष्क्रिय कैसे रह सकती थी। धर-पकड़ हुई। कुछ क्रांतिकारी आमने-सामने के युद्ध में वीरगति पा गए और कुछ गिरफ्तार हुए तथा उनपर मुकदमे चले। बब्बर अकाली दल के इक्यानबे क्रांतिकारियों पर मुकदमा चला। इनमें से तीन क्रांतिकारी ऐसे थे, जो फैसले के लिए बहुत अधीर हो रहे थे। जब उन्होंने देखा कि महीने गुजरते चले जा रहे हैं और न्यायालय निर्णय देने का नाम नहीं

ले रहा तो वे न्याय-प्राप्ति में इस विलंब की शिकायत करने के लिए दूसरी दुनिया की अदालत में पहुँच गए।

लगभग एक वर्ष पश्चात् न्यायालय ने फैसला सुनाया। इक्यानबे अभियुक्तों में से तीन तो जा ही चुके थे। शेष अट्ठासी अभियुक्तों में से ग्यारह को आजीवन कालापानी का दंड, पाँच को फाँसी का दंड और शेष को विभिन्न अवधि के कारावास का दंड सुनाया गया।

जिन पाँच लोगों को फाँसी का दंड सुनाया गया था, उनमें कर्मसिंह तो थे, धर्मसिंह नहीं थे। दोनों में फिर बातचीत हुई—

"सुनो भाई कर्मसिंह!"

"कहो भाई धर्मसिंह!"

"यार, यह सरकार तुम्हें फाँसी पर चढ़ाकर मुझे बचा रही है।"

"हाँ, सचमुच, हमारी जोड़ी बिगाड़कर यह अंधेर मचा रही है।"

"हाँ, मुझको भी फाँसी मिले, इसका क्या उपाय है?"

"फैसले के खिलाफ अपील करो, अपनी तो यही राय है।"

"तो अपील में तो सजा और कम होने का अँदेशा है।"

"यह सरकार उलटी चलती है, यह गए हुए लोगों का संदेशा है।"

"तो क्या अपील करने से मुझे भी फाँसी की सजा मिल सकती है?"

"मुझे तो भरोसा है कि इस तरह तुम्हारे मन की कली खिल सकती है।"

"तब तो यार, सचमुच मजा आएगा।"

"हाँ, शेरों का यह जोड़ा फाँसी के तख्ते पर साथ-साथ जाएगा।"

—और सेशन कोर्ट के फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील की गई। १ जुलाई, १९२६ को हाई कोर्ट ने वह अपील ठुकरा दी; पर उसने आजीवन कालापानी की सजा पाए हुए एक अभियुक्त की सजा बढ़ाकर फाँसी की सजा कर दी। जिसकी सजा बढ़ाई गई थी उसका नाम था धर्मसिंह। इस प्रकार धर्मसिंह फाँसी पानेवालों की पंक्ति में कर्मसिंह से जा मिला। जब उन लोगों ने यह इच्छा जाहिर की कि हम सभी का दाह-संस्कार एक ही चिता पर किया जाए, तो कर्मसिंह और धर्मसिंह ने इच्छा व्यक्त की कि चिता पर हम दोनों को एक-दूसरे के पास लिटाया जाए।

शासन ने अब पाँच के स्थान पर छह क्रांतिकारियों को २७ फरवरी, १९२६ को लाहौर की सेंट्रल जेल में फाँसी पर झुला दिया। इस प्रकार कर्मसिंह और धर्मसिंह की जोड़ी बनी रही।

□

★ काली मैत्रा ★ त्रैलोक्य चक्रवर्ती ★ नगेंद्र सेन ★ प्रफुल्ल विश्वास ★ सतीश पकरासी

कलकत्ता पुलिस के बड़े अधिकारी चार्ल्स टेगार्ट और डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस वसंत चटर्जी को एक साथ समाप्त करने की योजना कलकत्ता के क्रांतिकारियों ने बना डाली। जिस प्रकार पुलिस क्रांतिकारियों के दल में अपने मुखबिर रखती थी, उसी प्रकार क्रांतिकारी लोग भी पुलिसवालों में अपने जासूस रखते थे।

क्रांतिकारियों के जासूस ने अपने साथी क्रांतिकारियों को २५ नवंबर, १९१४ को सूचना दी कि संध्या समय चार्ल्स टेगार्ट कलकत्ता के मुसलमानपाड़ा स्थित वसंत चटर्जी के मकान पर आमंत्रित होकर पहुँच रहा है। क्रांतिकारियों ने सोचा कि एक साथ दो पुलिस अफसरों को समाप्त करने का यह अच्छा अवसर है। तैयारी के साथ वहाँ पहुँचने का उन्होंने निश्चय कर डाला। योजना त्रैलोक्य चक्रवर्ती ने तैयार की। तय हुआ कि क्रांतिकारी दल दो समूहों में विभक्त होकर कार्य करेगा। नगेंद्र सेन, काली मैत्रा, सतीश पकरासी और प्रफुल्ल विश्वास एक समूह में थे। इनमें से नगेंद्र सेन का काम यह था कि वह वसंत चटर्जी को आवाज देकर बुलाएगा और वसंत चटर्जी के बाहर निकलने पर प्रफुल्ल विश्वास बम का प्रहार करेगा। इन सभी लोगों को एक मोटे वृक्ष की ओट में छिपकर यह कार्य करना था। यह भी तय किया गया कि धमाके की आवाज सुनकर जब चार्ल्स टेगार्ट बाहर निकले तो दूसरे समूह में से त्रैलोक्य चक्रवर्ती उसके ऊपर बम प्रहार करेगा। सभी के पास चंद्रनगर से मँगाए गए बम भी थे और माउजर पिस्तौलें भी।

क्रांतिकारियों के दोनों समूह २५ नवंबर, १९१४ को संध्या समय सात और आठ बजे के बीच वसंत चटर्जी के मकान पर पहुँच गए। योजना के अनुसार पुलिस अफसर वसंत चटर्जी को आवाज दी गई। आवाज सुनकर हेड कांस्टेबिल रामभजन बाहर निकला। क्रांतिकारियों ने समझा कि वसंत चटर्जी ही बाहर निकला है। उन्होंने बम का प्रहार कर दिया। विकट धमाका करता हुआ बम का विस्फोट हुआ और उससे उचटनेवाली सामग्री ने क्रांतिकारियों में से कुछ को घायल भी कर दिया। योजना का दूसरा चरण क्रियान्वित नहीं किया जा सका। पहला विस्फोट करने के साथ ही क्रांतिकारी लोग वहाँ से दो दिशाओं में भाग खड़े हुए।

बम प्रहार से कुछ समय पूर्व ही टेगार्ट वहाँ से जा चुका था और किसी कार्य से वसंत चटर्जी मकान के भीतरी भाग में चला गया था। बेचारा हेड कांस्टेबिल

रामभजन बाहर निकला और वह शिकार हो गया। बम विस्फोट से उसकी दोनों टाँगें उड़ गई थीं। अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई। क्रांतिकारियों में से नगेंद्र सेन, काली मैत्रा और सतीश पकरासी घायल हुए। घटनास्थल से लगभग तीन सौ गज के फासले पर अखिल मिस्त्री लेन में एक स्थान पर नगेंद्र सेन घायल अवस्था में पड़ा पाया गया। बहुत खून निकल जाने के कारण वह बेहोश होकर वहाँ गिर पड़ा था। उसे पुलिस उठाकर ले गई। बहुत खोज करने पर भी पुलिस बम विस्फोट की घटना से उसका संबंध स्थापित नहीं कर सकी और जाँच-पड़ताल के पश्चात् उसे छोड़ दिया गया। कोई क्रांतिकारी गिरफ्तार नहीं हो सका।

घायल काली मैत्रा और सतीश पकरासी को चिदम मूदी लेन स्थित अतुलकृष्ण घोष के मकान पर पहुँचाया गया, जहाँ उसका इलाज जदुगोपाल मुखर्जी ने किया। जदुगोपाल मुखर्जी उस समय कलकत्ता मेडिकल कॉलेज का विद्यार्थी था। □

★ काशीराम ★ जगतसिंह ★ जीवनसिंह ★ ध्यानसिंह ★ बख्शीशसिंह ★ रहमत अली शाह ★ लालसिंह
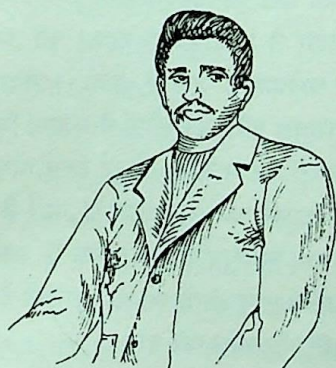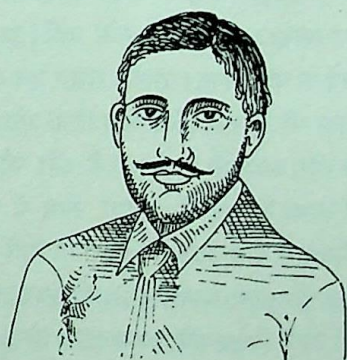
काशीराम रहमत अली शाह

काशीराम के लिए अंग्रेजी सरकार फाँसी का फंदा उसी प्रकार तैयार कर चुकी थी, जिस प्रकार गदर पार्टी के अन्य क्रांतिकारियों के लिए किए गए थे। क्रम भी वही था—अमेरिका या कनाडा के लिए प्रस्थान, गदर की लहर में भारत वापसी,

गदर आंदोलन में सक्रिय भाग और फिर फाँसी।

काशीराम का जन्म सन् १८८१ में अंबाला जिले के 'बड़ी मढ़ौली' नामक गाँव में पं. गंगाराम के घर हुआ था। भारत में एक-दो छोटी-मोटी नौकरियाँ करने के बाद हांगकांग होते हुए अमेरिका पहुँच गए और वहाँ बारूद के कारखाने में काम करने लगे। कुछ दिन पश्चात् आपने एक टापू पर सोने की खान का ठेका लिया और काफी पैसा कमाया। गदर की लहर में २५ या २६ नवंबर, १९१४ को आप भारत आ गए। कुछ घंटों के लिए आप अपने गाँव भी पहुँचे और आपके दर्शनार्थ एकत्र भीड़ को आपने गदर का संदेश भी दिया। आप गाँव से अचानक यह कहकर चले गए कि लाहौर नेशनल बैंक में मेरे तीस हजार रुपए जमा हैं, मैं उन्हें लेने जा रहा हूँ। फिर आप गाँव कभी नहीं पहुँच सके।

पंजाब के जिस दल के साथ काशीराम कार्य कर रहे थे, उसने निश्चय किया कि हथियार खरीदने के लिए तथा पैसे के अभाव की पूर्ति करने के लिए मोगा के सरकारी खजाने को लूटा जाए। योजना बन गई और २७ नवंबर, १९१४ को दिन के एक बजे पंद्रह आदमियों की एक पार्टी तीन इक्कों में सवार होकर फिरोज़पुर की नहर के पुल की तरह बढ़ गई। उस ओर मिश्रीवाला नाम का गाँव था, जहाँ एक थानेदार जेलदार तथा पुलिस के कुछ सिपाहियों के साथ पुलिस सुपरिंटेंडेंट के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। थानेदार का नाम बशारत अली तथा जेलदार का नाम ज्वालासिंह था।

इक्कों में सवार इतने आदमियों को जाता देख थानेदार ने उन्हें रुकने के लिए आवाज दी; पर वे रुके नहीं। इसपर थानेदार ने एक पुलिस सवार को उन लोगों के पास भेजा। पुलिस सवार उन लोगों को थानेदार के पास ले आया। थानेदार ने एक घेरे में उन्हें नीचे बैठा दिया और उनसे पूछताछ की। उन लोगों ने बताया कि हम लोग सरकारी कर्मचारी हैं और फौज में रंगरूटों की भरती करने के लिए मोगा की तरफ जा रहे हैं। हमारे काम में व्यवधान डालने की आवश्यकता नहीं है। थानेदार ने उन्हें जाने की अनुमति नहीं दी और कहा कि सुपरिंटेंडेंट साहब के आने पर उन्हें अपनी सफाई देकर ही आप लोग जा सकेंगे। इन लोगों को यह समझते देर नहीं लगी कि रुकने का मतलब होगा, गिरफ्तारी और जेल की हवा।

पार्टी के एक सदस्य जगतसिंह ने अपनी पिस्तौल निकाली और थानेदार बशारत अली को गोली मार दी। कुछ लोगों के पास लोहे के सरिए थे। उन्होंने सरिए थानेदार की खोपड़ी पर दे मारे। पुलिस के लोग भाग खड़े हुए। जेलदार ज्वालासिंह पर भी गोली दागी गई और वह भूमि पर गिर पड़ा। उसको एक गोली और मारी गई। शेष लोग भागकर बचने में सफल हो गए। कुछ लोग गाँव में जा

घुसे और कहा कि डाकुओं ने हमला कर दिया है।

गोलियों की आवाज सुनकर मिश्रीवाला गाँव के लोग बाहर निकले। भागकर वहाँ पहुँचे। लोगों ने उनसे यही कहा कि डाकुओं के दल ने हमला किया है। गाँव के लोगों के हाथों में जो भी हथियार पड़ा, उसे लेकर वे झपट पड़े। उनमें से कुछ के पास बंदूकें थीं, कुछ के पास पिस्तौलें थीं, कुछ के पास भाले व फरसे थे और कुछ के पास लाठियाँ थीं। गाँववालों की संख्या काफी थी और उनके पास हथियार भी थे, इस कारण क्रांतिकारी लोग उनसे मुकाबला करने की स्थिति में नहीं थे। उनमें से छह क्रांतिकारी 'ओगाकी' गाँव की तरफ भाग गए और नौ व्यक्ति नहर के आसपास सरकंडों में छिप गए। इन नौ व्यक्तियों में से एक को भागते हुए पकड़ लिया गया। सरकंडों में छिपे हुए व्यक्तियों पर गाँववालों ने गोलियाँ चलाईं। गोलियाँ चलती हुई देखकर छिपे हुए व्यक्ति निकलकर भागे। उनमें से छह को पकड़ लिया गया। गाँववाले पूरे जोश में थे। उनके साथ भागे हुए पुलिसवाले भी आ मिले थे। कुछ लोग सरकंडों में घुसकर अपराधियों की तलाश करने लगे। एक व्यक्ति मरा हुआ पाया गया। उसका नाम चंदरसिंह था। ध्यानसिंह नाम का व्यक्ति घायल अवस्था में पकड़ा गया।

फिरोजपुर के सेशन जज की अदालत में मुकदमा चला और १३ फरवरी, १९१५ को निर्णय सुना दिया गया। जिन सात व्यक्तियों को फाँसी का दंड दिया गया, वे थे—

१. जगतसिंह,
२. बख्शीशसिंह,
३. लालसिंह,
४. ध्यानसिंह,
५. जीवनसिंह,
६. काशीराम,
७. रहमत अली शाह।

उन लोगों की सारी संपत्ति भी जब्त कर ली गई। काशीराम के तीस हजार रुपए, जो लाहौर नेशनल बैंक में जमा थे, वे भी जब्त कर लिये गए।

उन सातों क्रांतिकारियों को तीन, दो और दो के समूहों में २५, २६ व २७ मार्च, १९१५ को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

उनका दुर्भाग्य यही था कि उन्हें डाकू समझा गया। वे गदर योजना के अंतर्गत ही भारत की आजादी के लिए शहीद हुए थे।

□

★ कासिम इस्माइल मंसूर

सिंगापुर के बाहरी अंचल में सड़क पर खड़े हुए तीन भारतीय सैनिक आपस में चर्चा कर रहे थे कि शहर की तरफ जानेवाली एक कार उनके पास आकर रुकी और कार चलानेवाले ने उनसे पूछा—

''यदि आप लोग शहर जाना चाहते हों तो मैं आप लोगों को कार में ले चलने के लिए तैयार हूँ।''

सैनिकों में से एक ने कहा—

''वैसे तो हम लोग घूमते हुए ही जाने का इरादा कर रहे थे, पर आप लिफ्ट दे रहे हैं तो हम लोग सधन्यवाद आपकी उदारता का लाभ उठाएँगे।''

वे लोग कार में बैठ गए। बातचीत के सिलसिले में दोनों पक्षों को एक-दूसरे की जानकारी मिली। कार चलानेवाले कार के मालिक ही थे और उनका नाम था कासिम इस्माइल मंसूर। वे सूरत के 'रंडर' गाँव के रहनेवाले थे और व्यापार के सिलसिले में सिंगापुर पहुँचे थे। वहाँ उनकी कई गाड़ियाँ सड़कों पर चल रही थीं और अच्छी कमाई हो रही थी। सैनिकों से उनका परिचय हुआ, जो पंजाब के रहनेवाले थे। बातचीत की शुरुआत अंग्रेजी में हुई थी, पर बाद में वे लोग हिंदुस्तानी बोलने लगे थे।

इस पहली मुलाकात के बाद उन लोगों की और भी मुलाकातें हुईं और आपस में वे लोग एक-दूसरे से पूरी तरह खुल गए। यद्यपि कासिम इस्माइल मंसूर को राजनीति में कोई रुचि नहीं थी, पर दिल में भारत के पराधीन होने की कसक अवश्य थी। विद्रोह की भनक उनके कानों में पड़ चुकी थी और उन्होंने अपने सैनिक मित्रों को आश्वासन दे रखा था, मेरा पैसा आपका पैसा है और मेरी गाड़ियाँ भी आपकी गाड़ियाँ हैं। आप लोग जब चाहें, इनका उपयोग कर सकते हैं।

कासिम इस्माइल मंसूर बर्मा आते-जाते रहते थे। एक बार उनके सैनिक मित्रों ने एक गोपनीय पत्र उन्हें देकर उसे रंगून में जर्मन कौंसेल के पास पहुँचाने का आग्रह किया। यह कार्य उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। शायद उनके पीछे गुप्तचर लगे हुए थे। वैसे अकसर ही वे बर्मा आते-जाते रहते थे; पर कभी उनकी तलाशी नहीं ली जाती थी। उस दिन चेक पोस्ट पर उनकी तलाशी ली गई और वह गोपनीय पत्र पकड़ लिया गया। उन्हें पुलिस मेहमानखाने में पहुँचा दिया गया। भेजनेवालों के विषय में उनसे बहुत पूछताछ की गई और उन्हें कष्ट व प्रलोभन भी दिए गए; पर किसीको फँसाने के लिए उनकी जबान खुली ही नहीं।

३ मार्च, १९१५ को कासिम इस्माइल मंसूर को फील्ड कोर्ट मार्शल के सामने पेश किया गया। एक साथ कई धाराएँ उनपर आरोपित की गईं और एक ही बैठक में उनके खिलाफ निर्णय दे दिया गया। निर्णय था मृत्युदंड।

सिंगापुर की जेल में कासिम इस्माइल मंसूर को जून १९१५ के पहले सप्ताह में फाँसी दे दी गई।

भारत माता का एक और सपूत उसकी गोद से बहुत दूर उसके लिए कुरबान हो गया।

□

★ किशनसिंह गड़गज्ज
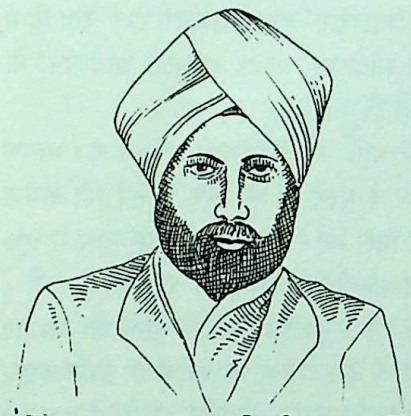
किशनसिंह गड़गज्ज

यह सन् १९१९ की बात है। नं. २/३५ सिख रेजीमेंट के हवलदार किशनसिंह गड़गज्ज को जब यह समाचार मिला कि अमृतसर के जलियाँवाला बाग में १३ अप्रैल को ठीक बैसाखी के त्योहार के दिन अंग्रेजी फौज ने निहत्थी और निर्दोष जनता पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाकर सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया है, तो उसका खून खौल उठा और अपनी नौकरीजन्य विवशता के प्रति स्वयं पर ग्लानि हुई। उसका चिंतन था कि गोली चलाने का हुक्म भले ही अंग्रेज अफसरों ने दिया हो, पर गोलियाँ तो फौज के हिंदुस्तानी सिपाहियों ने ही अपने हिंदुस्तानी भाई-बहनों और बच्चों पर चलाई हैं। केवल पेट भरने के लिए ही आदमी अपने सगे-संबंधियों का खून करे, यह चिंतन उसे विचलित करने लगा।

आंतरिक आक्रोश तथा ग्लानि का परिणाम यह निकला कि किशनसिंह गड़गज्ज ने फौज की नौकरी छोड़ दी और अकाली दल में सम्मिलित हो गया। नौकरी छोड़ने का कारण उसने इन शब्दों में प्रकट किया—

''सरदार अजीतसिंह की नजरबंदी, दिल्ली के रकाबगंज के गुरुद्वारे की दीवार तोड़े जाने, बजबज में निर्दोष यात्रियों पर गोली चलाने, रौलेट एक्ट एवं

जलियाँवाला बाग हत्याकांड और मार्शल लॉ आदि बातों के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हो गई तथा गुलामी के बोझ को और अधिक न सह पाने के कारण मैंने सरकारी नौकरी छोड़ दी।''

अकाली दल में सम्मिलित होकर किशनसिंह गड़गज्ज उसके द्वारा संचालित असहयोगात्मक आंदोलन में भाग लेने लगे। धीरे-धीरे इस कार्यक्रम से भी उन्हें अरुचि हो गई। उसका कारण यह था कि उन्हें यह बात नहीं जँची कि पुलिस हमारे ऊपर डंडे व गोलियाँ चलाए और हम अहिंसात्मक आंदोलन के बहाने पुलिस की मार खाते रहें तथा उसकी गोलियों से मरते रहें; जबकि हमारे खून में उनके खून से कहीं ज्यादा गरमी और हमारे बाजुओं में उनके बाजुओं से कहीं ज्यादा ताकत है। इसी प्रकार के विचारों से प्रेरित होकर किशनसिंह गड़गज्ज ने एक संगठन खड़ा किया, जिसका नाम उन्होंने 'चक्रवर्ती दल' रखा। किशनसिंह के कार्यक्रम से आकर्षित होकर उन्हीं जैसे गरम विचारोंवाले कर्मसिंह एवं उदयसिंह जब उनके साथ आ मिले तो 'चक्रवर्ती दल' का नाम बदलकर 'बब्बर अकाली दल' रख दिया गया और इस दल द्वारा चलाए जानेवाला आंदोलन 'बब्बर अकाली आंदोलन' के नाम से विख्यात हुआ।

किशनसिंह गड़गज्ज बहुत उग्र विचारों के हौसलेवाले व्यक्ति थे। भाषण कला पर उनका अच्छा अधिकार था और वे मुरदों में भी प्राण फूँकने की क्षमता रखते थे। उनको साथी भी अपने जैसे ही मिल गए। 'बब्बर अकाली' नाम से एक पत्रिका भी प्रकाशित की जाने लगी, जिसका संपादन कर्मसिंह करते थे।

बब्बर अकाली दल के सदस्यों ने यह अनुभव किया कि भारत को आजाद करने के पिछले जितने भी प्रयास हुए हैं, वे देशद्रोहियों के कारण ही विफल हुए हैं। अतः इस दल के सदस्यों ने यह निश्चय किया कि जो कोई भी अपने दल की मुखबिरी करे, उसे तुरंत ही समाप्त कर दिया जाए, जिससे यह बीमारी फैले ही नहीं। देशद्रोहियों को मौत के घाट उतारने के कार्यक्रम को उन लोगों ने 'सुधार आंदोलन' की संज्ञा प्रदान की। जब कभी वे किसी गद्दार को गोली से उड़ा देते थे तो कहते थे कि हमने उसे सुधार दिया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत दर्जनों देशद्रोहियों को सुधारा गया।

बब्बर अकाली दल की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर सरकार के कान खड़े हो गए। पुलिस उसकी गतिविधियों को सूँघती फिरने लगी। कई लोगों के खिलाफ गिरफ्तारी के वारंट निकाले गए और उनके सिरों के लिए पुरस्कार घोषित किए गए।

पुलिस की सतर्कता के परिणामस्वरूप किशनसिंह गड़गज्ज ने जो नीति अपनाई, वह यह थी कि उनका दल अचानक किसी गाँव में पहुँचता और सौ-

पचास लोगों को एकत्रित कर, उनके सामने ओजस्वी भाषण देकर उन्हें अपना कर्तव्य बताता और वहाँ से चल देता। अकेले किशनसिंह गड़गज्ज ने विभिन्न स्थानों पर तीन सौ सत्ताईस व्याख्यान दिए और हजारों लोगों को क्रांतिकारी बनाया।

इन क्रांतिकारियों से निबटने के लिए पुलिस ने भी भेदियों को अधिक प्रलोभन दिए और क्रांतिकारियों पर अपने जाल फेंकने का काम तेज कर दिया। आखिर किशनसिंह गड़गज्ज पुलिस के जाल में फँस गए और उन्हें गिरफ्तार करके लाहौर भेजा गया। उनपर मुकदमा चला और उन्हें तथा उनके पाँच अन्य साथियों को २७ फरवरी, १९२६ को फाँसी के फंदों पर लटका दिया गया। ग्यारह क्रांतिकारियों को आजन्म कालापानी का दंड दिया गया और कुछ को विभिन्न अवधि की सजाएँ दी गईं।

बब्बर अकाली आंदोलन भारत की आजादी के इतिहास में एक छाप छोड़ गया।

□

★ कुमुदबंधु भट्टाचार्य

कुमुदबंधु भट्टाचार्य की उम्र बहुत कम थी, लेकिन उसके हौसले बहुत ऊँचे थे। क्रांति के कंटकाकीर्ण पथ पर कदम रखते हुए उसने अपने परिणाम के विषय में चिंतन किया था, वह यह था कि या तो वह लड़ते-लड़ते मारा जाएगा या फाँसी के फंदे को गौरव प्रदान करेगा। लेकिन हुआ वह, जो उसने नहीं सोचा था। वह धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया और अपने साथियों के पते-ठिकाने न बताने के कारण अमानवीय यातनाओं का शिकार हुआ। जब शासन ने देखा कि वह झुकनेवाला युवक नहीं है तो उसे तोड़कर रख देने का उपक्रम किया गया। उसे मिदनापुर जिले के 'एगरा' नामक स्थान पर बंद कर दिया गया, जो उस क्षेत्र का नरक समझा जाता था। वह स्थान इतना छोटा था कि वहाँ एक हेड कांस्टेबिल ही पुलिस का सबसे बड़ा अफसर था। डॉक्टर के नाम पर तो वहाँ कोई था ही नहीं। वहाँ जानवरों का अर्द्धशिक्षित डॉक्टर था, जिसके पास पशुओं का इलाज करने का प्रमाण-पत्र भी नहीं था। उस क्षेत्र के मरीज जब यह समझ लेते थे कि मृत्यु अवश्यंभावी है, तो वे मरने के लिए उसी पशु चिकित्सक के पास पहुँचा करते थे। कुमुदबंधु भट्टाचार्य को वहाँ शायद उस डॉक्टर द्वारा उपकृत होने के लिए ही भेजा गया था।

'एगरा' में पहुँचते ही कुमुदबंधु भट्टाचार्य भयंकर मलेरिया का शिकार हो गया। उस थाने का अफसर हेड कांस्टेबिल बार-बार अपने आला अफसरों को उसकी भयंकर बीमारी की रिपोर्ट भेजता रहा; पर उसकी एक भी नहीं सुनी गई। हुआ वही जो होता आया था। कुमुदबंधु को आखिरी धक्का देने के लिए उस पशु चिकित्सक को ही बुलाया गया और उसने १५ दिसंबर, १९१८ को कुमुदबंधु को दूसरी दुनिया में जाने के लिए पासपोर्ट दे दिया।

□

★ केदारनाथ

देश को आजाद कराने के प्रयत्नों में भारत के क्रांतिकारी विदेशों की भी खाक छानते फिर रहे थे। देश की आजादी के लिए आशा की किरण जहाँ भी उन्हें दिखाई देती, वे लाख मुसीबतें उठाकर भी वहाँ पहुँचते थे और कोई भी प्रयत्न बाकी नहीं रखते थे।

इसी प्रकार का एक क्रांतिकारी युवक केदारनाथ जर्मनी होता हुआ फारस पहुँच गया। वहाँ वह इस उम्मीद से गया था कि वह भारत में काम कर रहे अपने क्रांतिकारी साथियों से संपर्क स्थापित कर सकेगा और यदि संभव हो सका तो भारत में ब्रिटिश राज़्य पर आक्रमण करने के लिए एक गुरिल्ला दल का निर्माण भी करेगा। केदारनाथ की उम्र केवल बाईस वर्ष की थी, लेकिन हौसले बहुत बुलंद थे।

केदारनाथ ने फारस में भारतीय फौज में कुछ लोगों से परिचय बढ़ाया और उनसे सामयिक सहायता का आश्वासन भी प्राप्त किया। बाद में उसने अनुभव क़िया कि वह गलत़ लोगों के चंगुल में फँस गया है। वह रेगिस्तान पार करके किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए चल दिया; लेकिन वह गिरफ्तार कर लिया गया। उसे केरमान पहुँचाया गया और ब्रिटिश फौजियों ने उसे गोलियों से भून डाला। सन् १९१७ में भारत का एक सपूत उससे बहुत दूर आजादी के प्रयत्नों में अपने जीवन का बलिदान दे गया।

□

★ केशरीसिंह बारहठ
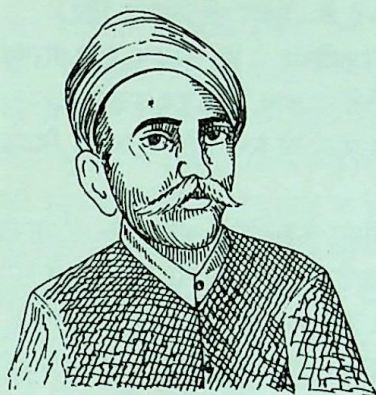
केशरीसिंह बारहठ

राजस्थान की कोटा रियासत में वहीं के एक सरदार ठाकुर केशरीसिंह बारहठ पर यह मुकदमा दायर किया गया कि उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को पलटने का षड्यंत्र रचा है। इस मुकदमे से समस्त राजपूताना और मध्य प्रांत की रियासतों में तहलका मच गया। लोगों को आश्चर्य इस बात का था कि इस प्रकार का मुकदमा किसी अंग्रेज शासित प्रांत में न चलाया जाकर देशी रियासत में क्यों चलाया गया है? भय का एक कारण यह भी था कि पता नहीं ब्रिटिश शासन किस रियासत के किस व्यक्ति को अपना कोपभाजन बना ले।

ठाकुर केशरीसिंह बारहठ शाहपुरा रियासत के एक जागीरदार भी थे और वे उदयपुर राज्य में महाराणा फतहसिंह के दरबार में सरदार के पद पर भी कार्य कर चुके थे; पर उनके गुणों से आकृष्ट होकर कोटा नरेश उन्हें अपने राज्य में ले गए और एक सम्मानित पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। ठाकुर केशरीसिंह बारहठ की बुद्धि और संगठन क्षमता ही उनके लिए शत्रु बन गई। उन्होंने राजपूत जाति को संगठित कर उसमें नवीन चेतना फूँकनी प्रारंभ कर दी। उस समय प्रत्येक देशी रियासत में एक अंग्रेज रेजीडेंट रहा करता था, जो देशी नरेशों की गतिविधियों पर दृष्टि रखता था। कोटा के रेजीडेंट को संदेह हुआ कि केशरीसिंह ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध कोई षड्यंत्र रच रहा है। रियासत पर दबाव डालकर केशरीसिंह पर मुकदमा चला दिया गया।

ठाकुर केशरीसिंह बारहठ के विरुद्ध कोई गवाह मिलना मुश्किल था। वे राजस्थान की चारण जाति के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और सभी रियासतों में उनका काफी सम्मान था। कोटा राज्य के दीवान रघुनाथ चौबे को भी दबाया गया कि वे केशरीसिंह के विरुद्ध या तो स्वयं गवाही दें या अन्य गवाह प्रस्तुत करें; पर किसी भी मूल्य पर दीवान साहब इस कृत्य के लिए सहमत नहीं हुए। आखिर सरकार ने एक युक्ति सोची। उन दिनों 'दिल्ली षड्यंत्र केस' और 'आरा षड्यंत्र केस' चल

रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने एक जाली पत्र बनवाकर ठाकुर केशरीसिंह को इन षड्यंत्रों का समर्थक निरूपित किया। परिणाम यह निकला कि दबाव में आकर अदालत ने केशरीसिंह को आजन्म कारावास का दंड सुना दिया। इतना ही नहीं, उनकी सारी चल और अचल संपत्ति की जब्ती के आदेश भी निकाल दिए।

खचाखच भरी हुई अदालत में जब केशरीसिंह ने यह फैसला सुना तो गर्व के साथ उनकी छाती फूल गई और अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—

''आखिर ब्रिटिश सरकार ने मुझे इस योग्य तो समझा कि मैं उसके विरुद्ध युद्ध कर सकता हूँ।''

फिर न्यायाधीश की ओर मुड़कर ठाकुर केशरीसिंह बोल उठे—''आपने मेरी चल और अचल संपत्ति जब्त करने के आदेश तो दे दिए; पर मेरे हृदय में भरी हुई भावनाओं और संकल्पों की संपत्ति आप जब्त कर लें, तब मैं आपको जानूँ।''

उस दिन ठाकुर केशरीसिंह के मुकदमे का फैसला सुनने के लिए अदालत में अपार भीड़ थी। फैसला सुनने के लिए उनकी पत्नी भी पहुँची थीं और उनका पुत्र प्रतापसिंह भी। फैसला सुनने के बाद जब उन्हें बेड़ियाँ पहनाकर ले जाया जाने लगा तो उनके पुत्र प्रतापसिंह ने उनके पैर पकड़ लिये और रोकर कहने लगा—

''पिताजी! मुझे पता नहीं कि अब आपके ये चरण इस जीवन में मिल सकेंगे या नहीं! जाते-जाते मेरे लिए आपका क्या आदेश है?''

यह दृश्य जिसने भी देखा, सभी की आँखों से अश्रुपात होने लगा। ठाकुर साहब को ले जानेवाले सिपाही भी तो इनसान थे, उनकी आँखें भी नम हो गईं और उन्होंने पिता-पुत्र के मिलन में बाधा नहीं पहुँचाई। ठाकुर केशरीसिंह ने अपने पुत्र को उठाकर अपने हृदय से लगाया और बोल उठे—

''प्रताप, जब तुम पैदा हुए थे तब मैंने बड़ी साध से तुम्हारा नाम 'प्रताप' रखा था। जब तुम छोटे थे, तब मैं अपने मित्रों से कहा करता था कि मेरा यह पुत्र सच्चे अर्थों में 'प्रताप' बनेगा।

''बेटा! हम राजपूत हैं और हमारे रहते यह देश पराधीन रहे तो इससे बढ़कर कलंक की बात हमारे लिए और क्या होगी! जिन्होंने देश की स्वाधीनता को अपना लक्ष्य बनाया है, उन्हें विपत्तियाँ तो झेलनी ही पड़ेंगी। तुमसे मेरा यही कहना है कि जो ज्योति मैंने जलाई है, तुम उसे बुझने न देना और बलिदान के रास्ते पर तुम मुझसे आगे निकलकर दिखाना।''

इतना कहकर ठाकुर केशरीसिंह ने बालक प्रताप को अपने से अलग करके उसकी माँ की ओर टेल दिया। उस राजपूत रमणी ने पुत्र को अपनी बाँहों में कस लिया और अपने आँसुओं से उसके मस्तक का अभिषेक उस समय तक करती रही

जब तक कि अपने बिदा लेते हुए पति की बेड़ियों का स्वर उसे सुनाई देता रहा।

प्रताप और उसकी माँ, अब दोनों ही गृहहीन थे। उनकी सारी संपत्ति जब्त की जा चुकी थी और सरकार ने उन्हें दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया था। प्रताप की माँ अपने भाई के यहाँ रहकर दिन काटने लगी। वह प्रताप को उसी साँचे में ढालने लगी, जिसका निर्देश उसके पति कर गए थे। प्रताप भी उस ज्योति को अपने हृदय में छिपाए उसे बाहर की हवाओं से बचाता रहा। उसकी किशोरावस्था से ही पुलिस ने उसकी गतिविधियों पर नजर रखना प्रारंभ कर दिया। वह देशभक्तों की कहानियाँ पढ़ने में रुचि लेता था और कल्पना किया करता था कि वह भी ऐसे कार्य करेगा, जिससे उसपर भी कहानियाँ लिखी जा सकें। जब उसने सुना कि भारत को स्वतंत्र करने के लिए क्रांतिकारी लोग बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं और अपने जीवन की आहुतियाँ दे रहे हैं, तो वह ऐसे किसी दल में सम्मिलित होने के लिए व्यग्र हो उठा। आखिर उसे सफलता मिली और वह अपने समय के सबसे अधिक प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस और शचींद्रनाथ सान्याल के दल में सम्मिलित हो गया।

जिन दिनों प्रताप भूमिगत क्रांतिकारी की तरह कार्य कर रहा था, उन दिनों उसके पिता ठाकुर केशरीसिंह बिहार की हजारीबाग जेल में बंद थे। जेल में बहुत ही खराब भोजन उन्हें दिया जाता था। वे प्रतिज्ञा कर बैठे कि आज से मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा और केवल दूध पर ही अपना गुजारा करूँगा। जेल अधिकारियों की जिद थी कि हम अन्न का ही भोजन देंगे, दूध नहीं देंगे। केशरीसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। अठारह दिन तक उन्होंने अन्न और दूध कुछ भी नहीं लिया। जेल के अधिकारियों ने अब उनकी प्रतिज्ञा भंग करने की दूसरी युक्ति निकाली। वे उन्हें दूध में थोड़ा चावल का माँड़ मिलाकर देने लगे। जब केशरीसिंह को इस दगा का पता चला तो उन्होंने दूध पीना भी छोड़ दिया। इस बार यह युक्ति की गई कि माँड़ मिले हुए दूध का उन्हें बलात्पान कराया जाने लगा। उन्हें लिटाकर, एक नली उनकी नाक में डालकर वह मिश्रित दूध उनके गले के नीचे उतारा जाने लगा। निरंतर अठारह मास तक पुलिस के साथ उनका यह युद्ध चलता रहा; पर उन्होंने हार नहीं मानी और बिना युद्ध किए कभी दूध नहीं पिया।

अंततः सरकार उनसे परास्त हुई और पीने के लिए उन्हें शुद्ध दूध दिया जाने लगा।

आखिर वह समय आया, जब सरकार ने कृपावंत होकर सन् १९१९ में ठाकुर केशरीसिंह को जेल जीवन से मुक्त कर दिया। जेल में रहते हुए उन्हें अपनी पत्नी और पुत्र के कोई समाचार नहीं मिल पाते थे। जेल से बाहर आने पर उन्हें

विदित हुआ कि उनका पुत्र प्रतापसिंह कितना दृढ़ संकल्पी और चरित्रवान् क्रांतिकारी निकला, जिसने अनेक यातनाओं को सहकर भी अपने साथियों के पते-ठिकाने नहीं बताए और एक वीर की भाँति बरेली जेल में अपने जीवन की आहुति दे गया। यह सुनकर केशरीसिंह ने छाती फुलाकर अपने मित्रों से कहा था—

"देखा, आखिर मेरा बेटा बलिदान के पथ पर मुझसे आगे निकलकर दिखा गया। वह सचमुच ही सच्चे अर्थों में 'प्रताप' निकला!"

पता नहीं भारत में ऐसे कितने पिता हैं, जो अपने पुत्रों को इस प्रकार की शिक्षा देते हों और ऐसे कितने पुत्र हैं, जो अपने पिता की आकांक्षाओं की पूर्ति करते हों।

□

★ खुशीराम

लाहौर की एक मसजिद में आमसभा हो रही है। आज इस मसजिद में खुदा ताला से इसलिए दुआ माँगी जा रही है कि वह उनके वतन हिंदोस्तान को आजादी अता फरमाए। मसजिद है तो क्या, आज हिंदू भाई भी वहाँ आमंत्रित हैं। एक युवक खड़ा होकर हुंकार भरता है—"मेरे बुजुर्गो और दोस्तो! खुदा के इस घर में बैठकर आज हम इस बात की कसम खाते हैं कि देश की आजादी के लिए हम अपना खून बहाते हुए जरा भी नहीं हिचकेंगे। जालिम हुकूमत ने हमपर जो बंदिशें लगाई हैं, हम उन्हें तोड़ेंगे और उन मदहोश जालिमों को सिखाएँगे कि आजादी के दीवानों के बढ़ते हुए कदम अपनी मंजिल पर पहुँचे बिना कहीं रुकते नहीं हैं।"
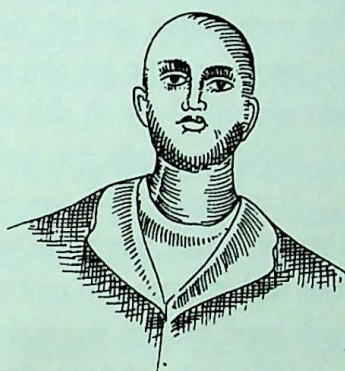
खुशीराम

युवक के बैठ जाने पर सफेद दाढ़ीवाले मौलवी अहमद अली खड़े होकर कहने लगे—"अभी-अभी बरखुरदार अब्दुल करीम ने जिन खयालात का इजहार किया, मैं उनकी ताईद करता हूँ और साथ ही आज के दूसरे मुद्दे पर अपनी राय जाहिर करते हुए आज के जुलूस की लीडरी के लिए शेरदिल नौजवान खुशीराम का नाम पेश करता हूँ।"

"हमें मंजूर है! हमें मंजूर है!" की आवाजों के साथ सबकी निगाहों ने खुशीराम को खड़ा कर दिया। वह दहाड़ने लगा—

"मेरे देशभक्त साथियो! इस अन्यायी शासन की धाराओं को तोड़कर निकाले जानेवाले जुलूस के नेतृत्व के लिए मौलवी साहब ने जो मेरा नाम प्रस्तावित

किया है, इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ और यह गौरव पाने के लिए अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ। जब इतने बुजुर्गों के आशीर्वाद और दोस्तों की शुभकामनाएँ मेरे साथ हैं तो मैं भाई अब्दुल करीम की कसम को दोहराता हूँ। मैं विश्वास दिलाता हूँ और अपने हिंदू संस्कारों को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस पवित्र मसजिद में बैठकर किए गए संकल्पों को पूरा करके ही दिखाऊँगा। हीरामंडी के चौक में तिरंगा झंडा लहराएगा। हमारी आमसभा अब वहीं होगी।''

मसजिद की सभा विसर्जित हो गई। दीवानों का दल खुली सड़क पर पहुँच गया। गली और कूचों से निकल-निकलकर लोगों की धाराएँ जनसागर में मिलने लगीं। 'भारत माता की जय' के नारों से वातावरण गूँजने लगा। हीरामंडी चौक के चबूतरे के उस ओर खड़ा हुआ फौजी दस्ता बंदूकें सँभालकर तैयार हो गया। फौज के नेता नवाब मोहम्मद अली की ओर सबकी नजरें उठ गईं। नवाब साहब गरज उठे—''मेरा हुक्म है कि तुम लोग जुलूस खत्म कर दो और इधर-उधर बिखर जाओ। यदि तुममें से एक भी आगे बढ़ा तो हमारी बंदूकों के मुँह खुल जाएँगे।''

तिरंगे झंडे को और ऊँचा करते हुए खुशीराम ने गर्जना की—

''नवाब साहब! अगर आप मुझे रोक सकते हों तो रोकिए! मैं आगे बढ़ता हूँ। अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठानेवालों की न तो जबान रोकी जा सकती है और न उनके बढ़ते हुए कदम। मेरी छाती खुली है, आप अपनी बंदूकों के मुँह खोलिए। चौक के चबूतरे पर तिरंगा झंडा फहराकर मैं उस संकल्प को पूरा करूँगा, जो एक हिंदू ने पवित्र मसजिद में बैठकर किया है।''

खुशीराम हाथ में झंडा थामे और उसे ऊँचा उठाए आगे बढ़ा। धाँय से एक गोली छूटी और उसकी छाती में समा गई। खुशीराम ने दूसरा कदम आगे बढ़ाया और दूसरी गोली उसकी बगल को चीर गई। शेर की तरह दहाड़ता हुआ, पागलों की तरह झूमता हुआ, खून के फव्वारे छोड़ता हुआ खुशीराम और आगे बढ़ गया। सात गोलियाँ उसकी देह में समा गईं; वे उसके बढ़ते हुए कदमों को न रोक सकीं। चबूतरे पर खड़े होकर उसने नियत स्थान पर झंडा गाड़ ही दिया। आठवीं गोली मृत्यु का रूप धारण करके आई और खुशीराम के मस्तक को फोड़ती हुई आर-पार निकल गई। वीर धराशायी हो गया।

आजादी का वह दीवाना अपने जीवन की कुरबानी दे गया। □

★ गंधासिंह

गदर आंदोलन भी क्या था! उसमें भाग लेने के लिए अमेरिका तथा कनाडा में अच्छी तरह से बसे हुए और खाते-पीते भारतीय जन उसी प्रकार भारत की तरफ भाग रहे थे, जिस प्रकार शमा को जलता हुआ देखकर परवाने उसके ऊपर गिरने लगते हैं।

गंधासिंह भी ऐसे लोगों में से एक थे। कम उम्र में ही वे अमेरिका चले गए थे और वहाँ अपना कारोबार अच्छी तरह से जमा लिया था। मातृभूमि के आह्वान पर उसकी आजादी के यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति डालने के लिए उतावले हो गए और गदर वीरों के साथ भारत पहुँच गए।

इनके भारत पहुँच जाने के पश्चात् ही 'बजबज गोली कांड' हुआ, जिसमें बहुत से भारतीय मारे गए और बहुत से पकड़े गए। उन दिनों जितने भारतीय यात्री और विशेष रूप से सिख लोग हांगकांग होकर कलकत्ता पहुँचते थे, वे सब गिरफ्तार कर लिये जाते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि क्रांतिकारियों की गोपनीय रूप से कार्य करने की पद्धति उस समय तक ये लोग नहीं अपना सके थे। भारत पहुँचने के लिए अमेरिका तथा कनाडा में जोरदार आह्वान किया जाता था और ये लोग रास्ते-भर ऐलान करते जाते थे कि हम लोग भारत की आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने जा रहे हैं। अमेरिका और कनाडा के ब्रिटिश जासूस भी इन लोगों के रवाना होने की सूचनाएँ भारत सरकार के पास भेज देते थे। परिणाम यह होता था कि कलकत्ता में ही ये लोग गिरफ्तार हो जाते थे और सारी विप्लव योजना विफल हो जाती थी।

जब 'कामागाटामारू' जहाज के यात्रियों पर बजबज में गोलियाँ चलाई गईं तो आनेवाले जत्थों को आगाह करने की बात गंधासिंह के मन में आई। भारत से वे वापस हांगकांग पहुँच गए और जिन क्रांतिकारियों ने कलकत्ता के टिकट लिये थे, उनके टिकट बदलवाकर दूसरे जहाज से उन्हें मद्रास पहुँचने के लिए निर्देशित कर

दिया। मद्रास होकर पहुँचनेवाले क्रांतिकारी गिरफ्तार होने से बच गए।

भारत पहुँचे हुए क्रांतिकारियों का जत्था बनाकर गंधासिंह विप्लव योजना में संलग्न हो गए। एक दिन आपका दल फिरोजपुर के पास 'घलखुर्द' नामक गाँव के पास से जा रहा था कि एक पुलिस पार्टी ने आपको पूछताछ के लिए रोक लिया। हमेशा ही क्रांतिकारी इस बात का प्रयत्न करते थे कि पुलिस से साबिका पड़ जाने से पहले ही उसे चरका दिया जाए और बिना झगड़ा किए खिसका जाए; पर यदि कोई उपाय कारगर न हो तो आकस्मिक और तगड़ा आक्रमण करके बच भागा जाए। गंधासिंह ने भी पहले इसी उपाय को अपनाया।

पुलिस दल ने इन लोगों के साथ असभ्य व्यवहार किया और थानेदार साहब ने गंधासिंह के एक साथी को चाँटा मार दिया। नौजवान घर में लाड़-प्यार के वातावरण में पाला गया था, जिसे घर पर मार तो क्या, प्रताड़ना सहने की भी आदत नहीं थी। चाँटा खाकर उसकी आँखों में आँसू आ गए। गंधासिंह अपने साथी का दु:ख नहीं देख सके। स्वतंत्र देश में पले हुए वीर ने फौरन अपना रिवॉल्वर निकाला और थानेदार साहब को गोली मार दी। थानेदार के साथ तहसील का एक वसूली क्लर्क भी था। उसे भी गोली से उड़ा दिया गया। पुलिस दल की संख्या काफी थी। दोनों दलों में गोलियों का आदान-प्रदान होने लगा। क्रांतिकारी दल की गोलियाँ समाप्त हो गईं। उनमें से कुछ तो घटनास्थल पर ही मारे गए और कुछ गिरफ्तार हो गए। गंधासिंह को भाग निकलने में सफलता मिल गई।

पकड़े गए व्यक्तियों पर मुकदमा चला और सात क्रांतिकारियों को १९१४ के शीतकाल में फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

गंधासिंह ने नए दल का निर्माण कर लिया और विप्लवी योजनाएँ क्रियान्वित करने लगे। उनके आतंकवादी कार्यों से पुलिस भी उनसे कतराने लगी। उन्हें गिरफ्तार करना मुश्किल दिखाई देने लगा।

एक दिन खन्ना गाँव में हाई स्कूल के एक अध्यापक ज्ञानी नत्थासिंह से गंधासिंह की भेंट हुई। नत्थासिंह के मन में कुविचार पैदा हो गया था। बातों में लगाकर वह उन्हें अपने साथ लिवा ले चला। एक गाँव के निकट गाँववालों की भीड़ जमा थी। जब ये लोग उस भीड़ में से होकर निकले तो अचानक ही मास्टर नत्थासिंह ने पीछे से गंधासिंह को अपनी बाँहों में भर लिया और अपनी सहायता के लिए लोगों को पुकारने लगा। भीड़ के कुछ लोग भी गंधासिंह के ऊपर टूट पड़े और पीछे हाथ करके उन्हें रस्सियों से अच्छी तरह बाँध दिया गया।

नत्थासिंह उन्हें गाँव की एक कोठरी में बंद करके पुलिस को लेने के लिए चला गया। गंधासिंह के हाथ इतने कसकर बाँधे गए थे कि वे कुछ कर भी नहीं

सकते थे। असहनीय पीड़ा बरदाश्त करते रहे। रात-भर उन्हें कोठरी में पड़े रहना पड़ा। सुबह पुलिस आई और गिरफ्तार करके उन्हें ले गई। रस्सी से कसे रहने के कारण उनके बाजू फूलकर जंघाओं के समान हो गए थे। एक देशद्रोही ने एक देशभक्त को गिरफ्तार करा दिया।

गंधासिंह पर थानेदार और वसूली क्लर्क की हत्या करने का अभियोग चलाया गया और फाँसी की सजा सुना दी गई। न्यायाधीश महोदय ने फैसला लिखते हुए लिखा—

'जो सात व्यक्ति पहले फाँसी पर झुलाए गए थे, वे वास्तविक अपराधी नहीं थे। वास्तविक अपराधी तो यह है, जिसे अब फाँसी दी जा रही है।'

अपने आपमें अंग्रेजी न्याय का यह एक अलग ही उदाहरण है।

८ मार्च, १९१६ को गंधासिंह को लाहौर जेल में फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया। फाँसी लगाने के बाद वार्डर का कथन था—

'मैं अभी तक एक सौ पच्चीस आदमियों को फाँसी के तख्ते पर चढ़ा चुका हूँ। जो हौसला और उत्साह मैंने गंधासिंह में देखा, वह और किसीमें नहीं देखा।'

गंधासिंह को फाँसी देने के पश्चात् जेल के कर्मचारियों को भी रोते हुए देखा गया।

देश की आजादी के लिए एक और दीवाना अपने प्राण दे गया।

□

★ बाबा गुरुदत्तसिंह

आखिर कई झंझटों के बाद तीन सौ साठ भारतीय यात्रियों को लिये हुए 'कामागाटामारू' नाम का जापानी जहाज ४ अप्रैल, १९१४ को हांगकांग से वैंकोवर के लिए रवाना हो गया। जहाज के यात्रियों के मन इस विचार से पुलकित थे कि वे कनाडा के वैंकोवर नगर में पहुँचकर बिछुड़े हुए स्वजनों से मिल सकेंगे। पत्नियाँ थीं, जो अपने पतियों की एक झलक पा लेने के लिए एक-एक दिन अधीरता से बिता रही थीं। माताएँ अपने पुत्रों के सिरों पर आशीर्वाद का हाथ फेरने के लिए और ईश्वर से उनके लिए दुआ मनाने के लिए बेचैन थीं। कई छोटे-छोटे बालक थे, जो अपने पिताओं और बुजुर्गों के पैरों से लिपट जाने के लिए बेताब हो रहे थे। जहाज पर कई वृद्ध पिता भी थे, जो अपने बुढ़ापे के सहारे अपने जवान बेटों की छाया में अपने जीवन के शेष दिन गुजारने के लिए कनाडा जा रहे थे। इन्हीं आकांक्षाओं और
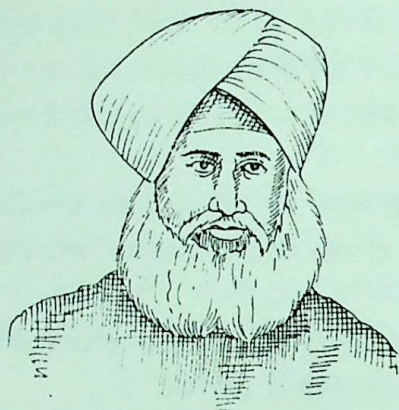
बाबा गुरुदत्तसिंह

उमंगों के साथ धड़कते हुए दिलों ने यात्रा पूरी की। कामागाटामारू जहाज वैंकोवर की समुद्री सीमा में पहुँच चुका था। वह २२ मई, १९१४ का दिन था। बेसब्री के पूरे अड़तालीस दिन यात्रियों ने समुद्र में बिताए थे।

उधर वैंकोवर के तट पर के भारतीय भी स्वजनों से मिलने की उत्कंठा लिये हुए प्रात:काल से ही बंदरगाह पर पहुँच गए थे। जहाज को आता हुआ देख उनके हृदय भी मिलन की आशा के अतिरेक से उछलने लगे थे। पर यह क्या! जहाज दिखाई देकर भी रुक क्यों गया? आज उसे खड़े होने के लिए निश्चित स्थान क्यों नहीं बताया जा रहा है और बंदरगाह के कर्मचारियों में प्रबंध चपलता दिखाई क्यों नहीं दे रही है? तट के प्रतीक्षार्थियों ने बंदरगाह के कार्यालय में पूछताछ की। उन्हें बताया गया—

''यह जहाज नियमानुसार भारत के किसी बंदरगाह से चलकर वैंकोवर नहीं आया है। यह जहाज हांगकांग से चलकर यहाँ आया है, जो नियम के विरुद्ध है, अत: जहाज के यात्रियों को वैंकोवर के तट पर उतरने की अनुमति नहीं दी जाएगी।''

''पर साहब, यह तो सरासर अन्याय है। जहाज के नेता बाबा गुरुदत्तसिंह ने पूरा किराया देकर निश्चित समय तक के लिए जहाज का चार्टर खरीद लिया है, इसलिए उस समय तक यह भारतीय जहाज ही है। फिर जिस नियम की बात आप कर रहे हैं, वह तो रद्द हो चुका है। क्या आपको पता नहीं कि कनाडा के चीफ जस्टिस महोदय ने एक मुकदमे के संबंध में ऐसा निर्णय दिया है?''

''हमें उस निर्णय की सूचना नहीं है। इस समय तो निर्णय हमारे हाथ में है। हमारा निर्णय है कि जहाज किनारे पर नहीं लगेगा।''

''तो क्या, वह जहाज फिर हांगकांग को लौटा दिया जाएगा? यात्रियों के पास पानी और भोजन भी तो नहीं होगा। क्या आपके इस निर्णय से तीन सौ साठ यात्री भूख और प्यास से मर जाएँ?''

''इससे भी कई गुना अधिक लोग प्रतिदिन मर जाते हैं। यदि ये लोग भी मर जाएँगे तो उसकी जिम्मेदारी हमारे ऊपर नहीं होगी। कानून का उल्लंघन करके ये लोग आए हैं। अपनी मौत के लिए ये लोग खुद जिम्मेदार होंगे।''

इस प्रकार दोनों ओर से कशमकश चलती रही, पर कामागाटामारू जहाज को वैंकोवर के किनारे पर नहीं पहुँचने दिया गया। जहाज की भोजन सामग्री समाप्त हो गई। लोग केवल पानी पीकर किनारे पर उतरने का इंतजार करने लगे। धीरे-धीरे पानी भी समाप्त हो गया। एक बार जहाज के जापानी अधिकारी लोग नाव से किनारे पर पहुँचकर अपने लिए पानी लाए तो भारतीय यात्रियों ने उन्हें घेर लिया और उनसे पानी माँगने लगे। जापानी अधिकारियों ने प्रत्येक यात्री को केवल एक प्याला पानी दिया। कुछ को ही पानी मिल पाया था कि धक्का-मुक्की के कारण पानी का बरतन गिर पड़ा और पानी जहाज पर फैल गया।

कई दिनों के प्यासे यात्री जमीन पर लेटकर उस पानी को पीने लगे। कुछ ने फैले हुए पानी से अपने रुमाल और तौलिये तर कर लिये और उस पानी को वे अपने मुँह में निचोड़ने लगे। इतना होने पर भी कनाडा के इमीग्रेशन विभाग के अधिकारियों को दया नहीं आई। वे तो इन भारतीयों की जान लेने पर ही तुले हुए थे।

जहाज को समुद्र में खड़े हुए पंद्रह दिन से अधिक हो चुके थे। इमीग्रेशन विभागवालों के दिल तनिक भी नहीं पिघल रहे थे। आखिर इमीग्रेशन विभाग का एक अधिकारी मि. हॉपकिंसन जहाज के यात्रियों के साथ वार्त्ता करने के लिए नाव के द्वारा जहाज पर पहुँचा। वह जहाज के नेता बाबा गुरुदत्तसिंह को एकांत में ले जाकर बोला—

"अच्छा, यह बताइए कि यदि हम जहाज को वैंकोवर के किनारे पर लगने की अनुमति दें तो आप हमें क्या देंगे?"

"हम भूखे-प्यासे लोग आपके लिए ढेर सारे आशीर्वाद देंगे।"

"आशीर्वाद हिंदुस्तान में चलता होगा, यहाँ वह नहीं चलता। यहाँ तो डॉलर चलता है। आप बताइए कि आप हमें कितने डॉलर देंगे?"

"लेनेवाले आप हैं, आप ही बताइए न कि आप कितने डॉलर लेंगे?"

"बीस हजार डॉलर की राशि यदि आप मुझे देने को तैयार हों तो मैं आपके जहाज को किनारे पर लगने की अनुमति दे सकता हूँ।"

"रकम तो बहुत बड़ी है, साहब, लेकिन हम लोग परेशान हो रहे हैं तो इतनी बड़ी रकम देने को भी तैयार हैं; पर हमारी एक शर्त है।"

"वह क्या?"

"वह यह कि आप बीस हजार डॉलर प्राप्त करने की एक रसीद हमें दे दें; क्योंकि यह रकम हम 'गुरु नानक नेविगेशन निधि' में से देंगे और यदि रसीद नहीं होगी तो यह समझा जाएगा कि इतनी बड़ी राशि हमने हड़प कर ली।"

"देखो मिस्टर गुरुदत्तसिंह, रिश्वत की रसीद दुनिया में कोई नहीं देता। क्या आप हॉपकिंसन को इतना बेवकूफ समझते हैं कि वह आपको रसीद दे देगा। अब आपसे मैं कोई भी सौदा करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं जाता हूँ।"

हॉपकिंसन नाराज होकर चला गया। उसने सोचा कि यदि गुरुदत्तसिंह को वैंकोवर पहुँचने की अनुमति दी गई तो वह रिश्वतवाली बात का प्रचार करके उसे बदनाम कर देगा। उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी हालत में कामागाटामारू जहाज के यात्री वैंकोवर में प्रवेश न कर पाएँ, चाहे वे भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर मर क्यों न जाएँ।

जहाज के यात्रियों को जो एक बार भोजन और पानी का राशन मिला था, वह पाँच-छह दिन में ही समाप्त हो गया था। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि जहाज के जापानी अधिकारी जो अपने लिए पानी लाते हैं, वह लूट लिया जाए तथा पहले बच्चों, स्त्रियों व वृद्धों को पिलाया जाए और उनसे बचे तो जवान लोग पिएँ। उनके इरादे की भनक जापानी अधिकारियों को लग गई। जापानी अधिकारियों की सुरक्षा और जहाज के उद्दंड यात्रियों को दंड देने के विचार से कनाडा सरकार ने एक बड़ी नाव में सैकड़ों सशस्त्र पुलिसवालों को भरकर जहाज की तरफ भेजा। जहाज के यात्रियों ने समझ लिया कि अब खैर नहीं। उन्होंने भी निश्चय कर डाला कि पुलिसवालों को जहाज पर चढ़ने ही नहीं देंगे। पुलिस से भरी हुई नाव जहाज के निकट पहुँच गई। नाव में से एक रस्सा फेंका गया। उस रस्से को जहाज के एक अधिकारी ने जहाज के एक स्तंभ से बाँध दिया। पुलिसवालों ने जहाज पर चढ़ने के पहले ही भारतीयों को लक्ष्य करके गोलियाँ दागनी प्रारंभ कर दीं। निहत्थे यात्रियों ने कोयले के बड़े-बड़े ढेले पुलिसवालों के ऊपर फेंकने का क्रम प्रारंभ कर दिया। जहाज के ऊपर होने से वे पुलिसवालों की गोलियों से बच जाते थे, पर पुलिसवाले यात्रियों की कोयले की मार से नहीं बच पाते थे। वे घायल हो-होकर गिर रहे थे। पुलिसवालों ने गोलियों की रफ्तार तेज कर दी तो यात्रियों ने भी कोयलों पर तेल छिड़ककर और उनमें आग लगाकर बेलचों की सहायता से उन्हें फेंकना प्रारंभ कर दिया। इन जलती हुई मिसाइलों की मार के आगे कनाडियन पुलिस न ठहर सकी। जलते हुए कोयलों की मार से पुलिसवालों में भगदड़ मच गई। पुलिस की नाव डगमगाने लगी और वह डूबने ही वाली थी कि बाबा गुरुदत्तसिंह को दया आ गई और उन्होंने एक आदमी को कहकर जहाज से बँधे रस्से को खुलवा दिया। यदि वे ऐसा न करते तो या तो पुलिसवाले जीवित जल मरते या उन्हें जल-समाधि लेनी पड़ती।

पिटाई खाकर और जख्मी होकर कनाडियन पुलिस लौट आई। सशस्त्र गोरों की निहत्थे काले लोगों द्वारा पिटाई का वह अच्छा उदाहरण बन गया। उन लोगों की खूब बदनामी हुई। अपनी खीज निकालने के लिए उन लोगों ने अपनी सरकार को भड़काया और कनाडा सरकार ने जलसेना के दो लड़ाकू जहाज बुलवाकर कामागाटामारू जहाज के भारतीय यात्रियों पर तैनात कर दिए। समुद्री फौज के हजारों जवानों को भरकर दोनों लड़ाकू जहाजों ने कामागाटामारू जहाज को घेर लिया। वे इन भारतीयों को कुचलकर रख देना चाहते थे। उधर यात्रियों ने भी तय कर लिया कि भूख और प्यास से तड़प-तड़पकर मरने के स्थान पर लड़ते-लड़ते प्राण त्यागना अधिक श्रेयस्कर होगा। इस बार यात्रियों ने अपनी रणनीति में परिवर्तन किया। जहाज पर चढ़ने के स्थानों पर उन्होंने अपने जत्थे तैनात कर दिए। जहाज पर लोहे के सरिए, छड़ें और डंडे आदि जो कुछ भी हाथ लगे, उन्हें लेकर वे फौजियों के ऊपर टूट पड़ने के लिए तैयार हो गए। यात्रियों का एक बड़ा जत्था तेल भंडार और कोयले भंडार के पास तैनात हो गया। उनकी योजना थी कि जैसे ही अपने द्वारपाल साथी लड़ते-लड़ते मारे जाएँ, वे फौरन ही कोयला भंडार पर तेल डालकर उसमें आग लगा दें और तेल भंडार में भी आग पटककर उसे भड़का दें। इस प्रकार पूरे जहाज में आग लग जाने से भारी संख्या में शत्रु सैनिकों के जल मरने की संभावना भी हो गई।

कनाडियन जंगी जहाज कामागाटामारू जहाज पर आक्रमण करने ही वाले थे कि उनकी सरकार ने उन्हें ऐसा करने से एकदम रोक दिया। कनाडा सरकार ने किसी दया भावना से प्रेरित होकर आक्रमण नहीं रोका था। उसने अपने ही नगर वैंकोवर को मरघट बनने से बचाने के लिए यह कदम उठाया था। वैंकोवर नगर में जितने भी भारतीय थे, उन्होंने भी कनाडा सरकार को चेतावनी दे दी कि जिस क्षण कामागाटामारू के भारतीय यात्रियों पर हमला किया गया, उसी क्षण हम लोग भी सारे वैंकोवर नगर में आग लगा देंगे और सारे शहर को जलाकर राख कर देंगे। कनाडा सरकार ने देखा कि सचमुच ही भारतीयों ने शहर को जला डालने की तैयारी कर रखी है। सरकार को भारतीयों की चेतावनी के आगे झुकना पड़ा और उसे अपने दोनों जंगी जहाज वापस बुलाने पड़े। कनाडा सरकार इस हद तक झुकी कि जहाज की वापसी यात्रा के लिए भोजन का प्रबंध वह अपने खर्च से करने के लिए तैयार हो गई। उसने वैंकोवर नगर के भारतीयों को कामागाटामारू जहाज पर जाने और अपने लोगों से मिलने की भी अनुमति दे दी। भारतीयों का रौद्र रूप देखकर कनाडा सरकार की अकल ठिकाने आ गई।

भोजन और पानी का अच्छा भंडार कर लेने और पूर्ण तैयारी कर लेने के

पश्चात् कामागाटामारू जहाज दो महीने तक कनाडा के समुद्र में खड़ा रहकर, वैंकोवर के किनारे लगे बिना ही २३ जुलाई, १९१४ को वापसी यात्रा पर चल दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ चुका था। कामागाटामारू जहाज को हांगकांग नहीं जाने दिया गया। जहाज के कुछ यात्री हांगकांग से सवार हुए थे और वे वहीं उतर जाना चाहते थे; पर उन्हें इसकी अनुमति नहीं मिली। विवश होकर उन्हें आगे बढ़ना पड़ा। जहाज जापान के बंदरगाह कोब पर पहुँचा। कोब में रहनेवाले भारतीयों ने यात्रियों का अच्छा स्वागत किया; पर ब्रिटिश अधिकारियों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया। कोब से जहाज को कलकत्ता के लिए रवाना कर दिया गया। सिंगापुर होता हुआ कामागाटामारू २६ सितंबर को हुगली पहुँच गया। अगले दिन नागरिक वेश में पुलिस के लोग जहाज पर चढ़े और यात्रियों को पंक्तिबद्ध करके उनकी तलाशी ली गई। कुछ यात्रियों ने जापानी अधिकारियों से रिवॉल्वर खरीद लिये थे। उन्हें वे समुद्र में फेंक देने पड़े। तलाशी में यात्रियों के पास कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं पाई गई।

यात्रियों से कहा गया था कि उनका जहाज कलकत्ता ले जाया जाएगा; पर उसे २९ सितंबर को कलकत्ता से उन्नीस मील दूर बजबज ले जाया गया। सभी यात्रियों को जहाज से उतरने के लिए कहा गया। अफसर एवं पुलिसवाले हाथों में बंदूकें तथा रिवॉल्वर तानकर खड़े हो गए और यात्रियों से कहा गया कि यदि आप लोग पंद्रह मिनट में जहाज से नहीं उतरे तो सभी-के-सभी गोलियों से भून दिए जाएँगे। बाबा गुरुदत्तसिंह निरपराध लोगों की हत्या की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते थे। उन्होंने यात्रियों को जहाज से उतर जाने की प्रेरणा दी। लगभग सभी लोगों ने अपना सामान जहाज पर ही छोड़ा और जल्दी-जल्दी में वे जहाज से उतर पड़े। कुछ लोग तो पूरे कपड़े भी नहीं पहन पाए थे। जहाज पर छोड़ा गया सभी सामान जब्त कर लिया गया।

यात्रीगण जब जहाज से उतरे तो उनके स्वागत की निराली तैयारी वहाँ देखी गई। वे जिस गलियारे में से होकर निकले, उसके दोनों ओर मशीनगनें लगी हुई थीं और बंदूकें लिये हुए सैनिक तैनात थे। किसी यात्री के पास गुरु नानकजी का चित्र था। एक मैदान में टीले पर चित्र रखकर यात्रियों ने प्रार्थना की। प्रार्थना की समाप्ति पर लोग मत्थे टेक रहे थे कि एक अंग्रेज अधिकारी डंडा लेकर बाबा गुरुदत्तसिंह की तरफ बढ़ा। किसी दूसरे यात्री ने उसका डंडा छीन लिया। तब दूसरा अंग्रेज डंडा लेकर बढ़ा। उसका डंडा भी छीन लिया गया। हुल्लड़ हो गया। अधिकारियों ने यात्रियों पर गोली चलाने का हुक्म दे दिया। निहत्थे यात्रियों पर गोलियों की वर्षा

होने लगी। जो लोग गोलियों से बचकर भागे, उनपर तलवारों और डंडों के वार किए गए। इस हत्याकांड में अठारह सिख यात्री घटनास्थल पर शहीद हो गए। बाबा गुरुदत्तसिंह के प्राण बचाने के लिए कुछ यात्री उन्हें बलपूर्वक उठा ले गए। इस प्रकार अट्ठाईस यात्री बचकर भाग निकले। केवल साठ यात्रियों को ही पुलिस बलपूर्वक एक विशेष ट्रेन में चढ़ाकर पंजाब ले जा सकी। शेष यात्री किसी-न-किसी प्रकार बच निकले।

वैसे बाबा गुरुदत्तसिंह के नेतृत्व में कामागाटामारू की यात्रा व्यापारिक तथा व्यक्तिगत प्रयास के अंतर्गत आती है, पर यात्रियों के साथ वैंकोवर में किए गए दुर्व्यवहार और बजबज गोलीकांड ने उसे राष्ट्रीय रूप प्रदान कर दिया। इस प्रश्न को लेकर कनाडा एवं अमेरिका के भारतीय उत्तेजित हो उठे और उनका पूरा संगठन क्रांतिकारी संगठन में परिवर्तित हो गया। बजबज में कामागाटामारू के यात्रियों पर हुए गोलीकांड से अन्य जहाजों द्वारा भारत लौटनेवाले गदर पार्टी के लोगों ने सबक लिया और वे मार्ग बदल-बदलकर भारत पहुँचने लगे। गदर पार्टी की कड़ी न होते हुए भी कामागाटामारू घटना क्रांतिकारी आंदोलन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

कामागाटामारू जहाज के भागे हुए यात्रियों और विशेष रूप से बाबा गुरुदत्तसिंह की कहानी रोंगटे खड़े कर देनेवाली है। वे सारे देश में भागते फिरे। हजारों मील की यात्राएँ उन्हें पैदल चलकर करनी पड़ीं। पैरों के फफोले फूटते रहते थे और जख्मों से खून बहता रहता था; पर उन्हें चलते ही रहना पड़ता था। कई दिनों तक न तो उन्हें भोजन मिलता था और न पानी। जंगली जानवरों के बीच से ही उन्हें जंगलों और पहाड़ों में से अपना रास्ता बनाना पड़ता था। कभी-कभी पुलिस के साथ गोलियों का आदान-प्रदान भी होता था।

इतना होने पर भी ब्रिटिश पुलिस बाबा गुरुदत्तसिंह को सात वर्ष तक गिरफ्तार नहीं कर पाई। अपनी फरारी की अवधि में बाबाजी गांधीजी से भी मिले थे। गांधीजी ने उन्हें परामर्श दिया था कि वे पुलिस के सामने समर्पण कर दें।

बाबा गुरुदत्तसिंह पंजाब पहुँचे और दो लाख सिखों के बृहत् जुलूस के साथ पुलिस कमिश्नर के बंगले पर पहुँचकर आत्मसमर्पण कर दिया।

बिना मुकदमा चलाए जेल में रखने के पश्चात् २८ फरवरी, १९२२ को बाबा गुरुदत्तसिंह को जेल से छोड़ दिया गया।

बाबाजी का संपूर्ण जीवन अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का प्रेरक उदाहरण है।

□

★ गेंदालाल दीक्षित

गेंदालाल दीक्षित

एक दिन विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते अध्यापक गेंदालाल दीक्षित के मन में यह संकल्प जाग उठा कि देश को आजाद करने के लिए कोई प्रयत्न करना चाहिए। उसने सोचा कि इस कार्य के लिए जनशक्ति और धनशक्ति, दोनों की ही आवश्यकता होगी। यह विचार आते ही उसने सोचा कि पहले धन-संग्रह करना चाहिए। किसी दूसरे से माँगने जाएँ, इसके पहले स्वयं ही कुछ देना चाहिए, यह विचार भी गेंदालाल दीक्षित के मन में आया। उसने अपनी सिल्क सँभाली और पाया कि सात रुपए चार आने की जमा-पूँजी उसके पास है। उसने सोचा कि चार आने अपने और सात रुपए देश के—चलो, अब और कहीं चलकर देश के लिए कुछ बटोरा जाए।

वह भीखू सेठ के पास गया। सेठ भीकमचंद औरैया नगर के एक अत्यंत धनी सेठ थे। जहाँ एक पैसा खर्च करना हो, वहाँ दस रुपए खर्च करने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती थी। नगर के अमीर-उमरा और अफसर लोग आएदिन ही उनके यहाँ दावतें उड़ाते थे। गेंदालाल ने सोचा कि अकेले भीखू सेठ ही इतना दे सकते हैं कि शायद फिर किसी और के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़े।

राम-राम श्याम-श्याम के बाद भीखू सेठ ने पूछा—

''कहिए मास्टरजी! आज इधर कैसे आना हुआ? आप तो हमें कभी दर्शन ही नहीं देते।''

''बात यह है, सेठजी, कि हम लोग केवल अपने-अपने विषय में ही सोचते रहते हैं। देश की तरफ कभी हमारा ध्यान ही नहीं जाता। देश के लिए कुछ किया जाए, इसीलिए एक कोष की स्थापना का विचार निश्चित हुआ है। मैं उसीके निमित्त आपसे कुछ याचना करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।''

''अच्छा यह बात है, मास्टरजी! बड़ा अच्छा विचार है। सुनिए मुनीमजी! मास्टरजी को एक रुपया दे दीजिए।''

एक रुपए की बात सुनकर मास्टरजी जल-भुनकर रह गए। उन्होंने सोचा कि हो गया देश का उद्धार। अपने मनोभावों को छिपाते हुए बोले—

''सेठजी! यह राशि आपके अनुरूप तो नहीं है।''

''मेरे अनुरूप नहीं, तो आपके अनुरूप तो है, मास्टरजी!''

''क्या मतलब?'' मास्टरजी ने बेरुखी के साथ पूछा।

''बात यह है, मास्टरजी, कि यह राशि मैं आपके लिए दे रहा हूँ। यहाँ आप देश-वेश का नाम मत लीजिए। मुझे जेल नहीं जाना, धंधा चौपट नहीं करना और बाल-बच्चों को भूखों नहीं मारना।''

मास्टरजी कहना तो बहुत चाहते थे, पर वे इतना कहकर ही चले गए—

''अभी यह राशि अपने पास रख लीजिए, सेठजी! जब कभी मुझे इसकी जरूरत होगी तो मैं आकर ले जाऊँगा।''

सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े। पहले ग्रास में ही मक्खी निकल आई। अब किसी दूसरे दरवाजे पर दस्तक देते हुए मास्टरजी की हिम्मत नहीं होती थी। निराशा तो बहुत हुई; पर सोचा कि देश का काम है, हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा। देश के लिए हथियार उठाने का समय है, हथियार डालना कायरता होगी। नगर के दो-चार रत्नों के पास और गए; पर फूटी कौड़ी भी साथ नहीं ला सके। किसीने कुछ बहाना बनाया और किसीने कुछ।

मास्टर गेंदालाल दीक्षित ने सोचा कि धन नहीं मिला तो कोई बात नहीं, चलो जन-संग्रह ही करें। 'शिवाजी समिति' नाम से एक संस्था बनाई और लोगों को उसका सदस्य बनाने का अभियान प्रारंभ किया। लोगों ने उनसे भाँति-भाँति के प्रश्न पूछे—

''क्या आपकी शिवाजी समिति रजिस्टर्ड संस्था है?''

''क्या इसका संविधान शासन द्वारा मान्य है?''

''इस समिति के पदाधिकारी और कार्यकारिणी के सदस्य कौन-कौन हैं?''

''शिवाजी समिति का फंड कितना है?''

इस प्रकार के प्रश्न सुन-सुनकर मास्टरजी का सिर चकरा गया। उन्हें बड़ी निराशा हुई। उन्होंने सोचा, यह कैसा देश है कि जिसके लोगों के मन में मातृभूमि के बंधनों की कोई कसक नहीं है। वे इस विचार से दुःखी हुए कि जिन लोगों के पास धन है, वे देश कार्य के लिए एक पैसा भी देने के लिए तैयार नहीं हैं और जिनके पास बल है, वे दूसरों को सताने में ही आनंद लेते हैं।

देश के लोगों के विषय में सोचते-सोचते गेंदालाल दीक्षित का ध्यान डाकुओं की ओर गया। उन्होंने सोचा कि इन धनवान लोगों से तो डाकू अच्छे हैं,

जो बलपूर्वक एक बार में ही जो कुछ होता है, वह ले लेते हैं; पर ये धनिक लोग तो जीवन-भर शोषण करते रहते हैं और आदमी को जीने लायक नहीं रहने देते। उनके मन में विचार आया कि यदि डाकुओं का कोई संगठन तैयार किया जाए तो कैसा रहे! माना कि वे लोग अशिक्षित होते हैं; पर यदि उनकी भावनाओं को सही दिशा में मोड़ा जाए तो ये लोग अच्छे काम भी कर सकते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि डाकुओं को राजनीतिक प्रेरणा देकर धन-संग्रह भी किया जा सकता है और शस्त्र-संग्रह भी। यह विचार दृढ़ होते ही वे ग्वालियर राज्य के चंबल के बीहड़ों में निकल गए और कुछ डाकुओं से मिलकर उन्होंने एक संगठन तैयार भी किया। कुछ समय पश्चात् डाकुओं की ओर से भी उन्हें निराशा हुई और वे उनका साथ छोड़कर बंबई चले गए। बंबई में भी उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति होती दिखाई नहीं दी।

गेंदालाल दीक्षित अब अध्यापक नहीं थे। अपनी नौकरी छोड़कर वे गले-गले देश के कार्य में डूब चुके थे। उन्होंने फौज में भरती होने का भी प्रयत्न किया; पर इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। उनका फौज में भरती होने का उद्देश्य यही था कि वहाँ रहकर अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया जाए और शस्त्र-संग्रह करके उसका उपयोग देश की आजादी के लिए किया जाए।

बंबई से लौटकर गेंदालाल दीक्षित फिर अपने प्रांत उत्तर भारत में पहुँचे और नवयुवकों का एक संगठन खड़ा करने का उन्होंने नए सिरे से प्रयास प्रारंभ किया। इस बार उन्हें कुछ सफलता मिली। नौजवानों की जो संस्था इस बार उन्होंने बनाई, उसका नाम 'मातृवेदी' रखा। 'मातृवेदी' के सदस्य एक प्रतिज्ञा लेते थे। गेंदालाल दीक्षित और 'मातृवेदी' के अन्य सदस्यों में देशभक्ति एवं बलिदान की भावनाएँ बहुत गहरी थीं। इस संस्था के चार विभाग थे—

१. गोपनीय सेवाएँ,

२. सैन्य संगठन और शस्त्र-संग्रह,

३. धन संग्रह,

४. साहित्य द्वारा संस्था का प्रचार-प्रसार।

गेंदालाल दीक्षित को शस्त्र-संग्रह में कुछ सफलता मिली। वे अपने नौजवान साथियों को जंगल में ले जाकर उन्हें निशानेबाजी का प्रशिक्षण देने लगे। एक अन्य तेजवंत व्यक्ति का सहयोग इस कार्य में गेंदालाल दीक्षित को मिल रहा था। उनका नाम था लक्ष्मणानंद ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारीजी के माध्यम से गेंदालाल दीक्षित को पंचमसिंह नाम के डाकुओं के एक सरदार से संपर्क बढ़ाने का अवसर मिला। पंचमसिंह में राजनीतिक चेतना थी और वह इस शुभ कार्य में 'मातृवेदी' को

सहयोग देने के लिए तैयार हो गया। यह तय हो गया कि राजनीतिक डकैतियों द्वारा जो धन प्राप्त होगा, उसका उपयोग पंचमसिंह का दल अपने लिए न करके, 'मातृवेदी' के लिए समर्पित करेगा।

इस नए दल की संख्या अस्सी तक पहुँच गई। मैनपुरी, इटावा, औरैया, संधाखेड़ा एवं पारा इत्यादि स्थानों पर राजनीतिक डकैतियाँ डाली गईं और काफी धन-संग्रह किया गया। हथियार भी इधर-उधर से हथियाए गए।

सरकार का ध्यान अब इस ओर गया। उस क्रांतिकारी दल को समाप्त करने के लिए उसने अपना एक मुखबिर उस दल में सम्मिलित कर दिया। वह इस अवसर की प्रतीक्षा करने लगा कि कब इस दल को गिरफ्तार कराए। उसकी एक योजना काम कर गई। एक दिन उसने अपने दल के सामने प्रस्ताव रखा कि ग्वालियर राज्य के भिंड जिले के एक गाँव में एक बहुत धनी व्यक्ति है, जिसके पास से हमें अपार धन भी मिल सकता है और कुछ हथियार भी प्राप्त हो सकते हैं। दल इस योजना से सहमत हो गया। मार्ग इतनी दूर का था कि जंगल में कहीं एक रात उन्हें बितानी पड़ी। रात्रि का पड़ाव जहाँ डाला गया, वहाँ भोजन का प्रबंध उस देशद्रोही ने अपनी ओर लिया। उसने कहा कि पास के गाँव में मेरा एक रिश्तेदार रह रहा है, मैं उसके यहाँ से पूड़ियाँ बनवाए लाता हूँ। इस बहाने वह चला गया और कुछ समय पश्चात् वह जहर मिली हुई पूड़ियाँ बनवाकर ले आया। सब लोगों को बिठाकर उसने खाना परोस दिया और दल के सदस्य खाने लगे। भोजन करते हुए ब्रह्मचारीजी की जबान ऐंठने लगी और उन्हें भोजन में विष का संदेह हुआ। वह मुखबिर पानी लेने के बहाने बरतन उठाकर वहाँ से चल दिया। ब्रह्मचारीजी ने अपने साथियों को वह भोजन न करने की हिदायत दी और मुखबिर के ऊपर गोली चलाई; पर वह दूर जा चुका था। लगभग सभी लोगों पर विष का थोड़ा-बहुत असर होने लगा।

पूर्व योजना के अनुसार दल को फौज ने घेर रखा था। अब फौज ने अपनी बंदूकों के मुँह खोल दिए। जब तक होश रहा, क्रांतिकारी दल के सदस्य भी गोलियों का उत्तर गोलियों से देते रहे। काफी समय तक डटकर युद्ध हुआ। ब्रह्मचारीजी मारे गए। कुल मिलाकर उनके दल के पैंतीस व्यक्ति खेत रहे। गेंदालाल दीक्षित भी घायल हुए। उनकी बाईं आँख में एक छर्रा लगा और उनकी आँख जाती रही। कुछ सदस्य तथा गेंदालाल दीक्षित गिरफ्तार हुए। उन्हें गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में रखा गया।

'मातृवेदी' के सदस्यों के विरुद्ध १३ फरवरी, १९१९ को एक मुकदमा दायर किया गया, जो 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' के नाम से मशहूर हुआ। सत्ताईस

व्यक्तियों पर यह मुकदमा चलाया गया।

अपने नेता की गिरफ्तारी से 'मातृवेदी' के अवशिष्ट नौजवान सदस्यों को बहुत दु:ख हुआ। वे ग्वालियर का किला देखने के बहाने वहाँ जेल में अपने नेता से मिले और उन्हें छुड़ाने की योजना बनाई; पर योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। जेल से छूट जाने के लिए गेंदालाल दीक्षित ने स्वयं एक बहुत बड़ा जुआ खेला। उन्होंने पुलिस से कहा कि मेरा संबंध उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल और महाराष्ट्र के सभी क्रांतिकारियों से है और मुझे मालूम है कि बम के कारखाने कहाँ-कहाँ हैं। यदि पुलिस मुझे सरकारी गवाह बनाकर मुक्त कर दे तो मैं सभी क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करा सकता हूँ। पुलिस इस झाँसे में आ गई और गेंदालाल दीक्षित को मुक्त कर दिया गया। बड़े-बड़े अफसरों के पास उनका आना-जाना हो गया और उन्हें सामान्य से अधिक सुविधाएँ दे दी गईं। अवसर पाकर गेंदालाल दीक्षित ऐसे फरार हुए कि वे फिर कभी पुलिस के हाथ नहीं आ सके। उनके साथ उनका एक अन्य साथी रामनारायण भी फरार हुआ था।

फरार होकर गेंदालाल दीक्षित और रामनारायण कोटा पहुँचे। कोटा में उन्हें सहयोग मिला; पर गेंदालाल दीक्षित बहुत कमजोर हो चुके थे। जेल में रहते हुए वे बीमार पड़ गए थे और उन्हें निरंतर बुखार रहने लगा था। धीरे-धीरे उन्हें क्षयरोग हो गया। कोटा में भी क्रांतिकारियों के विरुद्ध पुलिस की सरगर्मी दिखाई दी। कोटा से चलकर गेंदालाल दीक्षित और रामनारायण एक गाँव में जाकर रहे। उनके साथी रामनारायण के दिल में कुछ बेईमानी पैदा हुई। एक रात जब दोनों सो रहे थे तो वह इनका सामान और जो कुछ नकद था, सब लेकर चल दिया और बाहर से कमरे की कुंडी लगाता गया। सुबह जब गेंदालाल उठे तो विषम स्थिति में फँसे हुए थे। वे तीन दिन तक उस कमरे में बंद रहे। क्षयरोग से पीड़ित, तीन दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किए और मानसिक रूप से दु:खी, यह गेंदालाल दीक्षित की ही हिम्मत थी कि वे सबकुछ झेल गए। यह तो अच्छा हुआ कि उनका साथी स्वयं एक फरार व्यक्ति था और उसने पुलिस को गेंदालाल दीक्षित के संबंध में कोई सूचना नहीं दी। उसे सामान तथा पैसों से मतलब था और उन्हें लेकर वह चल दिया।

तीन दिन कोठरी में बंद रहने के पश्चात् गेंदालाल दीक्षित ने किसीसे कमरे की कुंडी खुलवाई और बाहर निकले तथा पैदल ही कहीं चल दिए। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। वे क्षयरोग से पीड़ित थे, तीन दिन के भूखे थे और एक भी पैसा उनके पास नहीं था। ऐसी स्थिति में कभी रेल द्वारा और कभी पैदल सफर करते हुए जैसे-तैसे वे आगरा

पहुँचे। आगरा में उनके दो-एक मित्रों ने उनकी कुछ सहायता की; पर रोग इतना आगे बढ़ गया था कि कोई उन्हें अपने घर टिका नहीं सकता था।

परिस्थितियों से विवश होकर गेंदालाल दीक्षित आगरा जिले की 'बाह' तहसील के अंतर्गत 'मई' ग्राम में अपने घर चले गए। यहीं तो सन् १८८८ में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता ने भी उनका स्वागत नहीं किया। पुलिस उनके घर भी गेंदालाल दीक्षित की तलाश में चक्कर लगाया करती थी। बड़ी मुश्किल से तीन दिन वहाँ रहने के पश्चात् वे वहाँ से भी चल दिए। उनके शरीर की हालत यह थी कि कदम-कदम चलने पर भी उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी। जैसे-तैसे वे दिल्ली पहुँचे और एक प्याऊ में पानी पिलाने का काम उन्हें मिल गया।

दिल्ली में गेंदालाल दीक्षित की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। उनका विवाह हो चुका था और उनकी पत्नी अपने मायके में रह रही थी। अपने एक आत्मीय व्यक्ति को गेंदालाल दीक्षित ने एक पत्र लिखा और वे उनकी पत्नी को लेकर दिल्ली पहुँच गए। उनकी अवस्था इतनी बिगड़ चुकी थी कि थोड़ी-थोड़ी देर में उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी और उनका रिश्तेदार दोनों ही रोने लगे। गेंदालाल दीक्षित ने उन दोनों को इस प्रकार समझाया—

''तुम लोग रोते क्यों हो? दुखिया भारत की सेवा में मेरा यह हाल हुआ है। तुम लोग दुःख मत करो। यदि देश की सेवा के फलस्वरूप मेरे प्राण भी चले जाएँ तो भी तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। मैं तो अपना कर्तव्य कर रहा हूँ। यदि तुम लोग भी इस समय मेरी सहायता करोगे तो वह देश की ही सेवा होगी।''

पति की समझाइश का पत्नी पर उलटा असर पड़ा। वह बिचारी असहाय थी। वह कहने लगी—

''इस संसार में मेरा कौन है?''

यह प्रश्न सुनकर पंडितजी ने एक ठंडी साँस भरी और पत्नी को समझाने लगे—

''आज लाखों विधवाओं का कौन है? लाखों अनाथों का कौन है? करोड़ों भूखे किसानों का कौन है? दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारत माता का कौन है? जो इन सबका मालिक है, वही तुम्हारा भी है। तुम अपने आपको परम सौभाग्यवती समझना, यदि प्राण इसी प्रकार देश की लगन में निकल जाएँ। मुझे तो इस बात का दुःख है कि अत्याचारियों से उनके अत्याचारों का बदला न ले सका। मेरा यह शरीर नष्ट हो जाएगा; किंतु इन्हीं भावों से युक्त मेरी आत्मा दोबारा शरीर धारण करेगी और तब मैं अधिक शक्ति के साथ इन दुष्टों का विनाश करने के काम

में लग जाऊँगा।''

जिस समय गेंदालाल दीक्षित अपनी पत्नी को इस प्रकार समझा रहे थे, उस समय उनके चेहरे पर दिव्य तेज था। एक शुभ संकल्प और समर्पित साधना का जो ओज होता है, वह उनकी कृश काया पर विद्यमान था। उन्होंने अपनी पत्नी को और आगे समझाते हुए कहा—

''तुम्हें खाने-पीने की चिंता नहीं करनी चाहिए; क्योंकि तुम्हारे पिता जीवित हैं, तुम्हारे भाई व रिश्तेदार भी हैं और फिर मेरे मित्र भी तो हैं जो तुम्हें अपनी माता समझ तुम्हारा आदर-सत्कार करेंगे। आजीविका के संबंध में तो तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता है ही नहीं।''

गेंदालाल दीक्षित जब इस प्रकार अपनी पत्नी को समझा रहे थे तभी उनको मूर्च्छा आ गई। उनके मित्र और पत्नी ने समझ लिया कि अब इनके दिन अधिक नहीं हैं। वे उनके साथ अधिक दिन रह भी नहीं सकते थे, अन्यथा भेद खुलने और उनके गिरफ्तार होने का भय था। उनके पास इतना धन भी नहीं था कि उनकी मृत्यु के पश्चात् वे उनका संस्कार कर सकते। उन दोनों ने यही तय किया कि इन्हें किसी अन्य नाम से अस्पताल में भरती करा दिया जाए। उनका विचार था कि यदि ईश्वर की कृपा हुई तो स्वास्थ्य में कुछ सुधार भी हो सकता है।

अपने इस निश्चय के अनुसार उन दोनों ने गेंदालाल दीक्षित को सरकारी अस्पताल में भरती करा दिया और वे दोनों अपने-अपने स्थान पर चले गए।

कुछ दिन पश्चात् जब वे उन्हें देखने फिर दिल्ली के उस अस्पताल में गए तो उन्हें बताया गया कि उनके द्वारा भरती कराए गए मरीज की मृत्यु २१ दिसंबर, १९२० को दिन के दो बजे हो गई।

भारत की आजादी के लिए समर्पित एक महान् क्रांतिकारी दुनिया से इस प्रकार उठ गया कि कोई यह जान भी नहीं सका कि वह कौन था। न कोई उसके लिए आँसू बहा सका और न एक आह भी भर सका। भारत की आजादी के लिए हुए ऐसे मौन बलिदानों की संख्या कम नहीं है।

□

★ गोपीमोहन साहा

सहज ही कल्पना की जा सकती है कि कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की अदालत में अभियुक्त के कठघरे में खड़े एक नौजवान क्रांतिकारी

गोपीमोहन साहा के दिल पर क्या गुजर रही होगी, जब अपने निकट ही वह पुलिस के अत्याचारी अफसर मि. टेगार्ट को देख रहा था। वह टेगार्ट की ही हत्या करना चाहता था, पर उसके धोखे में उसने एक दूसरे अंग्रेज की हत्या कर दी। अदालत में उसे देखते हुए उसकी इच्छा हो रही थी कि कहीं से उसे एक रिवॉल्वर मिल जाए और वह दनादन करके उसकी गोलियाँ टेगार्ट के सीने में उतार दे। वह गोलियाँ तो उसके सीने में नहीं उतार सका, पर अपनी भावनाओं को उसने टेगार्ट तक अवश्य पहुँचा दिया। बयान देते हुए वह बोल उठा—
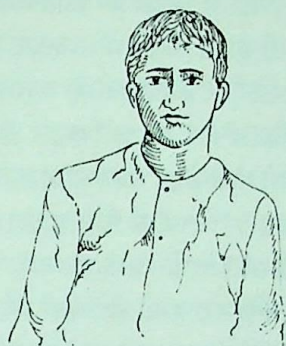
गोपीमोहन साहा

''मैं तो टेगार्ट साहब को मारने का प्रयत्न कर रहा था। मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता भी हूँ; पर उस दिन पहचानने में भूल हो गई और मैंने एक अन्य निरपराध अंग्रेज को मार दिया। उसे मारने का मुझे खेद है। अपने देश के दुश्मन को मारने के प्रयास में मैं असफल रहा हूँ और ईश्वर की कृपा से मि. टेगार्ट को जीवनदान मिला है। यदि देश में एक भी देशभक्त नौजवान शेष है तो वह मेरे अधूरे कार्य को अवश्य पूरा करेगा और वह ऐसी गलती नहीं करेगा जैसी मैंने की है।''

जिस समय गोपीमोहन साहा यह बयान दे रहा था, वह मि. टेगार्ट की ओर घृणा से देखता भी जाता था और उसका नाम आने पर उसकी तरफ संकेत भी करता था।

गोपीमोहन साहा ने मि. टेगार्ट को मारने का प्रयास इसलिए किया था कि वह एक बदनाम अफसर था और बुरी तरह से क्रांतिकारियों का दमन कर रहा था। उन दिनों बंगाल में किसीका भी सम्मान सुरक्षित नहीं था। बंगाल सरकार ने एक विशेष ऑर्डिनेंस एक्ट पास किया था, जिसके अंतर्गत किसीकी भी गिरफ्तारी की जा सकती थी और अनिश्चितकाल के लिए जेल में डाला जा सकता था। गिरफ्तारी और फैसले के बीच की अवधि में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इतनी यातनाएँ दी जातीं कि वह स्वत: मृत्यु की कामना करने लगता था। कुछ कमजोर लोग यातनाओं से बचने के लिए सरकारी गवाह बनने और निर्दोष व्यक्तियों को फँसाने में ही अपनी खैर समझते थे। इस ऑर्डिनेंस एक्ट का लाभ उठाकर टेगार्ट मनमाने अत्याचार कर रहा था।

टेगार्ट ने बंगाल के क्रांतिकारी दल को लगभग कुचल ही दिया था। प्रमुख क्रांतिकारी या तो फाँसी पर लटकाए जा चुके थे या जेलों में पड़े सड़ रहे थे। उनमें से कुछ लोग तो कालापानी के कारावास की यातनाओं को भोग रहे थे। ऐसे समय में जबकि बंगाल के क्रांतिकारी क्षेत्र में रिक्तता पैदा हो गई थी, एक युवक क्रांतिकारी गोपीमोहन साहा सोचा करता था कि क्रांतिकारियों पर किए गए अत्याचारों का बदला वह टेगार्ट से कैसे चुकाए। टेगार्ट के चिंतन में उसे रातों में नींद भी नहीं आती थी और कभी-कभी सो जाने पर वह नींद में 'टेगार्ट-टेगार्ट' चिल्लाने लगता था। दिन में जब कभी वह कहीं जा रहा होता था तो खोया-खोया-सा चलता था और किसीके द्वारा पुकारे जाने पर चौंक उठता था। हमेशा ही वह टेगार्ट से बदला लेने के खयालों में डूबा रहता था।

गोपीमोहन साहा ने टेगार्ट को मारने का निश्चय कर लिया। वह निशाना साधने का अभ्यास करने लगा और निकट से देखकर वह उसे अच्छी तरह पहचानने भी लगा। वह हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया और मौके की तलाश में रहने लगा कि कब वह हाथ लगे और वह उसे यमपुरी पहुँचाए।

वह १२ जनवरी, १९२४ की सुबह थी और सात बजे का समय। कलकत्ता के बाजारों में इतना कुहासा था कि पास पहुँचकर ही किसी व्यक्ति को पहचाना जा सकता था। चौरंगी रोड और पार्क स्ट्रीट के चौराहे के निकट एक स्थान पर गोपीमोहन साहा ने एक अंग्रेज को देखा। उसे देखकर गोपीमोहन साहा को विश्वास हो गया कि यह टेगार्ट के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। उसने लगभग दस फीट की दूरी से उस अंग्रेज पर एक गोली दागी। उसका यह पहला निशाना चूक गया। इस बीच में उस अंग्रेज ने गोली चलानेवाले को मुड़कर देखा और उसकी तरफ लपका। इसी बीच गोपीमोहन साहा ने दूसरी गोली छोड़ दी, जो ठीक निशाने पर लगी और वह अंग्रेज जमीन पर गिर पड़ा। उसके बाद भी गोपीमोहन साहा ने तीन गोलियाँ इसलिए और छोड़ीं कि उसके मरने में कहीं कोई संदेह न रह जाए।

अब गोपीमोहन साहा घटनास्थल से मुड़ा और बिना घबराहट के इतमीनान के साथ एक ओर चल दिया। एक इमारत का चक्कर लगाकर वह नुक्कड़ पर पहुँचा, जहाँ एक टैक्सी खड़ी हुई थी। उसने टैक्सी ड्राइवर से उसे ले चलने के लिए कहा; पर टैक्सी ड्राइवर ने उसे ले जाने से मना कर दिया। गोपीमोहन ने उसपर भी एक गोली छोड़ी; पर ड्राइवर बच गया। गोली उसके शरीर में उस स्थान पर लगी, जहाँ वह अपनी कमर पर एक चौड़ा पट्टा बाँधे हुआ था। टैक्सी ड्राइवर पर गोली छोड़कर गोपीमोहन वहाँ से भाग खड़ा हुआ। अब लोगों की भीड़ उसका पीछा करने लगी। उसका पीछा करनेवाला एक व्यक्ति उसके बिलकुल

निकट पहुँच गया और पकड़ने के लिए उसने हाथ बढ़ाया ही था कि गोपीमोहन ने गोली मारकर उसे जख्मी कर दिया और वह वहीं रुक गया। इस व्यक्ति से बचने के पश्चात् गोपीमोहन भागते-भागते एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ एक बग्घी खड़ी हुई थी। उसने बग्घी के फुटबोर्ड पर कदम रखा और चालक से उसे चलाने के लिए कहा। चालक ने उसका आदेश मानने से इनकार कर दिया। ठीक इसी समय भागता हुआ एक व्यक्ति आया और वह गोपीमोहन के साथ गुत्थमगुत्था हो गया। एक सिपाही तथा कुछ अन्य लोग आ गए और सबने मिलकर गोपीमोहन पर काबू पा लिया। भूमि पर गिर पड़ने के कारण उसके माथे पर काफी चोट लग गई। जिस समय गोपीमोहन को पकड़ा गया, उसके पास एक पिस्तौल, एक रिवॉल्वर और पैंतालीस जीवित कारतूस पाए गए। पकड़े जाने पर ही गोपीमोहन साहा को यह ज्ञात हो सका कि उसके द्वारा टेगार्ट नहीं, एक व्यापारिक कंपनी का अंग्रेज प्रतिनिधि ई.डे. मारा गया। उसकी शक्ल मि. टेगार्ट से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती थी, इसीलिए यह धोखा हुआ। कुछ भी हो, एक निरपराध व्यक्ति के मारे जाने का गोपीमोहन साहा को बहुत दु:ख था और इस बात का भी बहुत ही खेद था कि देश का दुश्मन उसके हाथों जिंदा बच गया। तभी तो अपना बयान समाप्त करते हुए उसने अदालत में कहा था—

''मि. टेगार्ट सोच रहे होंगे कि वे सुरक्षित हैं; पर बात ऐसी नहीं है। यदि उसको समाप्त करने का काम मैं पूरा नहीं कर सका तो क्या, मेरे दूसरे भाई वह काम पूरा करेंगे।''

२१ जनवरी, १९२४ को जब गोपीमोहन साहा पर अदालत में हत्या का अभियोग लगाया गया तो उसने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—

''दो-चार दफाएँ और लगा दीजिए, कंजूसी क्यों करते हैं?''

हाई कोर्ट सेशन में गोपीमोहन साहा का मामला १३ फरवरी, १९२४ को पहुँचा। वैसे तो वह मामले में हमेशा ही उदासीन रहा और अपनी ओर से कोई सफाई देने से भी उसने इनकार किया, लेकिन एक दिन भावुक होकर वह कह उठा—

''यह दिन मेरे लिए बहुत शुभ है। माँ मेरा आह्वान कर रही है, जिससे मैं उसकी गोदी में सिर रखकर हमेशा के लिए सो जाऊँ। मुझे जाना ही होगा। मैंने जो कुछ किया है, वह माँ की इच्छा से ही किया है।''

१६ फरवरी, १९२४ को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। गोपीमोहन साहा को फाँसी का दंड दिया गया था। फैसला सुनकर उसने कहा—

''मेरी कामना है कि मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद भारत के प्रत्येक घर में

आजादी के बीज बोए।

"जब तक जलियाँवाला बाग और चाँदपुर जैसे कांडों द्वारा अंग्रेजों का दमनचक्र चलता रहेगा, उस समय तक हमारा संघर्ष भी चलता रहेगा और एक दिन आएगा, जब ब्रिटिश हुकूमत को अपने किए का फल मिलेगा।"

गोपीमोहन साहा को फाँसी १ मार्च, १९२४ को दी गई। उस समय तक उसका वजन पाँच पौंड बढ़ गया था। वह जेल का खाना खूब रुचि के साथ खाता था और मस्ती की नींद सोता था। वह प्रसन्नता के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया। उसने कुछ प्रार्थना की और बड़ी प्रसन्न मुद्रा में एक फंदे पर झूल गया।

गोपीमोहन साहा बहुत दुबला-पतला और भावुक लड़का था। वह भारत की आजादी के यज्ञ में अपने किशोर जीवन की पवित्र आहुति दे गया।

□

★ चित्तप्रिय ★ ज्योतिषपाल
★ ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन)
★ नीरेंद्र ★ मनोरंजन

वह एक क्रांतिकारी था—घोर क्रांतिकारी। उसके मन के अंदर जाने कितने-कितने ज्वालामुखियों का विस्फोट होता रहता था। उसका तन सुंदर और बलिष्ठ था। उसकी कसरती देह इतनी सुदृढ़ और सुडौल थी जैसे इस्पात की ढली हुई हो। उसको घोड़े की सवारी का भी शौक था। उसके पास एक सुंदर घोड़ा था, जिसपर सवारी करने में उसे विशेष आनंद आता था। वह घोड़ा देखने में भी सुंदर था और उसका नाम भी 'सुंदर' था। उस क्रांतिकारी में शारीरिक बल इतना था कि कोई उसकी थाह नहीं ले सका था। उसे 'बलभीम' या 'भारत का सैंडो' कहकर पुकारा जाता था। उस क्रांतिकारी का नाम था ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी। उसे 'बाघा जतीन' भी कहा जाता था।

ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी 'बाघा जतीन' के नाम से कैसे मशहूर हुआ, इसके पीछे उसके जीवन की एक घटना है—

ज्योतींद्रनाथ का जन्म ६ दिसंबर सन् १८७९ को कृष्णनगर के पास 'कया' नामक ग्राम में हुआ था। जब ज्योतींद्रनाथ बड़ा हुआ तो एक दिन उसने सुना कि कया ग्राम के आसपास एक भयानक बाघ ने उपद्रव मचा रखा है। वह बाघ लोगों के जानवरों को उठाकर ले जाता था और उन्हें मारकर खा जाता था। लोगों को भय हुआ कि यदि बाघ को नहीं मारा गया तो वह जानवर न मिलने की दशा में मनुष्यों को उठाकर ले जाना प्रारंभ कर देगा और इस प्रकार वह नरभक्षी बनकर इलाके के लिए आतंक बन जाएगा। लोगों ने उसे मार डालने का निश्चय किया।

ज्योतींद्रनाथ के एक ममेरे भाई के पास बंदूक थी। वे उसे ले आए और बाघ के शिकार के लिए जाने का कार्यक्रम निश्चित हो गया। ज्योतींद्रनाथ बंदूक चलाना

चित्तप्रिय

ज्योतिषपाल

ज्योतींद्रनाथ मुखजी (बाघा जतीन)

मनोरंजन

नीरेंद्र

तो जानता था, पर उसके पास बंदूक नहीं थी। जिस बंदूक से उसने निशाना साधना सीखा था, वह उसके नानाजी की थी और यदि वह नानाजी से बंदूक माँगता तो वे उसे बाघ के शिकार के लिए जाने से मना कर देते। ज्योतींद्रनाथ हाथ में एक कटार लेकर ही बाघ के शिकारं को चल दिया। सब लोगों ने उसे टोका; पर वह किसीकी नहीं माना।

बाघ के शिकार के लिए गाँव की टोली दोपहर को निकली। जो हाँका करनेवाले लोग थे, वे बाघ को झाड़ी से बाहर निकालने के लिए शंख, घड़ियाल और खाली कनस्तर एवं थालियाँ बजा रहे थे। किसीको यह पता नहीं था कि बाघ किधर है। ज्योतींद्रनाथ और उसका ममेरा भाई, दोनों ही एक झाड़ी के निकट भूमि पर खड़े थे। ज्योतींद्रनाथ के हाथ में कटार और उसके भाई के हाथ में बंदूक थी। उन दोनों का दुर्भाग्य यह हुआ कि जिस झाड़ी के निकट वे खड़े थे, उसीके अंदर वह भयंकर और विशाल बाघ छिपा हुआ था। जब उसने अपने साम्राज्य में शोरगुल सुना तो उसे क्रोध आया और वह अपनी झाड़ी के बाहर निकला। अपनी झाड़ी के निकट ही जब उसने दो व्यक्तियों को खड़ा देखा तो वह और भी अधिक क्रोधित हुआ। उस समय ज्योतींद्रनाथ का मुख बाघ की तरफ था और उसके भाई का दूसरी तरफ। बाघ तथा ज्योतींद्रनाथ की आँखें मिलीं और बाघ ने ज्योतींद्रनाथ पर झपट्टा मार दिया। उतनी ही फुरती से ज्योतींद्रनाथ ने अपना बायाँ हाथ बाघ की गरदन में डाल दिया और वह अपने सीधे हाथ से कटार के वार बाघ की गरदन तथा उसके सिर पर करने लगा। यह विकट दृश्य देखकर हाँका करनेवाले भाग खड़े हुए। उसका भाई भी असहाय हो गया; क्योंकि वह गोली चलाता तो पता नहीं किसको लगती। वह एक रैफरी की भाँति नर-बाघ के युद्ध को देखता रहा। ज्योतींद्रनाथ और बाघ दोनों एक-दूसरे से गुँथे हुए एक-दूसरे पर वार कर रहे थे। बाघ अपने पिछले पैरों पर खड़ा हुआ अपने दोनों पंजों के नाखून ज्योतींद्रनाथ की पीठ एवं उसके मस्तक में चुभा रहा था और ज्योतींद्रनाथ एक हाथ से बाघ की गरदन दबोचे हुए दूसरे हाथ से कटार के भरपूर हाथ उसकी गरदन पर मार रहा था। कुछ देर बाद दोनों ही शिथिल पड़ने लगे और एक साथ दोनों ही भूमि पर गिर पड़े। कुछ देर तक जब वे दोनों ही भूमि से नहीं उठे तो इधर-उधर छिपे हुए लोग अब उनके पास पहुँच गए। उन लोगों ने देखा कि बाघ मर चुका था और ज्योतींद्रनाथ बेहोश पड़ा था। उसकी देह में प्राण थे। झपटकर लोग ज्योतींद्रनाथ को गाँव के डॉक्टर के पास ले गए और प्राथमिक उपचार कराने के पश्चात् उसे कलकत्ता पहुँचाया गया।

कलकत्ता के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. सुरेशप्रसाद सर्वाधिकारी ने ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी का इलाज किया। उन्होंने देखा कि उसके शरीर पर बाघ के पंजों से तीन सौ

से ऊपर घाव थे। डॉ. सर्वाधिकारी इस केस में इतनी अधिक रुचि ले रहे थे कि वे दिन में दो बार ज्योतींद्रनाथ के घर जाकर स्वयं अपने हाथों से उसके शरीर में इंजेक्शन लगाते थे और उसकी मरहम-पट्टी करते थे। किसीको भी ज्योतींद्रनाथ के बचने की आशा नहीं थी; पर ज्योतींद्रनाथ कहता था कि मैं मर नहीं सकता। उसे बचाने के लिए डॉ. सर्वाधिकारी अपनी सारी योग्यता लगा रहे थे और बचने के लिए ज्योतींद्रनाथ अपना समस्त आत्मबल लगा रहा था।

अंततोगत्वा ज्योतींद्रनाथ बच गया। उसे छह महीने तक बिस्तर पर पड़े रहना पड़ा और उसके पश्चात् वह बैसाखी के सहारे चलने लगा। कुछ समय के अभ्यास से वह बिना बैसाखी के सहारे पहले की तरह चलने और दौड़ने-भागने लगा। डॉक्टर ने तो उसके जख्मी पैरों को काट डालने का विचार किया था; पर वह उन्हीं पैरों से दौड़ने-भागने लगा।

यही वह घटना थी जिसके कारण ज्योतींद्रनाथ 'बाघा जतीन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस घटना के बाद जाने कितने-कितने लोग उसपर अपार श्रद्धा रखने लगे।

अभी ज्योतींद्रनाथ के बचपन की कहानी शेष है। ज्योतींद्रनाथ के पिता का नाम उमेशचंद्र और माता का नाम सरस्वती देवी था। जिस समय ज्योतींद्र की अवस्था पाँच वर्ष की ही थी कि उसके पिता का देहांत हो गया। पिता के देहांत के पश्चात् ज्योतींद्र का पालन-पोषण उसके ननिहाल में हुआ। उसकी माता विदुषी थीं। वे ज्योतींद्र को रामायण एवं महाभारत की कथाएँ सुना-सुनाकर उसे वीर बनने की प्रेरणा देती थीं और उसे जनसेवा तथा सत्य कथन का महत्त्व समझाती थीं।

प्रारंभिक पढ़ाई ज्योतींद्र ने गाँव में ही की, पर मैट्रिक की पढ़ाई के लिए उसे कृष्णनगर जाना पड़ा। जिस विद्यालय में ज्योतींद्र पढ़ रहा था, उसमें व्यायाम की व्यवस्था नहीं थी। उसे व्यायाम करने का बेहद शौक था। वह बिना व्यायाम किए रह नहीं सकता था। वहाँ से कुछ दूर पर एक कॉलेज था, जिसमें व्यायामकक्ष भी था। कठिनाई यह थी कि उस कॉलेज में बाहर के विद्यार्थियों को व्यायाम करने की सुविधा नहीं दी जाती थी। उस कॉलेज के अतिरिक्त किसी भी बाहरी व्यक्ति को अभी तक वहाँ व्यायाम करने की सुविधा नहीं दी गई थी। बहुत साहस करके ज्योतींद्र कॉलेज के अंग्रेज प्रिंसिपल के पास पहुँच गया और अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में उसे समझाया कि उसे व्यायाम करने का बेहद शौक है और वह उनके कॉलेज में व्यायाम प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा चाहता है। उसकी उत्कट लगन देखकर प्रिंसिपल महोदय ने कह दिया कि यदि हमारे व्यायाम शिक्षक को आपत्ति न हो तो मेरी ओर से अनुमति है। उस कॉलेज के व्यायाम शिक्षक सुरेंद्रनाथ

वंद्योपाध्याय थे। उन्होंने सहर्ष ज्योतींद्र को व्यायाम प्रशिक्षण देना स्वीकार कर लिया। थोड़े ही समय में ज्योतींद्र अच्छा व्यायाम-विशारद बन गया। वह कॉलेज के बड़े-बड़े लड़कों को भी कुश्ती में पछाड़ देता था। ज्योतींद्र में केवल शारीरिक बल ही नहीं था, वह मानसिक रूप से भी आगे बढ़ा हुआ था। वह एक अच्छा विद्यार्थी था और सभी अध्यापक उसे बहुत चाहते थे। ज्योतींद्र ने अपने बल का उपयोग हमेशा ही अच्छे कार्यों के लिए और निर्बलों की रक्षा के लिए किया।

जिस समय ज्योतींद्र कॉलेज की व्यायामशाला में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा था, उसे अपने बल की परीक्षा का एक अवसर शीघ्र ही मिल गया। एक दिन वह बाजार में एक दुकान पर खड़ा हुआ अपने लिए पेंसिल खरीद रहा था कि बाजार में घबराहट-मिश्रित कोलाहल सुनाई दिया। बात यह थी कि कृष्णनगर के एक वकील वाराणसीराय का घोड़ा रस्सी तुड़ाकर भाग खड़ा हुआ था और वह बाजार में उपद्रव मचाता हुआ इधर से उधर भाग रहा था। कुछ लोग उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ रहे थे, इस कारण वह घोड़ा और भी अधिक बिदक रहा था। उसने कई लोगों को घायल कर दिया था। जब वह घोड़ा उस दुकान के सामने से निकला, जहाँ ज्योतींद्र खड़ा था, तो ज्योतींद्र से न रहा गया। उछलकर उसने घोड़े की गरदन के बाल पकड़ लिये और उसकी गरदन से लटक गया। उसने घोड़े को आगे नहीं बढ़ने दिया। इसी बीच साईस लोग आ गए और उन्होंने घोड़े को अपने अधिकार में ले लिया। अपने बल के इस विक्रम से ज्योतींद्र को दुआएँ भी मिलीं और झिड़कियाँ भी। दुआएँ उन लोगों ने दीं, जो कुचलने से बच गए थे। झिड़कियाँ भी उसे शुभचिंतकों ने यह कहकर दीं कि अपनी जान को जोखिम में डालने की क्या जरूरत थी! जो भी हो, लोगों पर उसके बल-विक्रम की धाक जम गई।

ज्योतींद्र अपने बल का उपयोग किसीको सताने के लिए नहीं, सहायता करने के लिए ही करता था। एक दिन वह एक नदी के किनारे जा रहा था कि उसने एक बुढ़िया को घास के गट्ठर के पास खड़ा देखा। वह उधर से निकलनेवाले सभी लोगों से प्रार्थना कर रही थी कि वह गट्ठर कोई उसके सिर पर रख दे। सभी लोग उसकी बात को अनसुनी करके चले जा रहे थे। ज्योतींद्र जब उधर से निकला तो बुढ़िया ने उससे भी वही प्रार्थना की। ज्योतींद्र ने घास का वह गट्ठर उठाकर बुढ़िया के सिर पर रख दिया। वह गट्ठर इतना भारी था कि बुढ़िया उसका बोझ नहीं सँभाल सकी और वह उसके सिर से गिर गया। ज्योतींद्र ने उस बुढ़िया से कहा—

''माँ! तुमने इतना बड़ा गट्ठर क्यों बाँध लिया, जो न तो तुमसे उठाते बनता है और न ले जाते बनता है। चलो, मैं तुम्हारा गट्ठर तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ।''

यह कहकर ज्योतींद्र वह गट्ठर अपने सिर पर रखकर बुढ़िया के पीछे-

पीछे चल दिया और वह गट्ठर उसके घर तक छोड़कर आया।

ज्योतींद्र पर अपनी माँ की शिक्षा का बहुत अधिक प्रभाव था। उसकी माँ ने उसे अच्छे कार्य करने और सच बोलने की शिक्षा दी थी। एक दिन ज्योतींद्र अपने विद्यालय के पास गेंद खेल रहा था कि उसके प्रहार से गेंद विद्यालय भवन की खिड़की में जा लगी और उसका काँच टूट गया। एक अध्यापकजी बाहर आए और उन्होंने सभी लड़कों से पूछा कि काँच किसने तोड़ा है। किसी लड़के ने नहीं बताया कि काँच किसने तोड़ा है। प्रधानाध्यापक तक बात पहुँची और उन्होंने सभी लड़कों पर एक-एक रुपया जुर्माना कर दिया। अपने अपराध के कारण साथियों पर जुर्माना हो, ज्योतींद्र यह सहन नहीं कर सका और प्रधानाध्यापक के समक्ष उपस्थित होकर उसने स्वीकार किया कि काँच मुझसे टूटा है। प्रधानाध्यापक ने उसकी सत्यवादिता से प्रभावित होकर सभी का जुर्माना माफ कर दिया और उसे यह समझाकर बिदा कर दिया कि ऐसी जगह मत खेला करो, जहाँ कुछ हानि हो जाए।

लगभग इन्हीं दिनों की बात है कि ज्योतींद्रनाथ ने बाघ के साथ युद्ध किया और उसे मार डाला। बाघ युद्ध में वह बहुत जख्मी हुआ था और उसकी पढ़ाई एक वर्ष पिछड़ गई। उस समय वह एफ.ए. (इंटरमीडिएट) में पढ़ रहा था। पढ़ाई के साथ-साथ वह शीघ्र-लिपि लेखन तथा टंकण का प्रशिक्षण भी लेने लगा और इस कला में उसने कुशलता प्राप्त कर ली।

शीघ्र-लिपि लेखन और टंकण में कुशलता प्राप्त कर लेने का परिणाम यह निकला कि ज्योतींद्रनाथ को अंग्रेजों की एक कंपनी में पचास रुपए माहवार की नौकरी मिल गई। महीने-भर काम करने के पश्चात् जब वे अपने पहले वेतन के पचास रुपए लेकर लौट रहे थे तो रास्ते में अपने एक मित्र के साथ उनकी भेंट हो गई। मित्र ने बताया कि उसकी माँ बहुत दिनों से बीमार है और उपचार के लिए धन के अभाव में उसकी दशा बिगड़ती जा रही है। ज्योतींद्रनाथ ने अपने पहले वेतन के पूरे पचास रुपए माँ के इलाज के लिए अपने मित्र के हाथ पर रख दिए।

कुछ दिनों बाद ज्योतींद्रनाथ शासकीय सेवा में ले लिये गए और वे एक आई.सी.एस. अफसर विलर के अधीन शीघ्र-लिपिक का कार्य करने लगे। विलर बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था। वह राजस्व विभाग में सदस्य भी था और बड़े-बड़े राजा-महाराजा उसके आगे-पीछे दुम हिलाते फिरते थे।

विलर महोदय गरमी के दिन दार्जिलिंग में बिताया करते थे। ज्योतींद्रनाथ को भी उसके साथ दार्जिलिंग में रहना पड़ता था। एक दिन ज्योतींद्रनाथ जब कलकत्ता से दार्जिलिंग जा रहे थे तो सिलीगुड़ी स्टेशन पर उनके डिब्बे में एक बच्चा पानी के लिए रोने लगा। ट्रेन ने सीटी दे दी थी, इस कारण बच्चे का पिता

पानी लाने के लिए प्लेटफॉर्म पर जाने के लिए तैयार नहीं था। ज्योतींद्रनाथ से रहा नहीं गया। वे बरतन लेकर प्लेटफॉर्म पर उतर गए और पानी भरकर लाने लगे। वे अपने डिब्बे के पास पहुँचे ही थे कि फौज के दो अंग्रेज अफसरों से उनकी भिड़ंत हो गई और लोटे का थोड़ा पानी उन अफसरों के कपड़ों पर गिर गया। उन्होंने ज्योतींद्रनाथ को बुरा-भला कहा और उसे धक्का भी दे दिया। ज्योतींद्रनाथ ने पहला काम यह किया कि पानी का लोटा खिड़की में से उस बच्चे के पिता को दे दिया और फिर अपने धक्कों का बदला लेने के लिए उन फौजी अफसरों के पास जा पहुँचा। उन अफसरों में एक था कैप्टेन मर्फी और दूसरा था लेफ्टिनेंट समरविल। ज्योतींद्रनाथ ने उन दोनों के पास जाकर कहा—

"अब कहिए, आप लोगों ने मुझको धक्का क्यों दिया था?"

फौज के अफसर और वे भी अंग्रेज जाति के, भला वे किसी हिंदुस्तानी की गुस्ताखी कैसे बरदाश्त करते! वे ज्योतींद्रनाथ पर हमला कर बैठे। ज्योतींद्रनाथ भी यही चाहता था। वह भी उनपर पिल पड़ा। वह उन्हें लातों-घूँसों से मारने लगा और उठा-उठाकर उन्हें भूमि पर पटकने लगा। मार खा-खाकर जब वे लोग पस्त हो गए तो अदालत में देख लेने की धमकी देते हुए वहाँ से खिसक गए। ज्योतींद्रनाथ के लिए यह दुष्परिणाम निकला कि ट्रेन निकल गई और वह सिलीगुड़ी स्टेशन पर रह गया।

फौज के अंग्रेज अफसर उस मामले को अदालत तक ले गए। अदालत का जज भी एक अंग्रेज था। उसने दोनों फौजी अफसरों को समझाया—

"मेरा कहना मानो और तुम लोग मुकदमे को वापस ले लो। एक मामूली से हिंदुस्तानी नागरिक ने तुम दो अंग्रेज फौजी अफसरों की पिटाई की, क्या इस बात से तुम्हारी और अंग्रेज जाति की बदनामी नहीं होगी?"

बात फौजी अफसरों की समझ में आ गई और उन्होंने मुकदमा वापस ले लिया। फिर भी न्यायाधीश महोदय ने ज्योतींद्रनाथ को चेतावनी दी—

"भविष्य में अपने व्यवहार को संयत रखना और किसीके साथ झगड़ा मत करना।"

ज्योतींद्रनाथ का उत्तर था—

"मैं ऐसा कोई आश्वासन नहीं दे सकता। यदि कोई मुझपर आक्रमण करेगा तो मैं आत्मरक्षा के सभी उपाय अपनाऊँगा। यदि आवश्यकता हुई तो मैं अपने और देशवासियों के सम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेजों के साथ लड़ाई भी मोल लूँगा।" ज्योतींद्रनाथ ने अपने कथन को सिद्ध करके दिखा दिया।

एक बार वह ट्रेन में सफर कर रहा था। उन दिनों रेल के एक डिब्बे को

लकड़ी की दीवार से पृथक् करने की प्रथा नहीं थी। लकड़ी की दीवार के स्थान पर लोहे के सीखचों से एक डिब्बे को दो या अधिक भागों में विभक्त किया जाता था। यात्रीगण एक भाग से दूसरे भाग के अंदर प्रवेश नहीं कर पाते थे। उस तरफ क्या हो रहा है, वे यह देख अवश्य सकते थे। रेल के जिस डिब्बे में ज्योतींद्रनाथ बैठा हुआ था, उसके दूसरे भाग में एक बंगाली वृद्ध अपनी जवान लड़की के साथ बैठा हुआ था। उस डिब्बे में आठ-दस अंग्रेज लोग भी बैठे हुए थे। स्थिति का लाभ उठाकर वे लड़की के साथ छेड़छाड़ करके उसे तंग करने लगे। प्रतिरोध करने पर पिता को उन लोगों ने मारा। ज्योतींद्रनाथ उस लड़की और उसके वृद्ध पिता के साथ अंग्रेजों का वह दुर्व्यवहार सहन नहीं कर सका। वह इतनी प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता था कि गाड़ी रुके और डिब्बे के दूसरे भाग में पहुँचे। उन दिनों गाड़ी रोकने के लिए जंजीर की व्यवस्था भी नहीं होती थी। ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने शक्ति लगाकर लोहे की दो छड़ें बाहर खींच डालीं और इस प्रकार से बने तंग रास्ते द्वारा वह डिब्बे के दूसरे भाग में प्रवेश कर गया, जहाँ अंग्रेज लोग उत्पात मचा रहे थे। उस अकेले ने उन आठ-दस अंग्रेजों की बुरी तरह पिटाई की। जो कोई उसकी लात या घूँसे के प्रहार से गिर पड़ता था, वह उठने का नाम नहीं लेता था। अगला स्टेशन आने तक वह उनकी पिटाई करता रहा। ज्योतींद्रनाथ की शिकायत न करने में ही उन्होंने अपनी खैर समझी। भारतीय महिलाओं के सम्मान की रक्षार्थ उसने अनेक बार कई अंग्रेजों की पिटाई की।

अपने इस प्रकार के शारीरिक बल के पीछे ज्योतींद्रनाथ का अपना आत्मबल रहता था। आत्मबल का अभ्यास उसने अच्छे-अच्छे महापुरुषों के साथ रहकर प्राप्त किया था। वह महान् क्रांतिकारी अरविंद घोष और यतींद्रनाथ बनर्जी (बाद में स्वामी निरालंब) के संपर्क में भी आया और उनसे देशसेवा का अग्नि-मंत्र प्राप्त किया। स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की सहधर्मिणी माँ शारदा के चरणों में बैठकर ज्योतींद्रनाथ ने अध्यात्म और मानव सेवा के पाठ पढ़े। स्वामी विवेकानंद की शिष्या भगिनी निवेदिता का सान्निध्य भी उसने प्राप्त किया और उनके साथ मिलकर उसने बंगाल के प्लेग-पीड़ितों की सेवा की। कुश्ती लड़ने की शिक्षा उसने अपने समय के बंगाल के प्रसिद्ध पहलवान् क्षेत्रचरण गोहो से प्राप्त की।

धीरे-धीरे ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी में राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और वह कलकत्ता में रहते हुए क्रांतिकारी दल के संपर्क में भी आया। बंगाल में उस समय 'अनुशीलन समिति' क्रांति के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रही थी। ज्योतींद्रनाथ अनुशीलन समिति के सदस्यों के संपर्क में तो आया, पर वह उसका सदस्य नहीं बना। नौकरी से बचे हुए समय में वह पृथक् रूप से युवकों के संगठन का कार्य

करने लगा। यद्यपि उसका परिचय मानिकतल्ला भवन के क्रांतिकारियों से था; पर उनके साथ काम न करके उसने अनुशीलन समिति के समान एक अन्य समिति का गठन किया, जिसका नाम 'बांधव समिति' रखा। इस समिति के सदस्य तेजवान नौजवान थे, जो शहरों एवं गाँवों में सेवा कार्य के माध्यम से जन-जागरण का कार्य करते थे। सचमुच ही ज्योतींद्रनाथ के दल ने क्रांतिकारी आंदोलन के अंतर्गत बहुत सराहनीय सेवाएँ कीं; क्योंकि मानिकतल्ला भवन के क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियों के पश्चात् एक रिक्तता उत्पन्न हो गई थी।

कलकत्ता के राजनीतिक वातावरण में सरगर्मी उत्पन्न करने के लिए ज्योतींद्रनाथ के क्रांतिकारी दल ने एक बड़ा कांड कर डाला। उन्होंने खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस मि. शम्सुल आलम की २४ जनवरी, १९१० को हत्या कर दी। वैसे तो शम्सुल आलम क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियों और उनको यातनाएँ देने के लिए कुख्यात था, पर इस समय उसको मौत के घाट उतारने का तात्कालिक कारण कुछ और ही था। एक मामले की जाँच-पड़ताल करने जब वह एक बंगाली परिवार में गया तो उसने परिवार की एक महिला के साथ बहुत अभद्र व्यवहार किया। भला ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी का क्रांति दल इसे कैसे सहन कर सकता था। इस अपराध के उपलक्ष्य में दंडस्वरूप शम्सुल आलम को मौत की सजा दी गई।

बंगाल की सरकार शम्सुल आलम की हत्या से बहुत भयभीत हो गई। क्रांतिकारी लोग पुलिस इंस्पेक्टर नंदलाल बनर्जी और प्रॉसीक्यूटर आशुतोष विश्वास को पहले ही मौत के घाट उतार चुके थे। सरकार ने सोचा कि यदि क्रांतिकारियों को कुचला नहीं गया तो आएदिन ही सरकारी अफसरों की हत्याएँ होती रहेंगी। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट शम्सुल आलम की हत्या ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी की योजना और उसके निर्देशों के अनुसार ही हुई थी; पर वह स्वयं उस हत्याकांड में सम्मिलित नहीं था। इतना होने पर भी पुलिस ने उसे २७ जनवरी, १९१० को गिरफ्तार कर लिया। उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य प्रमाणित नहीं हो सका, इस कारण पुलिस को उसे छोड़ना पड़ा; पर शीघ्र ही पुलिस ने उसे पुनः गिरफ्तार करके एक साथ उसपर कई मामले चला दिए। उसके विरुद्ध कोई भी मामला सिद्ध नहीं हो सका और अंततोगत्वा वह मुक्त कर दिया गया। सरकार ने इतना बदला तो उससे निकाल ही लिया कि उसे सरकारी नौकरी से पृथक् कर दिया गया था।

नौकरी छूट जाने के पश्चात् ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने ठेकेदारी का काम प्रारंभ कर दिया और उसका काम अच्छा चल निकला। इस काम को करते हुए भी वह क्रांतिकारी संगठन के लिए बहुत समय देता था। उसके साथ अब नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य, हरिकुमार चक्रवर्ती, नलिनीकांत और अतुलकृष्ण घोष जैसे क्रांतिकारी

कार्य कर रहे थे।

इसी समय प्रकृति ने भी क्रांतिकारियों का साथ दिया। बंगाल की नदियों में बाढ़ आ जाने के कारण कई क्रांतिकारी दल सेवा कार्यों के लिए वहाँ पहुँचे। उन लोगों के मन में यह बात आई कि अलग-अलग पार्टियों में काम करने के स्थान पर हम सब लोग मिलकर देश की आजादी की दिशा में कोई बड़ा काम क्यों न करें? प्रारंभिक असफलताओं के पश्चात् आखिरकार कई क्रांतिकारी पार्टियों ने मिलकर एक नया क्रांतिकारी संगठन तैयार कर लिया और सभी ने ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी को अपने नेता के रूप में स्वीकार किया। इस बात के भी प्रयत्न किए गए कि फ्रांसीसी आधिपत्यवाले चंद्रनगर के क्रांतिकारियों का सहयोग भी प्राप्त किया जाए।

ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी की भेंट रासबिहारी बोस से भी हुई, जो उस समय उत्तर प्रदेश और पंजाब की क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालक थे। रासबिहारी बोस से मिलने ज्योतींद्रनाथ दो बार बनारस भी गए। रासबिहारी बोस की विप्लव योजना के विफल हो जाने के पश्चात् ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने अभिनव विप्लव यज्ञ का आयोजन किया।

नए सिरे से विप्लव आयोजन करने के लिए क्रांतिकारियों की एक गोपनीय बैठक हुई, जिसमें ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी के अतिरिक्त उत्तरपारा के अमरेंद्रनाथ चटर्जी, चंद्रनगर के शिरीशचंद्र घोष एवं मोतीलाल राय और कलकत्ता के अतुलकृष्ण घोष, विपिन बिहारी गांगुली व माखनलाल सेन सम्मिलित हुए। अन्य बातें तय करने के अतिरिक्त इस बैठक में यह भी तय किया गया कि विप्लव आयोजन को सफल बनाने के लिए धन-संग्रह और शस्त्र-संग्रह किया जाए। धन-संग्रह के लिए कुछ लोग राजनीतिक डकैतियों के पक्ष में थे। ज्योतींद्रनाथ स्वयं कभी राजनीतिक डकैतियों के पक्ष में नहीं था; पर वह अपने दल के निर्णय के विरोध में भी नहीं जाता था।

कलकत्ता में हथियारों का व्यापार करनेवाली एक 'रोडा कंपनी' थी, जो विदेशों से शस्त्र मँगाती थी। उन्हीं दिनों एक जहाज रोडा कंपनी के हथियार लेकर कलकत्ता के बंदरगाह पर लगा। हथियारों से भरी हुई लगभग दो सौ पचीस पेटियाँ थीं, जो सात बैलगाड़ियों पर लादी गईं। कुछ क्रांतिकारी लोग गाड़ीवान बनकर उन पेटियों को ढोने के लिए बंदरगाह पर जा पहुँचे। रोडा कंपनी में शिरीषचंद्र नाम का एक क्रांतिकारी भी नौकरी में था। यद्यपि हथियारों के बक्से ढोने के लिए परिचित गाड़ीवान तय किए जा चुके थे, पर शिरीषचंद्र के प्रयत्न से एक गाड़ी ऐसी भी तय कर ली गई, जिसका चालक एक क्रांतिकारी था। हथियारों के बक्से लादकर सात बैलगाड़ियाँ रोडा कंपनी के मालगोदाम की ओर बढ़ने लगीं। उनमें से सातवीं और आखिरी गाड़ी वही थी, जिसे एक क्रांतिकारी चला रहा था। वह गाड़ी दूसरी

गाड़ियों से पिछड़ गई और एक गली में मुड़कर गायब हो गई। इस प्रकार योजनाबद्ध तरीके से क्रांतिकारियों ने हथियारों का बहुत बड़ा जखीरा अपने कब्जे में कर लिया। उनके हाथ पचास माउजर पिस्तौलें और चालीस हजार कारतूस लगे। उन माउजर पिस्तौलों की विशेषता यह थी कि उनके साथ लकड़ी का एक हैंडिल भी था, जिसे खींच देने पर पिस्तौल राइफल की तरह उपयोग में लाई जा सकती थी और वह बहुत दूर तक मार कर सकती थी। ये हथियार क्रांतिकारियों ने अपने विभिन्न केंद्रों पर बाँट दिए। इस घटना के पश्चात् शिरीषचंद्र रोडा कंपनी की नौकरी से फरार हो गया।

धन-संग्रह की दिशा में क्रांतिकारियों ने तीन डकैतियाँ कीं और काफी मात्रा में धन उनके हाथ लगा। गार्डन रीच और बेलियाघाट की डकैतियों में चालीस हजार रुपए उनके हाथ लगे।

इन डकैतियों के तुरंत बाद एक विशेष घटना हो गई। बेलियाघाट डकैती के दो दिन पश्चात् अर्थात् २४ फरवरी, १९१५ को ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी, चित्तप्रिय और कुछ अन्य क्रांतिकारी मकान में बैठे हुए अपनी पिस्तौलें साफ कर रहे थे कि पुलिस का एक आदमी नीरद हालदार किसी प्रकार वहाँ पहुँच गया। उसने ज्योतींद्रनाथ को जब वहाँ देखा तो आश्चर्य से बोल उठा—

''अरे! जतीन बाबू, आप यहाँ?''

ज्योतींद्रनाथ ने निश्चय कर लिया कि अब इसे जीवित वापस नहीं जाने देना चाहिए। चित्तप्रिय को संबोधित करते हुए उसने कहा—''शूट हिम!'' चित्तप्रिय ने अपनी पिस्तौल का घोड़ा दबाया और नीरद हालदार वहीं गिर पड़ा। क्रांतिकारियों के सामने समस्या थी कि उसकी लाश का क्या किया जाए। यदि वे देर लगाते तो और लोग भी वहाँ पहुँच जाते। शीघ्रता में वे सब लोग वहाँ से भाग गए।

गोली लगने से नीरद हालदार गिर अवश्य पड़ा था, पर वह मरा नहीं था। सरक-सरककर वह मकान के बाहर पहुँच गया और मरने के पहले वह बयान दे गया कि मुझे ज्योतींद्रनाथ और चित्तप्रिय ने मारा है। अभी तक ज्योतींद्रनाथ फरार क्रांतिकारी नहीं था। इस घटना के पश्चात् उन्हें घर-बार छोड़कर फरार हो जाना पड़ा।

ब्रिटिश सरकार ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझने लगी और उसकी गिरफ्तारी के सभी संभव उपाय करने लगी। ज्योतींद्रनाथ के सिर पर कच्चे धागे से लटकती हुई तलवार देखकर साथियों ने उसे समझाया—

''इस समय तुम्हारा विदेश चले जाना ही ठीक है। तुम्हारे मस्तक की भेंट प्राप्त करने के लिए पुलिस बहुत बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ी है। कुछ दिन बाहर रहकर अपने प्राणों की रक्षा करो, तब तक हम लोग तुम्हारी योजनाओं को कार्यान्वित

करते रहेंगे।''

प्रस्ताव सुनकर ज्योतींद्रनाथ का मुख तमतमा गया। प्राणों को बचाकर रखने का विचार तो उसके मन में कभी आया ही नहीं था। उसके कानों में तो सदैव देशभक्ति और बलिदान का ही मंत्र फूँका गया था। माँ की शिक्षा उसके कानों में गूँजने लगी—'बेटे! एक बात हमेशा याद रखना। देश की सेवा करनेवाले ही ईश्वर को अच्छे लगते हैं। जो लोग देश और धर्म पर अपने प्राण न्योछावर करते हैं, उनके नाम अमर रहते हैं।' यह कैसे संभव था कि ज्योतींद्र जैसा बेटा अपनी माँ की शिक्षा को भूल जाता। उसने अपने साथियों को उत्तर दिया—

''भाई, हम लोग जीवन और मरण में एक-दूसरे का साथ देने की शपथ लेकर ही गृह-त्यागी बने हैं। मैं अपने साथियों को विपत्ति के मुख में धकेलकर विदेश न जा सकूँगा। वहाँ जाकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा तो मैं तुम लोगों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मरने में ही विशेष गौरव का अनुभव करूँगा। यदि मैं देश के शत्रुओं के साथ युद्ध करते-करते मारा जाऊँ तो इससे अच्छी और कोई मौत हो ही नहीं सकती।'' ज्योतींद्र ने विदेश चले जाने का अपने साथियों का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

आगे चलकर भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में 'चंद्रशेखर आजाद' नाम का एक व्यक्तित्व और उभरा, जिसके विचार तथा कार्य बहुत कुछ ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी जैसे ही थे। जो कौल चंद्रशेखर आजाद का था कि कोई मुझे जीवित नहीं पकड़ सकता, वही ज्योतींद्रनाथ का भी था। दोनों ही अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखते थे और क्षणिक आवेश में आकर ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे, जिससे आजादी का लक्ष्य उनसे दूर हो। आजाद के जीवन में एक ऐसा प्रसंग आया, जब कुछ गुंडों से उनके दल की कहा-सुनी हो गई। आजाद के सभी साथियों के पास रिवॉल्वर थे। उनका मन हुआ कि वे गुंडों को ठिकाने लगा दें; पर आजाद ने संकेत से उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और बाद में अपने साथियों को समझाया कि हमारा लक्ष्य इन गुंडों से निबटना नहीं है, अपितु उन गुंडों से निबटना है जो हमारे देश पर जबरन अधिकार किए हुए बैठे हैं। उन्होंने समझाया कि छोटे-छोटे कांडों में शक्ति का अपव्यय न करके बड़े काम के लिए उसे बचाकर रखना चाहिए।

ठीक इसी प्रकार का प्रसंग ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी के जीवन में उपस्थित हो गया था। एक दिन फणींद्र चक्रवर्ती और भूपति मजूमदार ट्रेन में बैठे हुए जा रहे थे। एक स्टेशन से ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी और नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (बाद में मानवेंद्रनाथ राय) भी उसी डिब्बे में सवार हुए। अगले स्टेशन पर दो अंग्रेज भी उस डिब्बे में आ घुसे। जिस स्थान पर ज्योतींद्रनाथ और नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य बैठे थे, वहाँ बैठकर वे

उन्हें धक्का देने लगे। उन्हें समझाने पर वे उन लोगों को गालियाँ देने लगे और झगड़ा करने पर उतारू हो गए। क्रांतिकारियों ने अपने रिवॉल्वर निकालने के लिए जेबों में हाथ डाले, पर आँखों के इशारे से ज्योतींद्रनाथ ने उन्हें ऐसा करने के लिए मना कर दिया और अपनी जगह खाली करते हुए उन गोरों से बोले—

''हुजूर, आप नाराज न हों; लीजिए, आप हमारी जगह बैठ जाइए, हम काले लोगों का क्या, हम तो कहीं भी बैठ जाएँगे।''

खड़गपुर स्टेशन पर गोरों के उतर जाने के पश्चात् ज्योतींद्रनाथ ने अपने साथियों को समझाया—

''तुम लोग उनकी गालियाँ खाकर नाराज हो गए थे। मैं उन दोनों को एक साथ गाड़ी के नीचे फेंक सकता था; लेकिन हम जिस उद्देश्य से अपने को छिपाकर जा रहे हैं, वह उद्देश्य इस बेवकूफी से खत्म हो जाता। यदि तुममें आत्मसंयम नहीं है तो तुम क्रांति पथ के उपयुक्त नहीं हो।''

ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी हमेशा ही ऐसे अवसरों पर सूझबूझ एवं आत्मसंयम से काम लेते थे और अपने दल को संकट से बचा लेते थे। उनमें अद्‌भुत संगठन क्षमता थी। वारींद्रकुमार घोष और उनके साथियों के गिरफ्तार हो जाने के पश्चात् ज्योतींद्रनाथ ही ऐसे क्रांतिकारी हुए, जिन्होंने उस रिक्तता की पूर्ति की और कई छोटे-छोटे दलों का विलय करके एक दृढ़ संगठन खड़ा किया।

उस समय इंग्लैंड और जर्मनी एक-दूसरे के शत्रु थे। इस स्थिति का लाभ उठाने के उद्‌देश्य से क्रांतिकारियों ने तय किया कि विप्लव आयोजन को सफल बनाने के लिए जर्मनी से धन और शस्त्रों का सहयोग प्राप्त किया जाए। शंघाई, बटाविया और बैंकाक स्थित जर्मन राजदूतों से संपर्क स्थापित करने कुछ क्रांतिकारियों को वहाँ भेजने का भी निर्णय लिया गया। इस कार्य के संपादन के लिए होनेवाले व्यय-भार का दायित्व ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने अपने ऊपर लिया और अमरेंद्रनाथ चटर्जी ने उन लोगों को बाहर जाने की सुविधाएँ जुटाने का काम अपने ऊपर लिया। इन क्रांतिकारी गतिविधियों का परिणाम यह निकला कि ब्रिटिश हुकूमत ज्योतींद्रनाथ को गिरफ्तार कर लेने के लिए सतर्क हो गई और ज्योतींद्रनाथ भूमिगत होकर कार्य करने लगे।

योजना के अनुसार नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (एम.एन. राय के नाम से प्रसिद्ध) को जहाज द्वारा मद्रास से बटाविया भेजा गया। वे काप्तीपाड़ा में ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी से मिलते गए। बटाविया पहुँचकर वे 'सी.ए. मार्टिन' नाम धारण कर काम करने लगे। भारत की गदर पार्टी के एक सदस्य आत्माराम से उनका परिचय हुआ और उन दोनों ने जर्मन राजदूत से मिलकर काफी धन भारत पहुँचाने की व्यवस्था कर दी। भारत में वह धन चार स्थानों पर भेजा जाता था, जिनमें कलकत्ता की एक

फर्म 'हैरी एंड संस, ४१ क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता' प्रमुख थी। पैसा मँगाने के लिए सांकेतिक भाषा में तार किया जाता था और सांकेतिक भाषा में उसका उत्तर भी आ जाता था। फर्म 'हैरी एंड संस' के संचालक हरिकुमार चक्रवर्ती और उनके भाई माखनलाल चक्रवर्ती थे। ये दोनों ही बहुत बड़े क्रांतिकारी थे। काफी धन क्रांतिकारियों में वितरित हो जाने के पश्चात् पुलिस को इस कांड का सुराग मिला और उनकी तलाशी ली गई। पुलिस ने हरिकुमार चक्रवर्ती, माखनलाल चक्रवर्ती और श्यामसुंदर बोस को गिरफ्तार कर लिया।

जर्मनी द्वारा भारत के क्रांतिकारियों के पास हथियार भेजने के भी प्रयत्न किए गए; पर वे प्रयत्न सफल नहीं हो सके। हथियारों से लदे हुए जहाज अंग्रेजों के हाथ लग गए। जर्मन जहाज 'मैवरिक' और 'हैनरी एस.' द्वारा भेजे गए हथियार भारत के क्रांतिकारियों के पास तक नहीं पहुँच सके। विप्लव की पूरी तैयारियाँ भारत में कर ली गई थीं और यह भी निश्चित हो चुका था कि कौन किस पुल को उड़ाएगा, कौन किस रेल की पटरी को उखाड़ेगा और तिरंगा झंडा कौन कहाँ फहराएगा। ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी सभी जगह घूम-घूमकर जहाजों से हथियार उतरवाने और उन्हें वितरित करने के प्रबंध में बहुत सक्रिय थे। योजना का भंडाफोड़ हो जाने पर अब पुलिस बहुत सक्रियता से ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी की खोज करने लगी।

पुलिस को यह पता चल गया कि बालासोर में 'यूनिवर्सल एंपोरियम' नाम की एक दुकान है, जहाँ से क्रांतिकारी अपनी गतिविधियों का संचालन करते हैं। पुलिस ने उसपर छापा मारा और वहाँ से उसे पता चला कि काप्तीपाड़ा नामक स्थान पर ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी छद्म नाम से रहता है। ज्योतींद्रनाथ की खोज के लिए काप्तीपाड़ा पर दबिश दी गई; पर वह पुलिस को चकमा देता हुआ बालासोर जा पहुँचा। अब पुलिस ने उसे बालासोर में घेरने का प्रयत्न किया।

बालासोर पहुँचकर ज्योतींद्रनाथ का दल ९ सितंबर, १९१५ को एक गाँव की तरफ बढ़ चला। पिछले दिन भी उन्हें काफी चलना पड़ा था और वे सभी थककर चूर हो रहे थे। फिर भी उन्होंने काफी रास्ता पार किया और एक स्थानीय व्यक्ति की सहायता से उन्होंने बूढ़ी बालम नदी पार की। नदी पार करने के पश्चात् वे और भी आगे बढ़ना चाहते थे; पर उनके शरीर उनका साथ नहीं दे रहे थे। भूख और रात्रि-जागरण के कारण उनका बुरा हाल था। इसी समय ज्योतींद्रनाथ ने देखा कि एक मल्लाह अँगीठी सुलगाकर अपना भोजन पका रहा है। प्रार्थना के स्वर में ज्योतींद्रनाथ माँझी से कहता है—

''भाई माँझी! हम लोग दो दिन के भूखे हैं। तुमने जो चावल पकाए हैं, वे हमें दे दो और जो मूल्य तुम चाहो, वह हमसे ले लो।''

माँझी कहता है—

"अपने लिए पकाए हुए भोजन को बेचना महान् अधर्म होगा। आप लोग भोजन के समय आ गए हैं, मेरे अतिथि हैं। जो कुछ भी है, ग्रहण करने में संकोच न करें।"

अपना काम बना हुआ देख ज्योतींद्रनाथ साभार कहता है—

"अच्छा भाई, तुम्हारा आतिथ्य हमें स्वीकार है। आज तुम्हें ब्राह्मण-भोजन कराने का पुण्य मिलने वाला है।"

ज्योतींद्रनाथ के मुख से 'ब्राह्मण' शब्द सुनते ही माँझी चौंक पड़ता है और दृढ़ता से कह उठता है—

"नहीं-नहीं! अब मैं आपको भोजन नहीं कराऊँगा। आप ब्राह्मण और मैं नीच माँझी। अपने हाथ का बना भोजन आपको कराके मैं आपके धर्म को भ्रष्ट नहीं करना चाहता। इस अधर्म के बदले मेरे पुरखे भी नरक में चले जाएँगे।"

ज्योतींद्रनाथ और उसके साथी एक-दूसरे के मुख देखते रह जाते हैं। उनको अर्पित भोजन उनके मुखों तक नहीं पहुँच पाता। उनकी आँतें कुलबुलाने लगती हैं। एक साथी कहता है—

"ज्योतीन दा! यह ऐसे नहीं मानता तो भोजन हम इससे छीन लें। यह अकेला कर ही क्या लेगा!"

ज्यीतींद्रनाथ अपने साथियों को समझाते हुए कहता है—

"यदि हमने ऐसा किया तो हममें और जानवरों में, क्रांतिकारियों और डाकुओं में क्या फर्क रह जाएगा? यह माँझी अपने धर्म की रक्षा कर रहा है, हम लोग अपने धर्म की रक्षा करें।"

भूख, प्यास और थकान से चूर वे पाँचों क्रांतिकारी और आगे बढ़ जाते हैं। वे दामुद्रा गाँव में पहुँचते हैं और भोजन सामग्री के विषय में पूछताछ करते हैं। गाँववालों को उनपर शक होता है और वे भाँति-भाँति के प्रश्न उनसे करते हैं। अपनी दाल गलते न देखकर क्रांतिकारी वहाँ से चल देते हैं। उन्हें डाकू समझकर गाँववाले उनका पीछा करते हैं।

कैसी विडंबना है। अपनी मातृभूमि को विदेशियों के पंजे से मुक्त करानेवाले देशभक्त भूख व प्यास से विकल होकर घूम रहे हैं और लोग उन्हें डाकू समझकर उनका पीछा कर रहे हैं।

गाँववालों को डराने के लिए क्रांतिकारियों ने हवा में कुछ गोलियाँ छोड़ीं; पर गाँववालों ने उनका पीछा करना बंद नहीं किया। उन्होंने अपने कुछ आदमी पुलिस को खबर करने के लिए भी दौड़ा दिए। इस बीच गाँववाले निरंतर उनका

पीछा करते रहे। कुछ चारा न देखकर क्रांतिकारियों ने अब गाँववालों को ही अपनी गोलियों का निशाना बनाया। उनकी गोलियों से 'राजमहंती' नाम का एक व्यक्ति मारा गया और 'सूदनगिरी' नाम का एक अन्य ग्रामीण घायल हो गया। अब गाँववाले इतनी दूर रहकर पीछा करने लगे कि वे गोलियों से बचे रहें। यद्यपि गाँववालों के पास बंदूकें नहीं थीं, पर क्रांतिकारियों का पीछा वे इसलिए कर रहे थे, जिससे कि आनेवाली पुलिस को यह पता चल सके कि क्रांतिकारी लोग कहाँ हैं।

गाँववालों की सूचना पाकर आसपास की पुलिस भी वहाँ पहुँच गई और कलकत्ता से काफी पुलिस और पुलिस के अफसर भी वहाँ पहुँच गए। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि. किलबी के अतिरिक्त टेगार्ट और बर्ड आदि कितने ही अफसर वहाँ पहुँच गए। घुड़सवार पुलिस भी वहाँ पहुँच गई और उन सबने क्रांतिकारियों को जंगल में घेर लिया। एक दल मयूरगंज की ओर से बढ़ा तो दूसरा मदनपुर की ओर से। एक तरफ भूखे-प्यासे केवल पाँच क्रांतिकारी थे और दूसरी तरफ पुलिस दल के पाँच सौ व्यक्ति एवं गाँववाले। एक तरफ मामूली पिस्तौलें लिये क्रांतिकारी थे तो दूसरी तरफ अच्छी-से-अच्छी राइफलों से युक्त प्रशिक्षित सैनिक।

ज्योतींद्रनाथ ने अपने साथियों से परामर्श किया कि अब भागने के स्थान पर युद्ध करने में ही सार है। क्रांतिकारियों ने मोरचा ले लिया और वे पुलिस पर गोलियाँ छोड़ने लगे। पुलिस भी उनपर गोलियों की बौछारें छोड़ रही थी। एक गोली चित्तप्रिय के शरीर में समा गई और वह भूमि पर तड़पने लगा। ज्योतींद्रनाथ ने उसे अपनी गोद में डाला और बहुत क्रोध के साथ वह पुलिस पर गोलियाँ छोड़ने लगा। पुलिस की दूसरी गोली आई और ज्योतींद्रनाथ के पेट के आर-पार हो गई। गोलियों के कई जख्म तो वह पहले भी खा चुका था, पर इस घातक गोली ने उसे यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि अब वह बच नहीं सकता। युद्ध करते हुए मरने की उसकी आकांक्षा पूरी हो रही थी। अपने साथियों के प्रति उसके मन में ममता जाग उठी। उसकी गोद में चित्तप्रिय दम तोड़ ही चुका था। उसने शेष साथियों को आदेश दिया कि सफेद चादर ऊँची करके युद्ध बंद करने का संकेत करो। ऐसा ही किया गया। झपटकर पुलिस दल वहाँ जा पहुँचा। चित्तप्रिय मर चुका था और ज्योतींद्रनाथ मरणासन्न स्थिति में था।

गोलियों से घायल ज्योतींद्रनाथ 'पानी!' पुकार उठता है। रक्त से स्नात बालक मनोरंजन अपने नेता की अंतिम इच्छा पूर्ण करने के लिए नाले की तरफ बढ़ा और अपनी चादर भिगोकर लाने लगा। यह दृश्य देखकर पुलिसवाले भी द्रवित हो गए। एक पुलिस अफसर नाले के पास गया और अपने टोप में पानी भर लाया। उसने बूँद-बूँद करके पानी ज्योतींद्रनाथ के मुख में डालना प्रारंभ किया।

ज्योतींद्रनाथ की चेतना लौटी और वह डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि. किलबी को पहचान गया। उनको देखकर बड़ी नम्रता से उसने कहा—

"ओह! आप हैं। हमें पता नहीं था कि आप भी आए हैं। हमारे कारण आपको कष्ट हुआ, बुरा न मानिए।"

एक क्रांतिकारी के मुख से अपने प्रति इतने विनम्र शिष्टाचार की बातें सुनकर किलबी साहब प्रसन्न हो गए। उन्होंने कुछ चारपाइयाँ लाने के लिए पुलिस को आदेश दिया। तीन चारपाइयाँ लाई गईं। एक चारपाई पर चित्तप्रिय का शव रखा गया। दो अन्य चारपाइयों पर घायल ज्योतींद्रनाथ और ज्योतिषपाल (अतीश) को लिटाया गया। मनोरंजन और नीरेंद्र पैदल ही चले। ज्योतींद्रनाथ ने अपने साथियों की ओर संकेत करते हुए पुलिस अफसरों से कहा—

"देखिए, मेरे साथियों को कोई कष्ट न हो। ये बेचारे तो केवल मेरे कहने से ही इस अभियान में सम्मिलित हुए थे। इनका कोई दोष नहीं है। सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले रहा हूँ।"

सभी लोग ज्योतींद्रनाथ के इस कथन से अत्यंत प्रभावित हुए। इलाज के लिए ज्योतींद्रनाथ और ज्योतिषपाल को अस्पताल भिजवाया गया। अगले ही दिन अर्थात् १० सितंबर सन् १९१५ को ज्योतींद्रनाथ ने अपने जीवन की अंतिम साँस ली। युद्ध करके शहीद होने की उसकी साध पूरी हो गई। कुछ दिन पश्चात् ज्योतिषपाल (अतीश) स्वस्थ हो गया। ज्योतिषपाल, मनोरंजन और नीरेंद्र पर मुकदमा चलाया गया। अदालत के फैसले के अनुसार मनोरंजन एवं नीरेंद्र को फाँसी पर लटका दिया गया और ज्योतिषपाल को आजीवन कारावास की सजा दी गई। जेल की यातनाओं को भोगता हुआ ज्योतिषपाल भी बरहमपुर की जेल में चल बसा। बहुत समय तक उसकी मृत्यु का किसीको पता नहीं चला। उसकी पत्नी इंदुबाला बारह वर्षों तक सौभाग्यवती की तरह ही रही। पति की मृत्यु का पता लगने पर उसने पति की कुश की प्रतिमा बनाकर और उसका दाह-संस्कार संपन्न कराकर विधवा का वेश धारण किया।

भारतवर्ष शताब्दियों तक ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी जैसे महान् क्रांतिकारियों पर गर्व करता रहेगा।

□

★ छलियाराम ★ नारायणसिंह ★ निरंजनसिंह ★ पल्लासिंह ★ बसावासिंह ★ हरनामसिंह

फरवरी १९१५ में बर्मा के नगर मांडले के एक भारतीय परिवार में बैठकर कुछ भारतीय क्रांतिकारी गहन मंत्रणा में लीन थे। चर्चा का विषय था कि जब ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अमेरिका से आनेवाले पत्र 'गदर' के बर्मा आगमन पर पाबंदी लगा दी है तो जन-जागरण और विप्लव के प्रचार के लिए कौन-सा साधन अपनाया जाए।

छलियाराम का कथन था—

''सरकार ने 'गदर' की उन्हीं प्रतियों पर तो पाबंदी लगाई है, जो डाक द्वारा अमेरिका से बर्मा आती हैं। ये प्रतियाँ डाक से न मँगाकर अमेरिका से आने-जानेवाले साथियों द्वारा मँगाई जा सकती हैं।''

सरदार बसावासिंह ने इस मत के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—

''अपने साथियों द्वारा 'गदर' की प्रतियाँ मँगाने की सेवा उतनी नियमित नहीं हो सकती, जितनी डाक सेवा नियमित होती है। तलाशी होने पर साथियों के पकड़े जाने का भय भी तो है।''

बसावासिंह की बात ठीक लगी। साथी हरनामसिंह का संशोधन था—

''काफी मात्रा में अमेरिका में बने हुए जूते बर्मा में मँगाए जाते हैं। 'गदर' की एक-दो प्रतियाँ जूतों के तले के अंदर रखवाकर मँगाई जा सकती हैं। उन प्रतियों की सहायता से हम गोपनीय ढंग से हजारों प्रतियाँ यहाँ तैयार करके गोपनीय ढंग से ही उसका वितरण कर सकते हैं।''

साथी हरनामसिंह की यह बात सबको जँच गई। 'गदर' की स्थानीय प्रतियाँ छापने और उन्हें वितरित करने का दायित्व साथी नारायणसिंह, निरंजनसिंह और

पल्लासिंह को दिया गया। छलियाराम के एक रिश्तेदार की जूतों की दुकान रंगून में थी। उसके माध्यम से जूतों के तलों में 'गदर' की प्रतियाँ रखवाकर मँगाने की व्यवस्था हो गई।

क्रांतिकारियों को केवल इतने से ही संतोष नहीं हुआ। वे कुस्तुनतुनिया से निकलनेवाले पत्र 'जहान-ए-इस्लाम' की प्रतियाँ भी बर्मा में मँगाकर उसे वितरित करने लगे। इस पत्र में भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध काफी सामग्री होती थी। विद्रोह का वातावरण ठीक तरह से निर्मित हो रहा था। पहले कुछ बंगाली क्रांतिकारी भी बर्मा पहुँचकर क्रांति का अच्छा प्रचार कर रहे थे। तुर्की के क्रांतिकारियों से भी संबंध स्थापित किया गया और विद्रोह के लिए जर्मन लोगों से साँठ-गाँठ करके कुछ हथियार प्राप्त किए गए।

बर्मा में गदर का प्रारंभ होने में कुछ अधिक विलंब नहीं था कि एक व्यक्ति की कमजोरी के कारण पुलिस विद्रोह की गतिविधियों को सूँघने में सफल हो गई और गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। सत्रह व्यक्ति पकड़े गए। मांडले में ६ मार्च, १९१६ को अदालती कार्रवाई के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल की नियुक्ति हुई। आरोपियों पर सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने, सेना में बगावत फैलाने और शत्रु को सहायता देने के आरोप लगाए गए। ३१ जुलाई, १९१६ को निर्णय सुना दिया गया। सन् १९१६ में अगस्त १९ से २२ के बीच छह व्यक्तियों को फाँसी का दंड दिया गया। वे थे—हरनामसिंह, छलियाराम, नारायणसिंह, बसावासिंह, निरंजनसिंह और पल्लासिंह।

☐

★ पं. जगतराम भारद्वाज

पं. जगतराम भारद्वाज

वह एक शायर भी था और क्रांतिकारी भी। उसके दिल में देशभक्ति की आग जलती रहती थी और उसकी शायरी का हर शब्द उसी आग को उगलता था। उसका नाम था पं. जगतराम भारद्वाज। हरियाणा के 'नगमपारू' गाँव में जनमे होने के कारण लोग उसे 'जगतराम हरियानवी' के नाम से पुकारते थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका गया था; पर वहाँ पहुँचकर जो शिक्षा उसने अपनी गाँठ में बाँधी, वह थी—'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'।

अमेरिका में वे लोग स्वाधीन थे, पर गए तो वहाँ वे एक पराधीन देश से ही थे। पराधीनता का यह काँटा उनको चैन नहीं लेने दे रहा था। उन लोगों ने संकल्प किया कि अब अपना हर कदम भारत को आजाद करने की दिशा में ही उठेगा। आजादी पसंद लोगों ने अमेरिका में लाला हरदयाल को आमंत्रित किया और 'गदर पार्टी' बन गई तथा 'गदर' अखबार निकलने लगा। 'गदर' अखबार को लोकप्रिय बनाने में पं. जगतराम भारद्वाज ने अपना सबकुछ लगा दिया। 'युगांतर आश्रम' में रहकर वे 'गदर' का संपादन करने लगे। संपादकीय लेख और कविताओं से उसे सजाते थे। प्रेस के भी सभी काम करते थे। आश्रम में झाड़ू लगाने से लेकर प्रवचन करने तक का सब काम वे करते थे। सारे संसार में 'गदर' की प्रतियाँ नियमित रूप से पहुँचाने की जिम्मेदारी उन्होंने अपने कंधे पर ले रखी थी। 'गदर' के ग्राहक संसार-भर में फैले हुए थे और उनकी सूची बहुत लंबी थी। लोगों ने भय व्यक्त किया कि ब्रिटिश

जासूस कहीं 'गदर' के ग्राहकों की सूची को पार न कर दें। उस सूची की रक्षा के लिए पं. जगतराम भारद्वाज भरी हुई पिस्तौल लेकर सतर्क रहने लगे। साथियों ने शंका व्यक्त की कि पंडितजी, यदि आपके सोते हुए किसीने सूची पार कर दी तो फिर क्या होगा? बस, फिर क्या था, पं. जगतराम भारद्वाज ने ग्राहकों की पूरी सूची पते सहित कंठस्थ कर ली और फिर बिना सूची देखे ही ग्राहकों को 'गदर' की प्रतियाँ भेजने लगे। ऐसी विलक्षण याददाश्त थी पं. जगतराम हरियानवी की।

'गदर' का संपादन चल रहा था। उसी बीच १० मई की तारीख आ पहुँची। १० मई, १८५७ को ही भारत में गदर का प्रारंभ हुआ था। पं. जगतराम भारद्वाज की कलम ने १० मई का अभिवादन इस प्रकार किया—

'आज क़ा दिन दस मई है, दिन वही यह आज का,
जबकि शरबत था शहादत का बुजुर्गों ने पिया।
गूँज आती थी यही—मारो फिरंगी आज तुम,
कौम के झंडे को गाड़ो, थाम तख्तो-ताज तुम॥'

१९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जाने पर गदर पार्टी के लोगों ने भारत की स्वाधीनता के लिए उसे एक अच्छा अवसर समझा। गदर की योजना लेकर हजारों की संख्या में प्रवासी भारतीय अमेरिका और कनाडा से भारत पहुँचने लगे। नेता लोग स्वयं पीछे कैसे रह सकते थे। गदर पार्टी के कुछ कार्यकर्ता भी दूसरे जत्थे में भारत के लिए प्रस्थित हुए। इन लोगों में पं. जगतराम भारद्वाज भी एक थे। 'प्रिंसेज कोरिया' जहाज से इन लोगों को हांगकांग तक यात्रा करके वहाँ से फिर जहाज बदलना था।

जहाज पर पं. जगतराम भारद्वाज के सहयात्रियों में सरदार ज्वालासिंह, पृथ्वीसिंह, शेरसिंह, प्यारासिंह तथा इंद्रसिंह आदि थे। जहाज बड़ा था और अन्य यात्रियों के अतिरिक्त उसपर एक सौ पचास क्रांतिकारी सवार थे। सफर बड़े आनंद और उल्लास के साथ कट रहा था। खूब गपशप होती और राष्ट्रीय वीरों की कहानियाँ कही-सुनी जातीं, गीत गाए जाते तथा ओजस्वी भाषण होते। कुछ रोज बाद यह जहाज हवाई द्वीप पहुँच गया, जो अमेरिकन लोगों के अधिकार में था। हवाई द्वीप से चलकर जहाज जापान के प्रसिद्ध बंदरगाह 'याकोहामा' पर जा लगा। क्रांतिकारियों की भारत यात्रा के संबंध में दूर-दूर तक समाचार पहुँच चुके थे। भारतीय लोग अपने देश के क्रांतिकारियों से मिलने जहाज पर पहुँचे। पं. जगतराम सभी से यह पूछताछ भी करते जा रहे थे कि 'गदर' अखबार की प्रतियाँ सभी देशों में पहुँच रही हैं या नहीं। शायर होने के कारण उनसे खूब कविताएँ सुनी जाती थीं।

याकोहामा से क्रांतिकारियों का जहाज फिलिपींस द्वीप और फिर मनीला पहुँचा। मनीला से उन्हें हांगकांग पहुँचना था, जो ब्रिटिश अधिकार में था। कई क्रांतिकारियों के पास हथियार थे। इस बात पर विचार हुआ कि हांगकांग में तलाशी होगी और हथियार पकड़े जाने पर सभी लोग मुसीबत में पड़ जाएँगे। जिन-जिनके पास हथियार थे, उन्हें उनको समुद्र में फेंकने पड़े। हांगकांग से क्रांतिकारी लोग 'तोशामारू' जहाज में सवार होकर सिंगापुर और फिर पीनांग पहुँचे। पीनांग छोड़कर जब जहाज रंगून की तरफ रवाना हुआ तो उन लोगों को जर्मन पनडुब्बी 'एमडन' के उस क्षेत्र में सक्रिय होने की सूचना मिली। जर्मन पनडुब्बी 'एमडन' कई अंग्रेजी जहाजों को डुबो चुकी थी। तोशामारू जहाज के यात्रियों को बहुत चिंता हुई; पर उन्हें किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ा। एक रात उन्हें समुद्र में रोशनी भी दिखाई दी, पर उनपर आक्रमण नहीं हुआ। बात यह थी कि जर्मन पनडुब्बी 'एमडन' मे द्वितीय कमांडर के रूप में एक भारतीय क्रांतिकारी डॉ. चंपक रमन पिल्लई कार्य कर रहे थे। उन्हें इस बात का पता था कि भारतीय क्रांतिकारी 'प्रिंसेज कोरिया' और 'तोशामारू' जहाज से यात्रा करेंगे। अंडमान द्वीप के निकट से गुजरता हुआ 'तोशामारू' जहाज रंगून पहुँचा और वहाँ से कलकत्ता के लिए प्रस्थित हो गया। कुछ क्रांतिकारियों ने रास्ते के बंदरगाहों से फिर कुछ हथियार खरीद लिये थे।

'तोशामारू' जहाज जब कलकत्ता के निकट पहुँचा तो एक संकेत देकर उसको समुद्र में ही रोक दिया गया। नावों के द्वारा डॉक्टरों के वेश में पुलिसवाले तलाशी लेने के इरादे से 'तोशामारू' जहाज पर पहुँचे। लोगों को अपने-अपने हथियारों की चिंता हुई। सभी ने अपनी पिस्तौलें पं. जगतराम भारद्वाज को दे दीं। पं. जगतराम भारद्वाज ने उन्हें एक संदूक में बंद किया और चुपके से वह संदूक जहाज के डॉक्टर के कमरे में रख आए। तलाशी हुई, पर किसीके पास हथियार नहीं निकला। पं. जगतराम भारद्वाज की सूझबूझ काम कर गई।

जब जहाज बंदरगाह पर लगा तो लोगों ने देखा कि जेटी पर दोनों तरफ गोरे एवं गुरखे सैनिक तैनात हैं और मशीनगनें भी तैयार पाई गईं। लोगों को वहाँ से बच निकलने की उम्मीद नहीं रही; क्योंकि कुछ समय पहले ही 'कामागाटामारू' जहाज के यात्रियों को गोलियों से भूना गया था। आखिर उतरना तो था ही। क्रांतिकारी लोग उतरने लगे और उन्हें पकड़-पकड़कर निर्दिष्ट स्थान पर भेजा जाने लगा, जहाँ से उन्हें बलपूर्वक एक विशेष गाड़ी द्वारा पंजाब भेजा जाना था। पं. जगतराम भारद्वाज स्थिति को ताड़ गए। जहाज के एक बहुत गरीब यात्री के पास वे पहुँचे और अपने मूल्यवान् कपड़े उसे देकर उसके मामूली कपड़े स्वयं पहन लिये। जहाज के डॉक्टर के कमरे में से वे हथियारों का संदूक भी उठा लाए; पर देख लिये

गए। संदूक फेंककर वे सामान्य यात्रियों की भीड़ में गायब हो गए और बिमा गिरफ्तार हुए बंदरगाह के बाहर निकल जाने में सफल हो गए।

बलपूर्वक बैठाए गए क्रांतिकारियों की गाड़ी जब मुगलसराय स्टेशन पर रुकी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन लोगों ने पं. जगतराम को प्लेटफॉर्म पर घूमते हुए देखा। पं. जगतराम अब फटे-पुराने कपड़ों में नहीं थे। वे धोती-कुरता पहने हुए थे और उनके सिर पर पगड़ी थी। पूरे प्लेटफॉर्म पर उन्होंने गाड़ी के दो-तीन चक्कर लगाए, जिससे उनके सभी साथी उन्हें देख लें। उनके मुख पर संजीदा मुसकान थी। उन्हें वहाँ पाकर उनके साथी आश्वस्त हो गए। क्रांतिकारियों को घेरकर ले जानेवाले फौजी लोग इस भेद को नहीं समझ सके।

किसी अन्य साधन के द्वारा पं. जगतराम लाहौर जा पहुँचे और जोर-शोर के साथ गदर का काम चल निकला। करतारसिंह सराबा और विष्णु गणेश पिंगले जैसे महत्त्वपूर्ण नेताओं में उनकी गिनती थी। पंजाब में 'लोडोवाल' स्टेशन के पास एक सभा बुलाई गई, जिसमें प्रसिद्ध गदरवीर बाबा निधानसिंह, बाबा प्यारासिंह, सरदार करतारसिंह, समरसिंह तथा पं. जगतराम के अतिरिक्त अन्य क्रांतिकारी भी सम्मिलित हुए। गदर करने की कार्य-योजना तैयार हो गई; पर एक गद्दार कृपालसिंह द्वारा सरकार को भेद दे देने के कारण संपूर्ण योजना बेकार हो गई और व्यापक रूप से गिरफ्तारियाँ होने लगीं। पं. जगतराम को हथियार लेने अफगानिस्तान जाने के लिए नियुक्त किया गया था। पेशावर स्टेशन पर एक देशद्रोही ने उन्हें गिरफ्तार करा दिया।

गिरफ्तार करके पं. जगतराम को लाहौर सेंट्रल जेल पहुँचाया गया। उनके कई अन्य साथी भी गिरफ्तार करके उसी जेल में रखे गए थे। उन सब पर 'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' नाम से मुकदमा चला। क्रांतिकारियों ने आपस में मिलकर विचार किया कि हममें से सात व्यक्ति पूरे 'षड्यंत्र' की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर शेष साथियों के जीवन बचा लें। पं. जगतराम ने इस कार्य के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया। उनके छह अन्य साथी थे—बाबा सोहनसिंह भकना, सरदार करतारसिंह सराबा, विष्णु गणेश पिंगले, सरदार जगतसिंह, हरनामसिंह और पृथ्वीसिंह। अदालत में पं. जगतराम ने एक विस्तृत लिखित बयान दिया और स्पष्ट किया कि पूरी योजना के लिए हम सात लोगों के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति जिम्मेदार नहीं है। ब्रिटिश शासन को भारत से उखाड़ने के लिए ही हमने गदर योजना तैयार की थी।

इस मुकदमे की सुनवाई के लिए तीन विशेष जजों के ट्रिब्यूनल की नियुक्ति हुई थी, जिनमें से दो अंग्रेज जज थे। तीसरे हिंदुस्तानी जज का नाम पं. शिवनारायण था। गरमियों के दो महीनों के लिए जज लोग पहाड़ पर चले गए और वहाँ से

लौटने के पश्चात् एक अंग्रेज ने फैसला लिखा।

१३ सितंबर सन् १९१५ को फैसला सुनाया जाने वाला था। दिन के एक बजे ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष श्री ए.ए. इरविन की आज्ञा हुई कि फैसला सुनने के लिए अभियुक्तों को अदालत में पेश किया जाए। सभी क्रांतिकारी एक जत्थे के रूप में अदालत की तरफ बढ़े। सबसे आगे-आगे पं. जगतराम थे, जिन्होंने एक गीत लिख लिया था और सभी क्रांतिकारी सामूहिक रूप से उसे गा रहे थे। गीत के स्वर बुलंदी के साथ लहरा रहे थे—

'हमारा हिंद भी फूले-फलेगा एक दिन लेकिन—
मिलेंगे खाक में लाखों हमारे गुलबदन पहले।'

इस सामूहिक गायन के स्वरों से जेल की दीवारें हिलने लगीं। वातावरण को गरमाया हुआ देखकर अध्यक्ष महोदय ने आज्ञा दी कि अभियुक्तों को जत्थे के रूप में न लाकर पाँच-पाँच की टोलियों में लाया जाए। इस व्यवस्था के अनुसार उन्हें वहाँ ले जाकर फैसला सुनाया गया। अन्य क्रांतिकारियों को विभिन्न अवधि की सजा देकर चौबीस क्रांतिकारियों को फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी पानेवाले चौबीस क्रांतिकारियों को एक तरफ कोठरियों में रखा गया और शेष को उस जेल से हटा दिया गया। क्रांतिकारियों को आपस में भी यह पता नहीं था कि उनमें से किस-किसको फाँसी लगेगी। उन्होंने एक युक्ति से काम लेकर नामों का पता लगा लिया। रात के समय हर क्रांतिकारी ने अपनी कोठरी में से जोर से अपना नाम पुकारा। इस प्रकार चौबीस नाम पुकारे गए और उन्हें आपस में पता चल गया कि किन चौबीस व्यक्तियों को फाँसी होगी। फाँसी की सजा पानेवाले इन चौबीस व्यक्तियों में पं. जगतराम का नाम भी था।

सारे भारत में इस फैसले पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई और देश में विरोध का तूफान उठ खड़ा हुआ। वाइसराय महोदय को फैसले पर पुनर्विचार करने के लिए विवश होना पड़ा। परिवर्तित फैसले के अनुसार सत्रह अभियुक्तों की फाँसी की सजा आजीवन कालापानी की सजा में परिवर्तित की गई। केवल सात को फाँसी की सजा सुनाई गई। वे सात थे—

१. बख्शीशसिंह,
२. विष्णु गणेश पिंगले,
३. सुरेंद्रसिंह (आत्मज ईश्वरसिंह),
४. सुरेंद्रसिंह (आत्मज भूरासिंह),
५. हरनामसिंह,

६. जगतसिंह,

७. करतारसिंह सराबा।

पं. जगतराम के गले में फाँसी का फंदा पहुँचते-पहुँचते निकल गया। अपने प्रिय साथियों को फाँसी पर जाते देख उनके कंठ से एक कविता फूट पड़ी—

'फख्र है भारत को, इक करतार तू जाता है आज,
साथ अपने जगत, पिंगले को लिये जाता है आज।
है जगाया हिंद को करतार तेरी मौत ने,
कसम हर हिंदी तुम्हारे खून की खाता है आज।'

पं. जगतराम और उनके साथियों को बंगाल की खाड़ी के पार अंडमान की जेल में भेज दिया गया। अंडमान को लोग 'कालापानी' कहकर पुकारते थे। बहुत कम लोग वहाँ की सजा पूरी करके लौट पाते थे। यातनाओं के कारण कुछ तो वहीं मर जाते थे, कुछ आत्महत्या कर लेते थे। जो भाग्यशाली भारत लौटते भी थे, वे केवल कुछ दिन जीवित रहने के लिए या जीवन-भर अपंग होकर दूसरों पर आश्रित रहने के लिए।

पं. जगतराम को भी उन सभी मुसीबतों का सामना करना पड़ा, जिनके लिए अंडमान बदनाम था। उन्हें डंडा-बेड़ी की सजा दी गई, अँधेरी कोठरी में रखा गया, कोल्हू में जोतकर तेल निकलवाया गया, नारियल की जटाएँ कूटकर उनसे रेशे निकलवाए जाते थे, बीस-बीस सेर अनाज पिसवाया जाता था और कभी-कभी नंगे बदन पर बेंतों की मार से खाल भी उधेड़ी जाती थी। खुराक और पानी की मात्रा आधी कर देना तो आएँदिन की बात थी। इन अत्याचारों से तंग आकर क्रांतिकारियों ने भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी। कई साथी मरणासन्न स्थिति तक पहुँच गए। साथी पृथ्वीसिंह की हालत बहुत बिगड़ गई तो हड़ताल तोड़ने के लिए पं. जगतराम ने अपने खून से पत्र लिखकर उनकी कोठरी में भिजवाया।

इन अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध भारत में जोरदार तूफान खड़ा किया गया। परिणाम यह हुआ कि कालापानी के राजबंदियों को भारत की जेलों में स्थानांतरित कर दिया गया। पं. जगतराम और उनके साथियों को कुछ समय तक मद्रास की राजमहेंद्री जेल और फिर नागपुर जेल में रखा गया।

अपनी भरपूर जवानी के पूरे बीस वर्ष पं. जगतराम ने जेलों में काटे। उन्होंने जेलों को तीर्थों और मंदिरों में परिवर्तित कर दिया। वहाँ उनके 'गीता' पर प्रवचन होते थे, जिन्हें सुनने जेल के अधिकारी भी पहुँचते थे। भजन और कीर्तन की धुनों से जेल का वातावरण पवित्र बना रहता था। किसी भी साथी के बीमार पड़ने पर

उसकी सेवा करने के लिए पं. जगतराम अगुआ रहा करते थे।

पं. जगतराम सन् १९४० में जेल से छूटे। जीवन के शेष दिन बड़ी मुसीबत और कठिनाई के दिन थे। १९५४ के दिसंबर के महीने में अपने एक मित्र बृजकृष्ण चाँदीवाला के घर दिल्ली में पं. जगतराम का स्वर्गवास हुआ। मृत्यु के कुछ समय पूर्व स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू और स्वास्थ्य मंत्री डॉ. सुशीला नैयर भी उस वृद्ध क्रांतिकारी के दर्शनार्थ पहुँचे थे।

जीवन की अंतिम साँस तक पं. जगतराम देश की समृद्धि के लिए दुआ मनाते रहे। वे हर हाल में खुश रहे। उन्होंने व्यक्तिगत मुसीबतों और कठिनाइयों की कभी भी शिकायत नहीं की। उनकी अंतर्वेदना उनकी एक गजल के इन शेरों में देखी जा सकती है। वे 'खाकी' उपनाम से लिखते थे—

'गर मैं कहूँ तो क्या कहूँ कुदरत के खेल की।
हैरत से ताकती मुझे दीवार जेल की।
हम जिंदगी से तंग हैं, तिस पर भी आशना—
कहते हैं—और देखिएगा धार तेल की।
जकड़े गए हैं किस तरह हम गम में क्या कहें
बल खा के चढ़ गया है गम मानिंद बेल की।
खाकी को रिहाई अता दोनों जहां से कर—
आ ऐ अजल तू फाँदकर दीवार जेल की।'

□

★ जगतसिंह

लाहौर के मोची दरवाजे के पास एक मकान में रासबिहारी बोस और करतारसिंह सराबा चारपाइयों पर उदास लेटे हुए थे। गदर आंदोलन विफल हो चुका था और क्रांतिकारियों की धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ हो रही थीं। कल तक जो लोग गदर में भाग ले रहे थे, उन्हींमें से फूट-फूटकर लोग पुलिसवालों के साथ मिल रहे थे और उन्हें क्रांतिकारियों के पते-ठिकाने बताकर उन्हें गिरफ्तार करा रहे थे। करतारसिंह को चिंता यह थी कि रासबिहारी बोस को सुरक्षित रूप से बाहर कैसे भेजा जाए।

पहले तीन क्रांतिकारियों को लाहौर से बाहर भेजने का निश्चय किया गया।

योजना यह थी कि यदि वे सुरक्षित रूप से निकल गए तो फिर रासबिहारी बोस को भेजा जाएगा। जानेवाले तीन क्रांतिकारियों में एक सरदार जगतसिंह थे और दो उनके साथी थे। जगतसिंह अमेरिका में अपना कारोबार छोड़कर गदर पार्टी के साथियों के साथ भारत आ पहुँचे थे।

जगतसिंह

क्रांतिकारियों का ताँगा शहर से बाहर हुआ तो उन्होंने चैन की साँस ली और सोचा कि बिना गिरफ्तार हुए स्टेशन पहुँचे जाते हैं। उनकी यह सुखद आशा शीघ्र ही दु:खद अंधकार में विलीन हो गई, जब दो पुलिसवालों ने उनके ताँगे को रुकवा लिया। वे बोले—

''थाने में चलकर अपना नाम-धाम लिखाओ, तब आगे जा सकोगे।''

थाने में जाने का मतलब था, वहीं गिरफ्तार हो जाना; क्योंकि गदर के वातावरण के कारण थाने पर सख्त हिदायत थी कि कोई भी व्यक्ति और विशेष रूप से कोई भी सरदार बिना तलाशी दिए स्टेशन न जाने पाए। इन लोगों के पास तो हथियार भी थे। जगतसिंह ने पुलिसवालां को मनाया—

''थाने पर क्यों ले जाते हो, हवलदार साहब! आज तक तो हमने थाने का मुँह नहीं देखा। अरे भाई, नाश्ते-पानी के लिए कुछ ले लो और हमें अपने रास्ते जाने दो। गाड़ी छूट गई तो हमारा बहुत नुकसान हो जाएगा। तुम्हें सलाम करते हैं, भैया, हमें जाने दो।''

पुलिसवालों पर इसका कोई असर नहीं हुआ; क्योंकि उन दिनों बहुत सख्ती चल रही थी। हुज्जत होते देखकर दो पुलिसवाले और भी ताँगे की तरफ आने लगे थे। जगतसिंह ने स्थिति की गंभीरता का अनुभव किया और देर करना उचित नहीं समझा। पिस्तौल निकालकर उन्होंने धाँय! धाँय! शुरू कर दी और दो पुलिसवाले वहाँ लुढ़क गए। ताँगे से उतरकर वे लोग भी इधर-उधर भागे। पुलिस ने उनका पीछा किया। एक क्रांतिकारी बचकर साफ निकल गया, पर एक पकड़ लिया गया। जगतसिंह भी करीब-करीब भाग निकले थे; पर उन्हें प्यास परेशान कर रही थी। एक स्थान पर नल देखकर पानी पीने लगे। वे क्रांतिकारियों में सबसे ज्यादा डील-डौलवाले व्यक्ति थे। घटना की सनसनी फैल ही चुकी थी। उन्हें पानी पीते देख उनसे भी तगड़े एक मुसलमान ने उनके पैरों को अपनी बाँहों में जकड़ लिया।

जगतसिंह गिर पड़े। इधर-उधर से और लोग भी दौड़ पड़े और उन्हें पकड़ लिया गया। पुलिस उन्हें गिरफ्तार करके ले गई।

गदर आंदोलन का एक रत्न फाँसी का फंदा चूमकर शहीदों में अपना नाम लिखा गया।

□

★ जलेश्वरसिंह

''तुम मुझे फुसलाने की कोशिश मत करो। मैं कई वर्षों से बरतानिया हुकूमत का नमक खा रहा हूँ। मैं उसके प्रति गद्दारी नहीं कर सकता। मैं तो तुम्हींको यह सलाह देना चाहता हूँ कि तुम क्रांति का यह रास्ता छोड़ दो। इस रास्ते पर चलकर या तो तुम गोली खाओगे या फाँसी के फंदे पर झूलोगे। तुम अपने माता-पिता को दुःख क्यों देना चाहते हो?''

''माता का दुःख ही तो नहीं देखा जा रहा, हवलदार साहब! भारत माता पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी रहे और उसके बेटे होकर हम उसके लिए कुछ भी न करें, यह हमारे लिए कितने शर्म की बात है!''

''लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं? जिसके राज में सूरज कभी नहीं डूबता, हम लोग उसका क्या बिगाड़ सकते हैं?''

''हवलदार साहब! आप यहीं गलती कर रहे हैं। हिंदुस्तान में अंग्रेजों की संख्या है ही कितनी! वे लोग तो आप लोगों के बल पर ही यहाँ हुकूमत कर रहे हैं। अगर हिंदुस्तानी फौजें उनके खिलाफ बगावत कर दें, तो उन्हें यहाँ से अपने बोरिए-बिस्तर उठाने पड़ेंगे।''

''पर भाई, मेरे अकेले के करने-धरने से क्या होता है? मैं अगर तुम्हारी बात मान भी लूँ तो इससे भारत माता कैसे आजाद हो जाएगी?''

''यदि आप बात मान लेते हैं तो आप अपने विश्वास में उन लोगों को ले सकते हैं, जिनपर आपका असर है। इसी प्रकार धीरे-धीरे हम सभी फौजों को अपने पक्ष में कर सकते हैं। जहाँ-जहाँ अंग्रेजों की छावनियाँ हैं, हमारे दूसरे साथी वहाँ काम कर रहे हैं। कभी-कभी आप भी अपनी ड्यूटी से छुट्टी लेकर बाहर उन छावनियों में जा सकते हैं, जहाँ आपके रिश्तेदार या मित्र हैं।''

''मेरे रिश्तेदार तो ज्यादातर फौज में ही हैं और वे मुझपर बहुत भरोसा भी करते हैं। मैं तुम्हारी बात मान गया और तुम्हारी योजना के अनुसार ही काम करूँगा।

बात पक्की रही।''

ये बातें हो रही थीं बनारस की एक छावनी के हवलदार जलेश्वरसिंह और एक नौजवान क्रांतिकारी में। हवलदार जलेश्वरसिंह ने बनारस स्थित अन्य फौजी छावनियों में जाकर भी गुपचुप काम किया और विद्रोह के लिए उसने कइयों को तैयार कर लिया। कुछ दिन बाद उसका तबादला सातवीं राजपूत रेजीमेंट में दिल्ली हो गया। इस अवसर का उसने लाभ उठाया और धीरे-धीरे अन्य हवलदारों व नायकों को बगावत के लिए तैयार करने लगा।

हवलदार जलेश्वरसिंह के मनसूबे पूरे नहीं हो सके। एक गद्दार ने उसके साथ विश्वासघात किया। वह ऊपर से तो हवलदार से मिला रहा, पर उसके मंतव्यों की सूचना फौज के बड़े अधिकारी को देता रहा। संदेह पुष्ट हो जाने पर एक दिन हवलदार जलेश्वरसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। २८ फरवरी, १९१६ को उसका कोर्ट मार्शल हुआ। उसपर आरोप लगाया गया—

''१ जनवरी से १५ अप्रैल, १९१५ तक तुम बनारस में गदर पार्टी के लोगों के साथ मिलकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत करते रहे और दिल्ली में आकर भी तुमने हुकूमत की जड़ें काटने का काम प्रारंभ कर दिया। तुमने वफादारी की शपथ तोड़ी है और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की है। क्यों न इसके लिए तुम्हें कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाए?''

हवलदार जलेश्वरसिंह का उत्तर था—

''जिसे आप बगावत कहते हैं, मैं उसे अपना फर्ज समझता हूँ। मैं अपने उन फौजी पुरखों की भूल को सुधार रहा हूँ, जिन्होंने १८५७ में स्वातंत्र्य सेना का साथ न देकर गद्दारी की थी। यदि आप मातृभूमि को मुक्त करने के प्रयत्नों को अपराध कहते हैं तो मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने यह अपराध किया है। मैं हर परिणाम के लिए तैयार हूँ।''

कोर्ट मार्शल के फैसले के अनुसार, हवलदार जलेश्वरसिंह को दिल्ली की सिविल जेल में २१ मार्च, १९१६ को फाँसी दे दी गई।

□

★ जवंदसिंह

वह गदर की लहर थी, जिसने अमेरिका व कनाडा में रहनेवाले कमजोर-से-कमजोर व्यक्ति को भी दिलेर बना दिया था और उसमें मर मिटने की भावना भर

दी थी। फिर जवंदसिंह तो जवान था और शेरदिल था, वह क्यों न आजादी के युद्ध में कूदता! मातृभूमि को दासता से मुक्त करने के लिए वह भी अपना सिर देकर कीमत अदा करना चाहता था। गदर आंदोलन का वह भी एक दृढ़ स्तंभ था।

देशद्रोही कृपालसिंह की कृपा से बननेवाला काम बिगड़ गया और देशभक्तों की गिरफ्तारियाँ होने लगीं तथा फाँसी के फंदे उनकी गरदनों में डाले जाने लगे। और लोग तो हाथ आए, पर जवंदसिंह बहुत समय तक पुलिस को छकाते रहे। आखिरकार मई १९१७ में वे पुलिस के हाथों में पड़ गए और उनपर अभियोग चलाने के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल स्थापित किया गया।

'लाहौर षड्यंत्र केस' के अंतर्गत जो अभियोग अन्य व्यक्तियों पर लगाए गए थे, वे जवंदसिंह पर भी लगाए गए कि किस प्रकार उसने अमेरिका की गदर पार्टी में सक्रिय भाग लिया और किस प्रकार वह विद्रोह की आग उगलता हुआ भारत जा पहुँचा। गदर पार्टी के लोगों ने जो डाके डाले थे, उनमें भी जवंदसिंह की उपस्थिति सिद्ध की गई और सबसे अधिक हत्याएँ करने के आरोप उसपर लगाए गए।

आरोप-प्रत्यारोप की प्रक्रिया में जवंदसिंह ने कोई रुचि नहीं दिखाई; क्योंकि अपना परिणाम उसे मालूम था और उस पुरस्कार को पाने के लिए वह लालायित था। पुलिस द्वारा लगाए गए सात अभियोगों में से उसके विरुद्ध पाँच अभियोग सिद्ध हो गए और अदालत ने ३० मई, १९१७ को फाँसी के दंड का निर्णय उसे सुना दिया। इस निर्णय को सुनकर उसने उसी प्रकार हर्ष व्यक्त किया जैसे कोई परीक्षार्थी मैरिट लिस्ट में अपना नाम देखकर अपनी खुशी जाहिर करता है।

१० जून, १९१७ को लाहौर सेंट्रल जेल में वीर जवंदसिंह ने फाँसी का फंदा चूमकर देशभक्ति का पुरस्कार प्राप्त किया।

□

★ जोरावरसिंह बारहठ

❖ ❖

जोधपुर राज्य के कामदार जोरावरसिंह बारहठ उस दिन जब अपने घर पहुँचे तो वे बड़े उदास थे। उनकी पत्नी अनूपकुँअर देवी जब जल-पात्र लेकर उनके सम्मुख पहुँचीं तो वह पात्र उठाते हुए जोरावरसिंह का हाथ काँप गया और वह पात्र उनके हाथ से गिर गया। अपने पति का यह हाल देखकर अनूपकुँअर देवी कुछ चिंतित हुईं और पूछने लगीं—

''क्या आज आपकी तबीयत खराब है? कहीं आपको ज्वर तो नहीं है?''

''नहीं, मेरी तबीयत भी खराब नहीं है और मुझे ज्वर भी नहीं है।''

''तो फिर आप इतने उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं और जल-पात्र उठाते समय आपका हाथ क्यों काँप गया?''

''जो बात है, देवी, वह मुझसे कहते नहीं बन रही है। मैं बहुत गंभीर दुविधा की स्थिति में हूँ।''

''क्या आपकी दुविधा का कारण मैं हूँ? यदि ऐसी बात है तो आप निश्चिंत होकर कह डालिए। मैं हर बात सुनने के लिए तैयार हूँ।''

''बात यह है, अनूपकुँअर, कि राजपूत की यदि किसीसे दुश्मनी है तो वह है गुलामी से। हम राजपूतों के होते हुए हमारा देश गुलाम रहे, यह हमारे लिए कलंक की बात है। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मैं एक क्रांतिकारी दल के साथ अपना संबंध जोड़ बैठा हूँ, जिसने कुछ समय पूर्व बिहार में वाइसराय के ऊपर बम फेंका था। उस मामले में फरार कैदी के रूप में मेरे विरुद्ध भी प्राणदंड की सजा सुनाई गई है।''

''पर आपको तो यहाँ उस कांड के नाते कोई भी नहीं जानता, फिर आपको चिंतित होने की क्या आवश्यकता है?''

''चिंतित होने की आवश्यकता इसलिए आ पड़ी कि एक देशद्रोही ने सरकार को यह भेद भी दे दिया है कि मैं जोधपुर राज्य के रनिवास में कामदार के पद पर काम कर रहा हूँ। अब बहुत शीघ्र ही मुझे यहाँ से गिरफ्तार कर लिया जाएगा।''

''तो क्या आप अपनी गिरफ्तारी या प्राणदंड के भय के कारण चिंतित हैं?''

''नहीं अनूपकुँअर! एक राजपूत को अपने प्राणों का मोह कभी नहीं होता। मेरी चिंता का कारण तो यह है कि तुम अकारण ही विपत्ति में पड़ जाओगी।''

''तो क्या आपके लिए मेरा धर्म सुख के दिनों तक ही सीमित था? क्या आपकी विपत्ति से मेरा कोई वास्ता नहीं है?''

''मेरे दुःख का कारण तो यही है कि मैं तुम्हें दुःखों के सागर में धकेल रहा हूँ। चाहे मुझे प्राणदंड मिले या मैं फरार होकर रहूँ, दोनों ही स्थितियों में तुम्हारे दुःखों की सीमा नहीं।''

''जब आपके साथ मैंने इतने सुख उठाए हैं तो फिर मैं दुःखों को कैसे नकार सकती हूँ। मुझे तो इस बात का दुःख है कि आपने अपनी क्रांतिकारी योजना में मुझे सम्मिलित क्यों नहीं किया?''

''जो हो गया, सो हो गया, अनूपकुँअर! पर अब बताओ कि मुझे अब क्या

करना चाहिए?''

''कहीं आपके दिल में कोई कमजोरी तो पैदा नहीं हो रही? कहीं मेरे कारण आप क्षमा-प्रार्थना की बात तो नहीं सोच रहे? यदि यह बात हुई तो मैं कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगी।''

''नहीं, अनूपकुँअर, तुम्हारा पति कायर नहीं है। वह एक क्षत्राणी को कलंकित करने की बात नहीं करेगा, और फिर मेरे सामने मेरे बड़े भाई ठाकुर केशरीसिंह का उदाहरण भी तो है। देशभक्ति के पुरस्कार में उन्हें भी तो आजन्म कारावास की सजा मिली है। उनके मन में भी तो कभी माफी माँगने का विचार नहीं आया।''

''हाँ, अभी तक तो मैं अपने जेठजी पर ही गर्व करती थी, अब मेरे गर्व के दो कारण बन जाएँगे। और फिर आपका भतीजा प्रतापसिंह भी तो आप लोगों के चरणचिह्नों पर चलने की तैयारी में है। सुना है कि वह घर से गायब रहकर जाने किन-किन लोगों के साथ रहता है। मुझे तो लगता है कि वह भी क्रांति मार्ग पर चलने की तैयारी कर रहा है।''

''सचमुच ही, अनूपकुँअर, हमारे लिए यह गर्व की बात होगी, यदि एक ही परिवार आजादी के यज्ञ में तीन आहुतियाँ देता है। पर मेरी योजना कुछ और ही है। यह ब्रिटिश हुकूमत मुझे आसानी से नहीं पकड़ सकती। मैं आजीवन फरार रहकर इस हुकूमत की नींद हराम करना चाहता हूँ। इस प्रकार तुम्हारा सिंदूर भी तो उजड़ने से बच जाएगा।''

''मैं आपके साहस की दाद देती हूँ। मैं आपको यह विश्वास भी दिलाती हूँ कि कोई भी स्थिति मुझे कभी विचलित नहीं कर सकेगी। मेरे कारण आप अपने हृदय में कोई भी कमजोरी न आने दें।''

और इस प्रकार क्रूर विवशताओं ने दो हंसों के उस जोड़े को विछोह का अभिशाप दे दिया। निरंतर छब्बीस वर्ष तक जोरावरसिंह वनों और पर्वतों में भटकते रहे। कभी उन्हें भोजन मिलता था और कभी नहीं। वे ब्रिटिश पुलिस के साथ आँखमिचौनी खेलते रहे, उसे छकाते रहे; पर उसके हाथ नहीं आए। एक बार तो घेर लिये जाने पर वे दुमंजिले से कूदकर उसके चंगुल से निकल गए।

अनूपकुँअर देवी के दुःखों की भी कोई सीमा नहीं थी। सभी प्रकार की चल और अचल संपत्ति जब्त हो जाने के कारण उनके जीवनयापन का भी कोई साधन नहीं रहा। वे अपने मायके के गाँव 'खरकटा' चली तो गईं, पर वहाँ रहकर वे तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती रहीं। कभी-कभी उनके पति वेश बदलकर उनसे मिल आते थे; पर वह मिलन भी क्षणिक और साधनापूर्ण होता था।

कहते हैं कि जिसके भाग्य में सुख नहीं होता, उसे कोई सुख दे ही नहीं सकता। यह बात जोरावरसिंह के जीवन में चरितार्थ हुई। जब उनके बड़े भाई केशरीसिंह बारहठ आजन्म कारावास से छूटे तो उन्होंने कांग्रेस के तत्कालीन नेताओं से मिलकर अपने भाई जोरावरसिंह का वारंट रद्द कराने का बहुत प्रयत्न किया। वे बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बिहार के मुख्य सचिव श्रीकृष्णनारायण सिंह एवं गृह सचिव अनुग्रहनारायण सिंह से मिले और अपने भाई का वारंट रद्द कराने की उन्होंने जोरदार कोशिश की। उनको अपने प्रयत्नों में सफलता मिलने ही वाली थी कि क्रूर काल ने निमोनिया का रूप धारण करके उनके भाई जोरावरसिंह को इस दुनिया से उठा लिया।

क्या स्वाधीन भारत जोरावरसिंह और उनकी पत्नी अनुपकुँअर देवी की तपस्या का कभी मूल्यांकन करेगा!

□

★ बाबा ज्वालासिंह

बाबा ज्वालासिंह का सिद्धांत था—खूब कमाओ और खूब खर्च करो। यदि खर्च करने के लिए कोई अच्छा कारण मिल जाता था तो बाबा ज्वालासिंह अपने प्रति बेरहम होकर खर्च करते थे। कनाडा के वैंकोवर नगर में जब गुरुद्वारे का निर्माण होने लगा तो बाबा ज्वालासिंह जी खोलकर पैसा देने लगे।

देने के लिए बाबा ज्वालासिंह के पास इतना धन आया कहाँ से? वे न तो बहुत बड़े व्यापारी थे और न बहुत बड़े किसान। अपना घर पंजाब छोड़कर रोजी-रोटी की तलाश में बाबा ज्वालासिंह अपने पिता के साथ भारत से कनाडा जा पहुँचे। कनाडा में उन दिनों अधिकतर भारतीय लोग मेहनत-मजदूरी का ही काम करते थे। कुछ लोग बगीचों में से फल तोड़ने और कुछ खेतों में से आलू उखाड़ने के काम में लग जाते थे। एक बात अवश्य है कि भारत के सिखों का मुकाबला कोई अन्य जाति कर नहीं पाती थी, इसलिए ये लोग जहाँ भी जाते, फलने-फूलने लगते थे और अपनी बस्तियाँ बसा लेते थे तथा अन्य जातियों पर हावी हो जाया करते थे।

बाबा ज्वालासिंह ने पहले तो कनाडा में आलू खोदने का काम प्रारंभ किया और धीरे-धीरे आलू खुदवाने के ठेके लेने लगे। इस प्रकार उन्होंने काफी पैसा कमा लिया।

सन् १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया तो अमेरिका और कनाडा के

भारतीय गदर पार्टी के आह्वान पर देश को आजाद करने के इरादे लेकर हजारों की संख्या में भारत पहुँचने लगे। ऐसे अवसर पर बाबा ज्वालासिंह क्यों चूकने वाले थे। कनाडा में अपनी गाढ़ी कमाई के तीस हजार रुपए और कुछ हथियार लेकर वे भी भारत को चल दिए। एक कनाडियन ने बाबा ज्वालासिंह से पूछा—

"तुम यहाँ इकट्ठी की गई अपनी संपत्ति क्यों बेच रहे हो?"

बाबा ज्वालासिंह ने उत्तर दिया—

"भारत नाम की अपनी बड़ी संपत्ति को मुक्त करने के लिए।"

ऐसे ही अरमान लेकर बाबा ज्वालासिंह कनाडा से भारत पहुँचे। भारत पहुँचने पर जहाज से उतरते ही उनकी तलाशी ली गई। तीस हजार रुपए उनकी खून-पसीने की कमाई ब्रिटिश हुकूमत ने जब्त कर ली और बलपूर्वक विशेष गाड़ी से उन्हें पंजाब भेजकर एक जेल में बंद कर दिया गया। 'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' के अंतर्गत मुकदमा चलाकर, उन्हें आजीवन कालापानी की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया।

दो-चार-छह वर्ष नहीं, जीवन और जवानी के मूल्यवान् अठारह वर्ष बाबा ज्वालासिंह ने जेल की चक्कियाँ और कोल्हू चलाते हुए बिताए। आजादी के उस मतवाले का मन फिर भी नहीं टूटा।

सन् १९३३ में जेल से छूटने पर बाबा ज्वालासिंह किसानों को संगठित करने में जुट गए। उनकी सभा में पचास-पचास हजार किसान उपस्थित होते थे।

किसान संगठन के अभियान में ही सन् १९३८ में एक मोटर दुर्घटना में क्रांतिवीर बाबा ज्वालासिंह का निधन हो गया।

□

★ ज्वालासिंह ★ बंतासिंह धामियाँ ★ वर्यामसिंह धुग्गा

पंजाब की घुड़सवार पुलिस की एक टुकड़ी जंगल में एक क्रांतिकारी को तलाश कर रही थी। उस क्रांतिकारी के लिए सरकार ने काफी इनाम भी घोषित कर रखा था। उस घुड़सवार टुकड़ी को वह क्रांतिकारी नहीं मिला। वे लोग लौटने के लिए एक स्थान पर एकत्र हुए। जहाँ वे लोग खड़े हुए थे, वहीं किसी झाड़ी में वह क्रांतिकारी भी छिपा हुआ था। जब उसने देखा कि वे लोग उसकी तलाश में निराश होकर लौट रहे हैं तो वह झाड़ी से बाहर आकर अपनी बंदूक लिये हुए पुलिस के जवानों के सामने खड़ा हो गया और उनसे बोला—
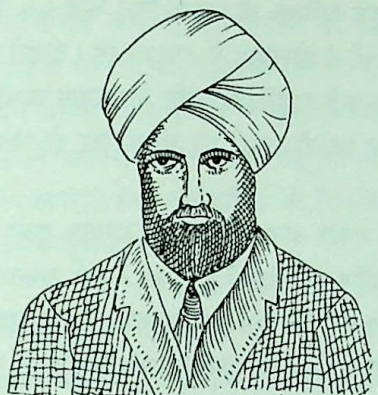
ज्वालासिंह
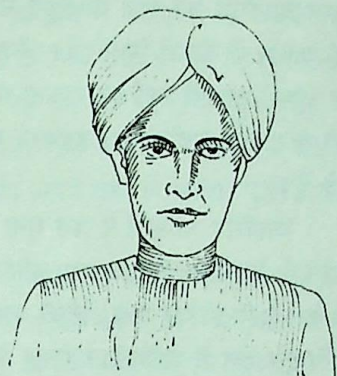
बंतासिंह धामियाँ

''अजी, इतने मायूस होकर क्यों जा रहे हैं! लीजिए, मैं आप लोगों के सामने आ गया हूँ। आप चाहें तो मुझे मार दीजिए या मुझे गिरफ्तार करके ले चलिए।''

उसे इस प्रकार अचानक सामने आया हुआ देखकर घुड़सवार पुलिस के जवान भौंचक रह गए। यद्यपि वह एक था और वे अनेक थे, पर फिर भी वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे; क्योंकि बंदूकें उनके कंधों पर टँगी हुई थीं और वे लोग तलाशी की औपचारिकता ही तो पूरी कर रहे थे। उनके मुखिया ने क्रांतिकारी को उत्तर दिया—

''अजी, न तो हम आपको मारने आए हैं और न गिरफ्तार करने। आप अपना काम कीजिए और हम अपना काम करेंगे। आपकी बदौलत ही तो हम लोगों की कद्र हो रही है और हम भी सरकार से बड़ी-बड़ी तनख्वाहें वसूल कर रहे हैं।''

यह कहकर घुड़सवार पुलिस के जवान आगे बढ़ गए। ऐसा आतंक था उस क्रांतिकारी का पूरे इलाके में। उस क्रांतिकारी का नाम था बंतासिंह धामियाँ। पुलिस और फौज के लोग उससे भय खाते थे। एक दिन बंतासिंह के मन में लहर आई कि अपने पास एक घोड़ा होना चाहिए। भला मोल-भाव कहाँ करते फिरें, एक दिन अकेले ही छावनी में घुस गए। पहले तो पहरेदार की बंदूक छीन ली तथा उसके साथ घुड़शाला में गए और जो घोड़ा पसंद किया वह खोल लाए। घोड़ा भी मिला और उसके साथ घोड़े की रखवाली के लिए बंदूक भी।

बंतासिंह 'धामियाँ कलाँ' गाँव के रहनेवाले थे और धामियाँ के होने के कारण लोग उन्हें बंतासिंह धामियाँ के नाम से पुकारते थे। उनका जन्म सन् १९०० में हुआ था। पढ़ने के लिए गाँव के स्कूल में बिठाए गए; पर पढ़ने की अपेक्षा

बालक बंतासिंह की रुचि खेलकूद में बहुत अधिक थी। कुछ दिन बाद ५५ नं. सिख पल्टन में नौकरी मिल गई। फौज में भी वे खेलकूद में अगुआ रहे। दौड़ने में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। अपनी साहसिक प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी वे रात में कहीं डाका डालकर सुबह अपनी ड्यूटी पर भी हाजिर हो जाया करते थे।

बंतासिंह धामियाँ ने जब सुना कि बब्बर अकाली दल का संगठन हुआ है तो उनकी देशभक्ति ने जोर मारा और वे फौज की नौकरी छोड़कर बब्बर अकाली दल के सदस्य हो गए तथा अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें उखाड़ने के काम में लग गए। यद्यपि इस दल में सम्मिलित होकर वे अपनी पिछली गलतियों का प्रायश्चित्त ही कर रहे थे, पर कभी-कभी पिछले संस्कार जोर मार देते और वे कभी-कभी किसी दल के साथ कोई डाका भी मार आते थे। उस दिन वे २ मार्च, १९०३ को 'जमशेर' नामक स्थान के स्टेशन मास्टर के घर डाका मारने गए। उनके एक साथी ने गृह स्वामिनी के प्रति कुछ अभद्र व्यवहार किया। वह भागकर उस स्थान पर पहुँची जहाँ बंतासिंह तैनात थे। वह आभूषण भी पहने हुए थी। बंतासिंह उससे बोले—

''माँ! तुम ये जेवर अपने हाथ से उतारकर हमें दे दो, हम तुम्हें नहीं छुएँगे।''

यह सुनकर वह महिला रोकर कहने लगी—

''तुम तो यह महात्मापन दिखा रहे हो और तुम्हारा साथी मुझपर कुदृष्टि डाल रहा है।''

बंतासिंह से यह सहन नहीं हुआ। उस महिला को लेकर वे अपने उस साथी के पास गए और अपना गँड़ासा लेकर उसकी गरदन पर वार किया। गँड़ासा गरदन पर पड़े, इसके पहले ही उनके दूसरे साथी ने उनका हाथ पकड़कर खींच लिया और बहुत अनुनय-विनय करके अपने साथी की जान बचाई। बंतासिंह ने उसे तभी बख्शा, जब उस महिला से उसने माफी माँगी।

बब्बर अकाली दल में भरती हो जाने के पश्चात् बंतासिंह की साहसिक प्रवृत्ति को एक नया मार्ग मिल गया। वे 'सुधार' कार्य के अंतर्गत देशद्रोहियों को मौत के घाट उतारने लगे। बूटासिंह नाम का एक नंबरदार क्रांतिकारियों की सूचनाएँ पुलिस को देता रहता था। एक दिन बंतासिंह ने उसके घर हमला करके उसे ठिकाने लगा दिया। यह पुरस्कार और भी कई गद्दारों को उन्होंने दिया।

बंतासिंह की इन साहसिक योजनाओं के कारण पुलिस भी उनसे अपना संबंध जोड़ने के लिए व्यग्र हो उठी। उनके लिए पुरस्कार भी घोषित किए गए। पुलिस दूसरी तरह से भी उनके ऊपर जाल फेंक रही थी। एक दिन पुलिस ने

जगतसिंह नाम के एक व्यक्ति को किसी अपराध में पकड़ा। वह व्यक्ति छूटना चाहता था। पुलिस उसे एक शर्त पर छोड़ने के लिए राजी हो गई कि तुम बंतासिंह एवं उसके साथियों को गिरफ्तार करा दो। वह इस शर्त पर राजी होकर छूट गया। उसने बंतासिंह एवं उनके साथियों से दोस्ती गाँठ ली और एक दिन बंतासिंह, ज्वालासिंह तथा वर्यामसिंह को निमंत्रित कर अपने यहाँ ले आया। पुलिस को भी उसने सूचना भेज दी।

पुलिस ने भारी संख्या में पहुँचकर 'मुंडेर' नाम के उस गाँव को घेर लिया। जगतसिंह अपने मकान पर मेहमानों को टिकाकर स्वयं वहाँ से खिसक गया। क्रांतिकारियों ने देखा कि वे लोग घिर गए हैं और घेरे को तोड़कर निकलना संभव नहीं है तो उन्होंने जमकर युद्ध करने का निश्चय कर लिया। वे एक चौबारे पर जा चढ़े और वहाँ से पुलिस का मुकाबला करने लगे। पुलिस सभी तरफ से उनपर गोलियाँ छोड़ रही थी; पर वह उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पा रही थी। वे लोग तो अपने आपको किले के अंदर समझ रहे थे और घात लगा-लगाकर वे भी पुलिस पर गोलियाँ छोड़ रहे थे। घंटों तक दोनों ओर से गोलियों का आदान-प्रदान हुआ। जब पुलिस ने देखा कि क्रांतिकारी किसी भी प्रकार काबू में नहीं आ रहे तो उन्होंने एक मकान की छत पर मशीनगन रखकर गोलियों की भयंकर वर्षा प्रारंभ कर दी। मशीनगन भी उन वीरों का कुछ नहीं बिगाड़ सकी। आखिर परेशान होकर पुलिस ने उस मकान में आग लगाने का निश्चय कर लिया, जिसे किला बनाकर क्रांतिकारी लोग घंटों से पुलिस को छका रहे थे। प्रश्न यह श कि मकान में आग लगाने जाकर कौन अपनी जान गँवाए! आखिर जो युक्ति उन्होंने अपनाई, वह यह थी कि आग बुझानेवाला एक बड़ा पंप वे लोग लाए और उससे आग लगाने का काम लिया। भारी मात्रा में मिट्टी का तेल उस पंप के द्वारा क्रांतिकारियों के गढ़ पर फेंका गया। फिर कुछ जलते हुए पलीते भी उस ओर फेंके गए। अब तो क्रांतिकारियों के किले से लपटें उठने लगीं। क्रांतिकारियों ने बाहर निकलकर उन सैनिकों को गोलियों का निशाना बनाना चाहा, जो पंप की सहायता से तेल उलीच रहे थे। इस प्रयत्न में दो क्रांतिकारी पुलिस की गोलियों से घायल हो गए। ज्वालासिंह को एक घातक गोली लगी और वे गिरकर अपनी साँसें गिनने लगे। बंतासिंह ने मकान से निकल भागने का प्रयत्न किया; पर गोली खाकर वे भी गिर पड़े। रह गए केवल वर्यामसिंह, जो अपने साथियों को गिरा हुआ देखकर और भी भयंकरता से युद्ध करने लगे। वर्यामसिंह अब आगे बढ़-बढ़कर पुलिस के लोगों पर निशाना साधने लगे। बंतासिंह ने अपने साथी वर्यामसिंह को समझाया—

''भाई! कम-से-कम तुम तो जीवित निकल जाओ, जिससे दुनिया को बता

सको कि कितनी वीरता से लड़कर हम लोग शहीद हुए हैं और कभी अवसर पाकर हमारी मौत का बदला भी तुम पुलिस से ले सको।''

बड़ी मुश्किल से वर्यामसिंह इस प्रस्ताव से सहमत हुए। जब वे भारी दिल से वहाँ से जाने लगे तो अपना भरा हुआ रिवॉल्वर उनकी ओर बढ़ाते हुए अत्यंत आग्रह, अनुनय तथा अधिकार के स्वर में बंतासिंह ने उनसे एक बात और कही—

''मेरे प्यारे भाई! तुमसे मेरी आखिरी प्रार्थना यह है कि तुम इस रिवॉल्वर की एक गोली मेरे सिर या मेरी छाती में मारते जाओ, जिससे मैं दुश्मन के हाथों पड़कर बंदर की तरह न नचाया जाऊँ या फिर उसकी गोली से घायल होकर तड़प-तड़पकर न मरूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा उद्धार अपने साथी के द्वारा ही हो।''

वर्यामसिंह के सामने प्रस्ताव गले में अटके हुए सोने के हँसिए के समान था, जिसे न वे निगल सकते थे और न बाहर निकाल सकते थे। उनका एक मन करता था कि वे अपने इतने प्रिय साथी की अंतिम इच्छा की पूर्ति करें; पर उनका दूसरा मन अपने ही साथी की हत्या करने से उन्हें रोकता था। आखिर उन्होंने रिवॉल्वर अपने साथी को लौटाते हुए कहा—

''भाई, परीक्षा मत लो। जीवन में कितने लोगों पर गोलियाँ चलाई हैं; पर अपने भाई से अधिक प्यारे अपने साथी पर गोली चलाऊँ, यह सोचते ही मेरा कलेजा काँपने लगा है। मैं तुम्हारी अंतिम इच्छा को ठुकराने का पाप तो ले सकता हूँ, परंतु तुमपर गोली नहीं चला सकता। यह लो अपना रिवॉल्वर और जब उचित समझो, अपने हाथ से गोली मार लेना।''

कितना अद्‌भुत था वह दृश्य! एक साथी मरा पड़ा है, दूसरा साथी मरणपथ पर अग्रसर हो रहा है और दोनों की आँखों से आँसू बह रहे हैं। उधर पुलिस की ओर से गोलियों की वर्षा हो रही है। वर्यामसिंह ने निष्ठुर होकर, अपने साथी का मस्तक अपनी छाती से लगाकर रोते-रोते उससे बिदा ली।

वर्यामसिंह कूदते-फाँदते चलती हुई गोलियों में से बेदाग बच निकले। पीछा करनेवाले दो सैनिकों को उन्होंने अपनी गोलियों से घायल कर दिया और फिर किसी अन्य ने उनका पीछा करने का साहस नहीं दिखाया।

जिस मकान में घायल बंतासिंह पड़े थे, वह धू-धू करके जल रहा था। मकान जल जाने पर जब पुलिस वहाँ पहुँची तो उसे बंतासिंह का शव ही मिला। वह तरुण क्रांतिकारी अपनी वीरता का इतिहास दुनिया के हाथों में देकर उससे बिदा ले चुका था।

मुंडेर युद्ध के पश्चात् वर्यामसिंह ने लायलपुर जिले को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाया। उन्होंने सोच लिया कि मरना तो है ही, अतः बब्बर अकाली

आंदोलन का कार्य तेजी से क्यों न चलाया जाए? बस, फिर क्या था, वे पूरी तरह से देश-कार्य में डूब गए। आज यदि वे एक गाँव में लोगों के सामने व्याख्यान दे रहे हैं तो कल किसी गद्दार के 'सुधार' के लिए जा रहे हैं और उससे अगले दिन शस्त्र-संग्रह के किसी अभियान में सम्मिलित हैं। इस प्रकार दिन बीतते-बीतते वह दिन भी आ गया, जब वर्यामसिंह स्वयं भी पुलिस के घेरे में आ गए और वीरगति प्राप्त करने के पहले कई लोगों को अच्छा सबक दे गए।

वह ८ जून, १९२४ का दिन था, जब वर्यामसिंह लायलपुर जिले के एक गाँव में अपने एक मित्र के घर ठहरे हुए थे। मित्र क्या, वह उनका निकट का संबंधी था; परंतु लोभ और स्वार्थ के वशीभूत होकर वह पुलिस के हाथों बिक चुका था। गाँव में प्रवेश करने के पहले उसने वर्यामसिंह से कहा—

''आप अपने हथियार यहाँ किसी खेत में रखकर मेरे साथ गाँव में चलिए। आपको हथियारों के साथ देखकर लोगों को संदेह होगा और कोई मुसीबत आ जाएगी।'' वर्यामसिंह उसकी बातों में आ गए और एक खेत में अपने हथियार रखकर अपने रिश्तेदार के साथ उसके घर चल दिए। कुछ देर उसके घर बैठे होंगे कि अचानक कहने लगे—

''भाई, मैं तो अपने हथियार उठाने जा रहा हूँ, पता नहीं क्यों, हथियारों के बिना मेरा मन नहीं मान रहा है।''

यह कहकर वर्यामसिंह अकेले ही उस खेत की तरफ बढ़ लिये, जहाँ फसल के बीच उन्होंने अपने हथियार छिपा रखे थे। उनके साथ उनके रिश्तेदार ने दगा किया था। योजना के अनुसार ही सारा काम करके उसने पुलिस को बुलवा रखा था। हथियारों पर तो पुलिस ने पहले ही कब्जा कर लिया था, जब वर्यामसिंह वहाँ पहुँचे तो वे भी पुलिस द्वारा घेर लिये गए। पुलिस सुपरिंटेंडेंट डी. गेल का विचार था कि वर्यामसिंह को जीवित गिरफ्तार किया जाए। उसने उन्हें ललकारते हुए कहा—

''वर्यामसिंह! अगर जिंदा रहना चाहते हो तो आत्मसमर्पण कर दो।''

वर्यामसिंह ने उत्तर दिया—

''अरे! जिंदा कोई कायर, बेशर्म या दगाबाज रहना चाहेगा। मैं तो लड़ते-लड़ते मरना चाहता हूँ; अगर हिम्मत है तो मेरे हथियार मुझे दो और फिर सब मिलकर मेरे साथ युद्ध करो।''

भला मि. डी. गेल यह मूर्खता क्यों करता! उसने झपटकर वर्यामसिंह को अपनी बाँहों में भर लिया। वर्यामसिंह ने अपनी कटार के कई वार उसके हाथों पर किए। डी. गेल ने देखा कि वर्यामसिंह छूटकर उन्हें जिंदा नहीं छोड़ेगा, अत: घायल

होकर वह खुद ही दूर जा खड़ा हुआ। जिस प्रकार कबड्डी के खेल में खिलाड़ी पाला देने जाता है, उसी प्रकार कई सिपाहियों ने वर्यामसिंह को पकड़ने का प्रयत्न किया; पर वे सब बुरी तरह घायल होकर लौटे।

जब देखा कि वह शेर किसी तरह भी काबू में नहीं आता है और वह कई लोगों को घायल कर चुका है, तो विवश होकर डी. गेल ने उसपर गोली चलाने का आदेश दे दिया। कई गोलियाँ सीने पर खाकर आखिर वह वीर इस दुनिया से बिदा हो गया। उसका शव लायलपुर पहुँचाया गया तो हजारों की संख्या में लोग उसके अंतिम दर्शन के लिए उमड़ पड़े।

वीर वर्यामसिंह का पूरा नाम वर्यामसिंह धुग्गा था। उसका जन्म सन् १८९३ में होशियारपुर जिले के 'धुग्गा' गाँव में हुआ था। शरीर बहुत सुगठित और दर्शनीय था। उसकी रुचि के अनुरूप फौज में उसे नौकरी मिली। नौकरी करते हुए एक दिन अपने एक दुश्मन से बदला लेने का विचार मन में आया। फौज में सायंकालीन हाजिरी देने के बाद आप खिसक गए। बीस मील पैदल चलकर वे अपने शत्रु के गाँव पहुँचे और उसे अपनी गोली का शिकार बनाया। वहाँ लोगों को वे अपना नाम-धाम भी बता आए। दुश्मन को ठिकाने लगाकर फिर बीस मील पैदल चलकर फौज में सुबह की हाजिरी भी दे दी। आपके विरुद्ध हत्या का मामला बन नहीं सका, क्योंकि शाम और सुबह दोनों ही हाजिरियाँ आपने कई लोगों के सामने स्वयं दी थीं। फौज की हाजिरी प्रामाणिक मानी गई।

ऐसे वीर वर्यामसिंह धुग्गा ने बब्बर अकाली दल से प्रेरित होकर, फौज की नौकरी छोड़कर देशसेवा का व्रत ले लिया और अपना एक उज्ज्वल इतिहास देश को दे गए।

□

★ तारिणीप्रसन्न मजूमदार ★ नलिनीकांत बागची
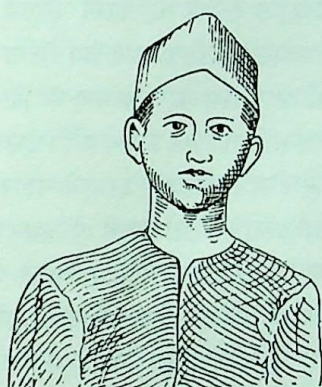
नलिनीकांत बागची
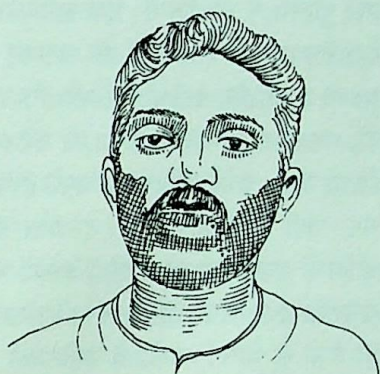
तारिणीप्रसन्न मजूमदार

कलकत्ता की पुलिस एक युवक क्रांतिकारी नलिनीकांत बागची के पीछे बुरी तरह पड़ गई। वह किसी भी मूल्य पर उसे गिरफ्तार कर लेना चाहती थी या उसे समाप्त कर देना चाहती थी और नलिनीकांत था, जो पुलिस को छका रहा था। कलकत्ता पुलिस के हौसले इसलिए और भी बढ़ गए थे, क्योंकि उसने मानिकतल्ला भवन के क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया था और कुछ को गोलियों से उड़ा दिया था। इने-गिने जो क्रांतिकारी बचे हुए थे, उनको ही पिंजड़े में बंद करने के लिए पुलिस विशेष यत्न कर रही थी। नलिनीकांत बागची उनमें से एक था।

क्रांतिकारियों ने विचार किया कि हममें से कुछ लोग थोड़े दिनों के लिए बंगाल से बाहर चले जाएँ तो अच्छा रहेगा; क्योंकि पुलिस यह समझेगी कि हमारी गतिविधियाँ बंद हो गई हैं और हम अवसर पाकर फिर पुलिस पर हावी हो जाएँगे। यही सोचकर नलिनीकांत बागची और उसके कुछ साथी बंगाल छोड़कर बिहार चले गए।

बिहार के भागलपुर नगर में नलिनीकांत बागची रहने लगा। उसने अपने बड़े-बड़े बाल कटवा डाले और वह बिहारियों जैसे छोटे-छोटे बाल रखने लगा। पढ़ने के लिए वह कॉलेज में भी भरती हो गया। वह मोटे कपड़े का कुरता पहनकर और फेंटेदार धोती पहनकर कॉलेज जाता था। चाल-ढाल और बोलचाल से वह पूरा बिहारी बन गया। इतना होने पर भी पुलिस को उसका सुराग मिला और उसे असम में गुवाहाटी जाना पड़ा। गुवाहाटी में पृथक्-पृथक् दो मकान लेकर क्रांतिकारी उनमें रहने लगे। अपनी ओर से वे लोग पूरी तरह से सतर्क रहते थे। बारी-बारी से एक व्यक्ति जागकर रात को पहरा देता था।

एक रात जिस मकान में नलिनीकांत बागची और उसके साथी सो रहे थे, उसे पुलिस ने घेर लिया। एक क्रांतिकारी जो पहरा दे रहा था, उसने पुलिस को देख लिया। अपने साथियों को जगाकर उसने सचेत कर दिया तथा तय किया कि बजाय इसके कि प्रतीक्षा करें और गिरफ्तार हों या पुलिस के आक्रमण के शिकार हों, पहला आक्रमण हम लोग ही करें और निकल भागने का प्रयत्न करें। ऐसा ही किया गया। सभी क्रांतिकारी अपने हथियारों से लैस होकर उस दरवाजे पर पहुँच गए, जहाँ से निकलना था। दरवाजा खोलकर उन्होंने पहले हल्ले में दस-पाँच गोलियाँ एक साथ छोड़ दीं, जिसका परिणाम यह निकला कि पुलिसवाले जान बचाकर इधर-उधर छिपने लगे। अवसर का लाभ उठाकर क्रांतिकारी लोग इतने में ही तेजी से भाग निकले। वे जाते-जाते भी गोलियाँ चलाते हुए जा रहे थे।

गुवाहाटी नगर से निकलकर क्रांतिकारियों का दल जंगल की तरफ चला गया। पुलिस का दल भी निरंतर उनका पीछा करता रहा। क्रांतिकारी कुछ दिन जंगल में ही रहे। एक दिन १० जनवरी, १९१८ को दिन के दो बजे का समय होगा, क्रांतिकारी भोजन करने बैठे ही थे कि उन्हें पुलिस के आदमी दिखाई दिए। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि पुलिसवाले सैकड़ों की संख्या में हैं और उन्हें घेर लिया गया है। भोजन छोड़कर वे लोग युद्ध करने में संलग्न हो गए। दोनों ओर से दनादन गोलियाँ चल रही थीं। क्रांतिकारियों की ओर से गोलियाँ कम संख्या में आते देख पुलिस ने अनुमान लगाया कि या तो उनमें से कुछ लोग समाप्त हो गए हैं या उनकी गोलियाँ चुक रही हैं। पुलिस अपना घेरा और तंग करती गई। अंत में उसने क्रांतिकारियों के छिपने के स्थान पर आक्रमण करके उसपर अधिकार कर लिया। तीन क्रांतिकारी खेत रहे थे और दो भाग चुके थे। बचकर भाग निकलनेवालों में नलिनीकांत बागची भी था।

नलिनीकांत बागची उस स्थान से सुरक्षित निकल तो गया, पर वह बहुत अशक्त था। तीन दिन पश्चात् भोजन मिलने वाला था कि पुलिस के आक्रमण से

वह भी मुँह तक आकर छिन गया। अगले तीन दिन और उसे जंगल में भटकना पड़ा। इस बीच उसे भोजन तो मिला ही नहीं, कोई जंगली कीड़ा उसके बदन से चिपक गया। पैदल चलकर ही वह बिहार की सीमा में प्रविष्ट हुआ और वहाँ से किसी प्रकार हावड़ा पहुँचा।

हावड़ा स्टेशन से बाहर निकलकर जब वह वृक्षों के एक झुरमुट के नीचे पहुँचा तो उसमें चलने-फिरने की शक्ति नहीं रह गई थी। जहरीले कीड़े का विष व्याप्त हो चुका था और उसके पूरे शरीर पर चेचक के दाने जैसे फफोले पड़ गए थे। भरी हुई पिस्तौल उसकी जेब के अंदर थी। वृक्ष के नीचे बैठते ही उसे बेहोशी आने लगी और लेटते ही वह बेहोश हो गया।

यह नलिनीकांत का सौभाग्य था कि उधर से उसका एक मित्र निकला। नलिनीकांत को उठाकर वह अपने घर ले गया। निर्धन तो वह था ही, डॉक्टर आदि के चक्कर में पड़कर नलिनीकांत का भेद खुल सकता था। उसके मित्र ने मट्ठे में हलदी मिलाकर उसके शरीर पर लेप करना प्रारंभ किया और खुराक के रूप में भी यही मट्ठा देता रहा। यह ओषधि नलिनीकांत के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। कुछ दिन में वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया।

अपने मित्र से बिदा लेकर नलिनीकांत ढाका चला गया। उस समय उसके परिचित कुछ क्रांतिकारी ढाका में रह रहे थे, जिनमें प्रसिद्ध क्रांतिकारी तारिणीप्रसन्न मजूमदार भी था। नलिनीकांत उन्हींके साथ रहने लगा।

१५ जून, १९१८ को पुलिस ने काल्ता बाजार स्थित क्रांतिकारियों के उस मकान को घेर लिया। उस समय उस मकान में तीन क्रांतिकारी थे। वे थे—तारिणीप्रसन्न मजूमदार, नलिनीकांत बागची और एक अन्य। पहले इन्हीं लोगों ने पुलिस पर गोलीवर्षा प्रारंभ की। पुलिस ने गोलियों का उत्तर गोलियों से दिया। पास के मकान से पुलिस के दो आदमियों ने क्रांतिकारियों के पास पहुँचने का प्रयास किया। इनमें से एक सिपाही था, जिसका नाम पातीराम था और दूसरा पुलिस का सब-इंस्पेक्टर था। क्रांतिकारियों ने अपनी गोलियों से दोनों को ही घायल कर दिया। अब क्रांतिकारी दरवाजा खोलकर एकदम बाहर भागे। बाहर पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें समर्पण के लिए ललकारा। नलिनीकांत ने अपनी एक गोली से साहब का टोप उड़ा दिया। बाहर पुलिस की संख्या अधिक थी। पुलिस की गोलियों से तारिणीप्रसन्न मजूमदार और नलिनीकांत बागची दोनों ही गिर पड़े। उनका साथी पकड़ा गया।

बग्घी में डालकर घायल क्रांतिकारियों और पुलिसवालों को मिटफोर्ड अस्पताल पहुँचाया गया। तारिणीप्रसन्न मजूमदार ने तो उसी दिन अस्पताल में दम

तोड़ दिया। नलिनीकांत बागची ने अगले दिन अर्थात् १६ जून, १९१८ को अपनी अंतिम साँस ली। सिपाही पातीराम की मृत्यु भी १६ जून को ही हुई। सब-इंस्पेक्टर पुलिस बच गया। जिस समय नलिनीकांत बागची अपनी अंतिम साँसें गिन रहा था तो मजिस्ट्रेट ने वहाँ पहुँचकर उससे अंतिम बयान लेना चाहा। वह उससे तरह-तरह के प्रश्न करने लगा। नलिनीकांत ने उससे एक ही वाक्य कहा और कुछ नहीं। उसने कहा—''कृपया मुझे शांतिपूर्वक मरने दीजिए।'' कुछ क्षणों के पश्चात् उसने हमेशा के लिए अपनी आँखें बंद कर लीं। भारत की आजादी का एक सिपाही इस प्रकार बिदा हो गया कि न तो उसके लिए कोई आँसू बहा सका और न श्रद्धांजलि अर्पित कर सका।

तारिणीप्रसन्न मजूमदार पहले भी कई अभियानों में भाग ले चुका था। एक बार कोमिल्ला के एक मकान में पुलिस ने उसे घेर लिया था और तब उसने एक हाथ में पिस्तौल और दूसरे में रिवॉल्वर लेकर, पुलिस को चीरते हुए अपना रास्ता बना लिया था। एक बार वह कलकत्ता के भवानीपुर-कंसारापारा में अपने ही मकान में पुलिस द्वारा इस प्रकार घेर लिया गया था कि बच निकलना किसी प्रकार भी संभव नहीं था और उसके स्थान पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह नहीं निकल पाता; पर तारिणीप्रसन्न साफ निकल गया था। उस समय पुलिस ने उसके मकान के सामने के हिस्से पर घेरा डाला और वह पिछवाड़े भी घेरा डालती; पर इससे पहले ही तारिणीप्रसन्न पिछवाड़े के हिस्से में ऊपर की मंजिल से नीचे कूद पड़ा। ऊपर से कूदने के कारण उसके एक पैर की हड्डी टूट गई। सूझबूझ के कारण अपनी इस असहाय अवस्था का भी उसने लाभ उठा लिया। जब उसने देखा कि हड्डी टूटने के कारण वह चलने के योग्य नहीं रहा तो उसने अपनी धोती को कमर के आसपास खोंस लिया, कुरते को जगह-जगह से फाड़ डाला, बाल बिखरा लिये और लँगड़े भिखारी का अभिनय करता हुआ वह पुलिस के बीच से ही निकल गया। वही महान् क्रांतिकारी तारिणीप्रसन्न मजूमदार १५ जून, १९१८ को ढाका के काल्ता बाजार में पुलिस के साथ युद्ध करके शहीद हुआ। यद्यपि उसने तथा उसके साथी नलिनीकांत बागची—दोनों ने ही अस्पताल में अपने प्राण छोड़े, पर वे युद्ध करते समय घायल हुए थे और उन्होंने पुलिस के हाथों समर्पण नहीं किया। भारत माता के दो पागल पुजारी उसके चरणों पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा गए।

□

★ दलीपसिंह अभिनंदन

प्रिय दलीप!

तुम्हारा नाम जिह्वा पर आते ही विचित्र भावों की अनुभूति हमारे मन में होने लगती है। तुम्हारे स्मरण मात्र से हमारी शिथिल धमनियों में उबलते हुए रक्त का संचार होने लगता है। जिस समय तुम अवतीर्ण हुए थे, उस समय भारत आँसुओं का एक बड़ा समुद्र था। आँसुओं के उस सागर में तुम बड़वानल की भाँति आए और अपनी अलौकिक दीप्ति से हमारा पथ आलोकित करके चले गए।

राष्ट्र जागरण के अग्रदूत!

यदि लोगों से हम कहें कि केवल सत्रह वर्ष की आयु में वीरता के अद्‌भुत कार्य करके तुमने फाँसी के फंदे का सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त किया, तो लोग हमारे कथन पर विश्वास नहीं करेंगे। वे विश्वास करें, न करें, पर हम तो तुम्हारी पुनीत स्मृति पर श्रद्धा के सुमन चढ़ाएँगे ही। हमें याद आता है भारत की राष्ट्रीय चेतना का वह युग, जब तुम जैसे सिरफिरे भारत माता की पराधीनता की बेड़ियाँ काटने अपने मस्तक हथेलियों पर लिये फिरते थे।

सुधार आंदोलन के संचालक!

हम कैसे भूल जाएँ तुम्हारा वह मृत्यु महायज्ञ, जिसे विनोद के रूप में तुम 'सुधार आंदोलन' कहा करते थे। बाहर के शत्रु को तो एक बार छोड़ देना तुम्हें सह्य था, पर घर के भेदिए को सुधारने के लिए तुम्हारे पास एक ही ओषधि थी और वह थी तुम्हारी पिस्तौल की गोली। कितने शत्रु और देशद्रोही तुम्हारी गोलियाँ खाकर आत्मविकारों से चिर मुक्ति प्राप्त कर चुके थे।

हे कालजयी किशोर!

मातृवेदी पर अपने मस्तक की पुनीत भेंट देने में तुम्हारा कोई सानी नहीं है। वह कौन है, जिसपर तुम्हारे भोले व्यक्तित्व के आकर्षण का जादू न चला हो। अपराधों को देखते हुए तुम्हें फाँसी से कम दंड देना स्वयं किसी अपराध से कम

नहीं था और इसीलिए तो तुमने न्यायमंदिर के गौरांग देवता को भी उलझन में डाल दिया था। देखता रह गया वह तुम्हारी मंजुल मुसकान और हृदयस्पर्शी भोली चितवन। तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देनेवालों के विवरण सुनकर वह झुँझला-झुँझला पड़ता था; क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसकी कलम से एक तरुण तपस्वी की मृत्यु का दंड लिखा जाए। उसकी मनोदशा को ताड़कर तुम कह उठे थे—

''न्यायमूर्ति!

''आपकी इस मानवीय संवेदना के लिए मैं आपका आभारी हूँ। पर मैं आपको यह स्पष्ट बता दूँ कि मैं आपके हाथों जीवनदान नहीं चाहता और यदि आपने मुझे जीवनदान दे ही दिया तो मैं मुक्त होकर भी वही सब करूँगा, जो अब तक करता रहा हूँ। ईश्वर की कृपा से मुझे जो जन्म मिला है, उसे अभी तक मैंने पवित्र ही रखा है। मैं नहीं चाहता कि अधिक दिन जीवित रहकर किसी भी प्रकार के कलंक का भागी बनूँ। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि अपनी पवित्र देहलता पर प्रस्फुटित अपना मस्तक सुमन माँ की भेंट चढ़ा दूँ। मैं स्वयं अपने ऊपर लगाए गए आरोपों को स्वीकार करता हूँ।''

मातृमूर्ति के अमर पुजारी!

तुम्हारे मस्तक की पवित्र भेंट का मंत्रोच्चार करता हुआ न्याय का वह पंडित विस्मय-विमुग्ध होकर तुम्हारी ओर देखता रह गया था। विदेशी होने पर भी भारतीय संकल्प की गरिमा को उसने नमन कर भारी हृदय से पूर्णाहुति का मंत्र पढ़ा था। २७ फरवरी, १९२६ का दिन तुम्हारे लिए मुक्ति का संदेश लेकर उदित हुआ था। भुवनभास्कर की प्रथम रश्मि के साथ तुमने आकाश के निरभ्र पट पर अपने रक्त की आभा बिखरा दी थी।

तुम्हारे इस अपूर्व प्राणोत्सर्ग पर विचित्र भावों की अनुभूति करते रह गए—

हम
तुम्हारे यश की धरोहर के संरक्षक
तुम्हारे कृतज्ञ भारतवासी

□

★ दादाजी चानजी करसास्प ★ बसंतासिंह

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में जो भारतीय प्रवासी जर्मनी में रह रहे थे, उन लोगों ने विश्वयुद्ध की स्थितियों से लाभ उठाकर इंग्लैंड के शत्रु देश जर्मनी से

साँठ-गाँठ करके भारत की आजादी के लिए वे सभी उपाय किए, जो वे कर सकते थे। भारत की आजादी के लिए जर्मनी में उन्होंने जो संगठन तैयार किया, उसका नाम 'बर्लिन समिति' रखा। इसी बर्लिन समिति के सदस्य केदारनाथ ने फारस के रेगिस्तान में देश की आजादी के लिए अपने जीवन की बलि दी। ठीक उसी प्रकार उसके दो अन्य साथी—दादाजी चानजी करसास्प और बसंतासिंह ने भी अपने जीवन देश के लिए न्योछावर कर दिए।

दादाजी चानजी करसास्प एक भारतीय नौजवान था, जो इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मनी गया था। भारत माता की पुकार पर वह उन क्रांतिकारियों में सम्मिलित हो गया, जो देश की आजादी के लिए प्रयत्न कर रहे थे। उसका साथी बसंतासिंह भी क्रांतिकारी कार्यों में उसका सहयोगी था। बसंतासिंह अमेरिका में बनी भारतीय गदर पार्टी का सदस्य भी रह चुका था। उन लोगों ने प्रयत्न किया कि अंग्रेजी फौज में जो ईरानी लोग हैं, उन्हें अपनी ओर मिलाया जाए। इस प्रयत्न में वे लोग अफगानिस्तान तक गए। उनका प्रयत्न था कि अफगानिस्तान में जो भारतीय क्रांतिकारियों का संगठन है, उसके द्वारा भारत के क्रांतिकारियों के पास कुछ धन और हथियार भेजे जाएँ। जब ये लोग अफगानिस्तान से लौट रहे थे तो केरमान-अफगानिस्तान सीमा पर गिरफ्तार कर लिये गए और भारतीय फौज के ब्रिटिश अफसरों के आदेश से उन्हें सन् १९१७ में गोलियों से उड़ा दिया गया।

□

★ धन्नासिंह

बब्बर अकाली दल के क्रांतिकारी धन्नासिंह का हाथ बंदूक पर बहुत सधा हुआ था और उनकी बंदूक थी भी बहुत बढ़िया। वे अच्छे डील-डौल के और हौसले के धनी व्यक्ति थे। उनका कहना था कि पुलिस मुझे जीवित गिरफ्तार नहीं कर सकती और जब मैं मरूँगा तो दो-चार को मारकर ही मरूँगा। संयोग ऐसा हुआ कि वे जीवित ही गिरफ्तार कर लिये गए और गिरफ्तार करनेवाले पुलिस दल ने उनका मजाक उड़ाते हुए कहा—

"कहिए धन्नासिंहजी! आप तो कहते थे कि कोई मुझे जीवित गिरफ्तार नहीं कर सकता। इस समय तो आप गिरफ्तार होकर हमारे कैदी बने हुए हैं। आपके उस कौल का क्या हुआ, जो कभी आपने किया था?"

धन्नासिंह उस चोट को बरदाश्त न कर सके और उन्होंने जो जवाब दिया, वह लाजवाब था और उसने क्रांतिकारी आंदोलन को बहुत ऊँचाई प्रदान कर दी। यह कैसे संभव हुआ, यह भी जानने योग्य है।

धन्नासिंह भी 'सुधार आंदोलन' के पक्षपाती थे। सुधार आंदोलन से उनका तात्पर्य था कि देश के दुश्मन अंग्रेजों को हम एक बार भले ही छोड़ दें, पर उस घर के भेदिए को कभी भी नहीं छोड़ सकते, जो देश की नाव डुबाने के लिए छेद का काम करता है। उस कलंकी को दुनिया से उठा देने के कार्य को ये लोग सुधार कार्य कहते थे।

धन्नासिंह सुधार आंदोलन में काफी दिलचस्पी लेते थे। उनका कहना था कि आजादी के जितने प्रयत्न भारत में किए गए, वे सब देशद्रोहियों के कारण ही विफल हुए हैं। इसीलिए वे इस प्रयत्न में रहते थे कि देशद्रोही को जल्दी-से-जल्दी खत्म कर दिया जाए, जिससे वह बेल फैल ही न सके। इसी प्रकार के विचारों से प्रेरित होकर धन्नासिंह ने अर्जुनसिंह नाम के एक पटवारी की हत्या कर दी, जो अकालियों को बहुत हानि पहुँचाता रहता था। १० फरवरी, १९२३ को धन्नासिंह ने

अपने कुछ साथियों के साथ रानीथाने के जेलदार बिशनसिंह को भी मौत के घाट उतार दिया। आपके इस सुधार दल में संतासिंह भी सम्मिलित थे, बाद में जिन्हें फाँसी का पुरस्कार मिला। जेलदार बिशनसिंह को मारने के पश्चात् इन लोगों ने ऐलान भी किया था कि 'सुधार' की दृष्टि से ही उसे ठिकाने लगाया गया है।

पुलिस के जाल में निर्दोष अकालियों को फँसानेवाले नंबरदार बूटासिंह को जब गोलियों का स्वाद चखाया गया तो उस अभियान में बंतासिंह धामियाँ के साथ धन्नासिंह भी सम्मिलित थे।

धन्नासिंह के ऊपर तो सुधार आंदोलन का भूत चढ़ा हुआ था। १९ मार्च, १९२३ को अपने कुछ साथियों के साथ जाकर आपने लाभसिंह नाम के देशद्रोही मिस्त्री का भी 'सुधार' कर दिया। बब्बर अकाली दल के कर्मसिंह और उदयसिंह ने जब बइबलपुर के हजारासिंह का 'सुधार' किया तो उसमें धन्नासिंह भी सम्मिलित थे।

उन्हीं दिनों बब्बर अकाली दल के एक युवा सदस्य दलीपसिंह की गिरफ्तारी हुई थी और क्रांतिकारियों को यह पता चला.था कि उसकी गिरफ्तारी इन्हींके दल के एक व्यक्ति ज्वालासिंह ने कराई थी। इस मामले की पूछताछ के लिए जब आप ज्वालासिंह के पास गए तो खुद उसके जाल में फँस गए। ज्वालासिंह ने उनके सामने बहुत चिकनी-चुपड़ी बातें कीं और कसमें खा-खाकर उन्हें यकीन दिलाया कि दलीपसिंह की गिरफ्तारी में वह सर्वथा निर्दोष है। उन्हें फँसाने के लिए ज्वालासिंह ने जो जाल रचा, वह यह था कि उसने उन्हें एक गाँव के बाहर गन्ने के खेत में यह कहकर बिठा दिया कि आसपास ही पुलिस हम लोगों को तलाश कर रही है। वह खुद भी छिपने का बहाना करके धन्नासिंह से कुछ दूर जाकर बैठ गया। छिपने का यह नाटक रचकर वह चुपचाप वहाँ से खिसक गया और उसने निकटस्थ थाने के पुलिस सब-इंस्पेक्टर गुलजारासिंह को सूचना दे दी। गुलजारासिंह ने सोचा कि गन्ने के खेत में से धन्नासिंह को पकड़ना या मार पाना मुश्किल काम है, अतः उसने कहा कि रात को तुम उसे 'मनहाना' गाँव के कर्मसिंह के यहाँ ठहराओ, जिसपर धन्नासिंह का भरोसा है। पुलिस ने ज्वालासिंह को इस बात के लिए भी सचेत किया कि कर्मसिंह को भी कोई गंध न मिले कि क्या होने वाला है। इस बीच होशियारपुर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट मि. हार्टन को भी इस अभियान की सूचना दी गई।

योजना के अनुसार ज्वालासिंह ने धन्नासिंह को 'मनहाना' गाँव के कर्मसिंह के घर रात्रि का विश्राम कराया। वह २५ अक्तूबर, १९२३ की रात्रि थी। ज्वालासिंह तो नाटक खेल रहा था। वह रात को धन्नासिंह के साथ-ही सोया। वे दोनों चारपाइयाँ डालकर उस स्थान पर सोए, जहाँ बैल बाँधे जाते थे। रात अधिक

नहीं हुई थी कि पुलिस ने उस मकान को घेरना प्रारंभ किया। पुलिस आई हुई देखकर ज्वालासिंह वहाँ से खिसका और उसकी आहट पाकर धन्नासिंह भी उसके पीछे हो लिया। पुलिस ने ज्वालासिंह को तो निकल जाने दिया, पर धन्नासिंह को चारों ओर से घेर लिया। घेरनेवाले दल में चालीस व्यक्ति सम्मिलित थे। यह नजारा देख धन्नासिंह अपना रिवॉल्वर निकाल ही रहे थे कि थानेदार गुलजारासिंह ने लाठी का एक भरपूर हाथ धन्नासिंह के सिर पर दे मारा। इस आकस्मिक आघात के फलस्वरूप धन्नासिंह जमीन पर गिर पड़े। विद्युत् गति से कुछ लोग उनपर टूट पड़े और उन्हें कब्जे में कर लिया।

धन्नासिंह के पैरों में बेड़ियाँ एवं हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं और उनका रिवॉल्वर छीन लिया गया। पुलिसवालों ने सोचा कि इनके पास बस यही हथियार था, अत: रिवॉल्वर छीनकर उन्होंने उनकी तलाशी नहीं ली। धन्नासिंह अपनी कमर में एक बम खोंसे हुए थे। पुलिसवालों का ध्यान भी उसकी तरफ नहीं गया और न उस समय धन्नासिंह उसका उपयोग कर सके।

जब धन्नासिंह को पूरी तरह से काबू में कर लिया गया तो पुलिस के किसी व्यक्ति ने उनके प्रति वही घातक व्यंग्य किया—

''कहिए धन्नासिंहजी! आप तो कहते थे कि कोई मुझे जीवित गिरफ्तार नहीं कर सकता। इस समय तो आप गिरफ्तार होकर हमारे कैदी बने हुए हैं। आपके उस कौल का क्या हुआ, जो कभी आपने किया था?''

धन्नासिंह पुलिसवालों की इस चोट को बरदाश्त न कर सके। उनकी कमर में बम तो खोंसा हुआ था ही, उन्होंने अपनी कोहनी बम पर इतने जोर से दे मारी कि धमाके के साथ बम का विस्फोट हो गया। देखते-ही-देखते स्वयं धन्नासिंह और पुलिस के पाँच व्यक्ति चिंदी-चिंदी होकर उड़ गए। बम द्वारा उड़नेवालों में पुलिस सुपरिंटेंडेंट मि. हार्टन भी थे।

एक क्रांतिकारी ने अपने कौल को पूरा किया और उसके प्रति किए गए व्यंग्य का वह करारा उत्तर दिया, जो अन्य क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा और पुलिसवालों के लिए अच्छा सबक बनकर रह गया।

□

★ नंदसिंह

सूबेदार गैंडासिंह की हत्या से पूरे इलाके में सनसनी फैल गई। वह बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था और नागरिक तो क्या, अच्छे-अच्छे बदमाश भी उससे डरते थे। वह अकारण भी लोगों को तंग किया करता था और क्रांतिकारियों का तो वह दुश्मन ही था। उसकी हत्या से लोगों को राहत भी मिली और आश्चर्य भी हुआ कि आखिर उसकी हत्या की किसने है?

पुलिस सभी गाँववालों को तंग करने लगी। वह कभी एक को पकड़कर थाने में ले जाती तो कभी दूसरे को। थाने में उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता होगा, इसकी तो कल्पना की जा सकती है। नंदसिंह से यह सहन नहीं हुआ कि उसके गाँववालों को परेशान किया जाए। वह थाने पर जा पहुँचा और थानेदार से बोला—

''आप पूरे गाँववालों को तंग कर रहे हैं। उन्होंने किसीका क्या बिगाड़ा है, गैंडासिंह की हत्या तो मैंने की है।''

भला जो व्यक्ति यह कहे कि हत्या मैंने की है, वह क्यों न पकड़ा जाए! नंदसिंह पुलिस के मेहमान बना लिये गए और उनकी पूजा की जाने लगी। उनकी पूजा इसलिए की जाने लगी कि वे बताएँ कि उन जैसे पूज्य और कौन-कौन हैं। भला नंदसिंह दूसरों को यह श्रेय क्यों देते!

विधि-विधान द्वारा नंदसिंहजी की अभ्यर्थना की गई। विविध धाराओं से उन्हें स्नात कराया गया, उनकी स्तुति की गई तथा चारण-भाटों द्वारा उनके बल-विक्रम का बखान किया गया। सबसे अंत में एक विशेष हार उन्हें पहनाया गया और उन्हें स्वर्ग का रास्ता दिखाया गया।

यह कैसे हो सकता है कि नंदसिंह का इतना अधिक सम्मान किया जाए और वे आभार प्रकट न करें। उन्होंने कहा—

''मुझे इस बात का हर्ष है कि देश के लिए मैंने जो कुछ किया, उसके

कारण मुझे इस प्रकार सम्मानित किया गया। मैं आप लोगों से बिदा ले रहा हूँ। आप लोग मेरी चिंता मत करना। मैंने तो नींव डाल दी है और अब दूसरे लोगों का फर्ज है कि वे उस नींव पर इमारत खड़ी करें।''

जिस मामले में नंदसिंह को फाँसी हुई थी, उसमें पाँच अन्य क्रांतिकारियों को भी फाँसी हुई थी। फाँसी पानेवाले वीर थे—नंदसिंह, किशनसिंह, कर्मसिंह, संतासिंह, दलीपसिंह और धर्मसिंह। इन लोगों ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि फाँसी के बाद हम लोगों का दाह-संस्कार एक ही चिता पर किया जाए। २७ फरवरी, १९२६ को लाहौर की सेंट्रल जेल में फ़ाँसी पर झुलाकर उनकी इच्छानुसार उनका संस्कार किया गया।

नंदसिंह जालंधर जिले के 'घुड़ियाल' गाँव के रहनेवाले थे। जब आप अल्पायु के थे तभी आपके पिता का देहांत हो गया। बड़े भाई ने आपकी परवरिश की। बढ़ईगिरी का काम सीखकर पैसा कमाने की दृष्टि से आप बसरा चले गए। जब वहाँ समाचार मिला कि देश में अंग्रेजी हुकूमत देशवासियों पर बहुत अत्याचार कर रही है तो देशवासियों के दुःख-सुख में सम्मिलित होने के लिए जमा हुआ धंधा छोड़कर आप स्वदेश लौट आए और असहयोग आंदोलन में भाग लेने लगे। पुलिस के डंडे खाना आपको पसंद नहीं आया और आप उस दल में सम्मिलित हो गए जो मार खाने के लिए नहीं, मार लगाने के लिए बना था। आप किशनसिंह गड़गज्ज द्वारा संगठित 'बब्बर अकाली आंदोलन' के एक प्रमुख सदस्य हो गए और उसकी सभी गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया।

सूबेदार गैंडासिंह को 'सुधारने' के अपराध में नंदसिंह को गिरफ्तार किया गया और फाँसी का पुरस्कार मिला।

□

★ नागेंद्रनाथ दत्त

बालक नागेंद्र और उसका मित्र सुमित—दोनों का ही रुझान क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर था। सुमित के पिता के पास दो नालवाला एक पिस्टल भी था। एक दिन नागेंद्र ने सुमित से कहा—

''यार, तुम किसी दिन अपने पिताजी का पिस्टल चुरा लाओ। हम लोग गाँव के बाहर जाकर यह देखें तो सही कि वह किस प्रकार चलाया जाता है और किस प्रकार निशाना साधा जाता है!''

नागेंद्रनाथ दत्त

सुमित ने नागेंद्र का प्रस्ताव मान लिया और एक दिन जब उसके पिता शहर गए हुए थे, वह उनका पिस्टल लेकर नागेंद्र के पास पहुँच गया। वे दोनों गाँव के बाहर वृक्षों के झुरमुट में पहुँच गए।

नागेंद्र ने पूछा—''इसके अंदर कारतूस भरे हैं या यह खाली है?''

सुमित का उत्तर था—''मुझे मालूम नहीं कि यह खाली है या भरा। मैं इसे खोलना भी नहीं जानता।''

नागेंद्र का प्रस्ताव था—

''इस पिस्टल से एक बार तुम मुझपर निशाना साधो और दूसरी बार मैं तुम पर निशाना साधूँगा।''

''शुरुआत तुम करो।'' सुमित ने कहा।

नागेंद्र ने बात मान ली। सुमित थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया। नागेंद्र ने सुमित को निशाना मानकर पिस्टल का ट्रिगर दबा दिया। पिस्टल का वार खाली गया, क्योंकि उस नाल में गोली नहीं थी। अब निशाना साधने की बारी सुमित की थी। उसने नागेंद्र को लक्ष्य करके ट्रिगर दबा दिया। पिस्टल में से गोली निकली और नागेंद्र की जाँघ में घुस गई। पिस्टल की उस नाल में गोली थी। किसी आने-जानेवाले की सहायता से सुमित ने नागेंद्र को उसके घर पहुँचाया। दोनों ने सही-सही बात अपने घर के लोगों को बता दी। दोनों की डाँट-डपट हुई। नागेंद्र का घाव भरने में बहुत समय लग गया; लेकिन वह बिलकुल ठीक हो गया।

अपने गाँव की पढ़ाई पूरी कर लेने के पश्चात् नागेंद्रनाथ को कानून की पढ़ाई करने के लिए सिलहट जिले के सुनामगंज में जाना पड़ा। बड़ा स्थान मिलने के कारण उसे बड़ा क्षेत्र मिला और उसका परिचय कुछ क्रांतिकारियों से हो गया। पुलिस भी उसकी गतिविधियों पर नजर रखने लगी। पुलिस के हाथों पड़ने की अपेक्षा नागेंद्रनाथ ने अपनी पढ़ाई और सुनामगंज छोड़ने का निश्चय कर लिया। वह कलकत्ता पहुँच गया।

उन दिनों बंगाल और उत्तर प्रदेश के क्रांतिकारियों के बीच प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस एक कड़ी का कार्य कर रहे थे। रासबिहारी बोस से नागेंद्रनाथ दत्त का संपर्क स्थापित हो गया और वह बनारस पहुँच गया। बनारस में रहते हुए

नागेंद्रनाथ दत्त ने क्रांति के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम करके दिखाया और वह रासबिहारी बोस का दाहिना हाथ माना जाने लगा। क्रांतिकारियों में वह 'गिरिजा बाबू' के नाम से विख्यात हो गया।

स्थिति यहाँ तक आई कि गिरफ्तारी से बचने के लिए रासबिहारी बोस क़ो भारत छोड़कर जापान जाना पड़ा। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर यात्रा के लिए जापान जा रहे थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर रासबिहारी बोस ने 'प्रियनाथ ठाकुर' नाम धारण करके अपना पासपोर्ट बनवा लिया। नागेंद्रनाथ दत्त उन्हें जहाज तक पहुँचाने गया। जाते-जाते रासबिहारी बोस अपने साथियों से कहते गए कि उनकी अनुपस्थिति में वे लोग गिरिजा बाबू के नेतृत्व में काम करें।

नागेंद्रनाथ दत्त ने अपने नेता के छोड़े हुए कार्य को अच्छी तरह आगे बढ़ाया। कुछ दिन बाद ही वह पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उसपर 'लाहौर षड्यंत्र केस' और 'देहली षड्यंत्र केस' चलाए जा सकते थे; पर पुलिस ने उसे 'बनारस षड्यंत्र केस' के अंतर्गत फाँसना ज्यादा अच्छा समझा। इस केस के अंतर्गत उसे चार वर्ष कठोर कारावास की सजा मिली। उसे आगरा की जेल में रखा गया।

आगरा की जेल में रहते हुए नागेंद्रनाथ दत्त को भयंकर पेचिश की बीमारी हो गई। सरकार तो उससे छुट्टी पाना ही चाहती थी। उसके इलाज की ओर ध्यान नहीं दिया गया और परिणाम वही हुआ, जो शासन चाहता था। सन् १९१८ में जेल के अधिकारियों ने नागेंद्रनाथ दत्त को दूसरी दुनिया की जेल में स्थानांतरित कर दिया।

□

★ निधानसिंह चुग्घा

चालाक पिता अपनी कुरूपा कन्या को किसीके मत्थे मढ़ देने के लिए लड़की दिखाते समय अपने किसी रिश्तेदार या पड़ोसी की सुंदर कन्या दिखा देते हैं और जब वरपक्षवाले बारात लेकर पहुँच जाते हैं तो घूँघट निकलवाकर अपनी कुरूपा कन्या का पाणिग्रहण वर के साथ कर देते हैं। इस धोखे का भेद तब खुलता है, जब घर पहुँचकर वर महोदय देखी गई लड़की के स्थान पर दूसरी को पाते हैं। समझदार लोग तो उस लड़की को निभा लेते हैं, पर नासमझ लोग उस लड़की की जिंदगी को नरक बना देते हैं।

ठीक यही काम किया भारत पर राज्य करनेवाले चालाक और धूर्त अंग्रेजों ने। सर्वांग सुंदरी आजादी का वरण करने के लिए जब अनेक मधुर कल्पनाओं के साथ क्रांतिवीर अपने अंग्रेज श्वसुरजी के पास पहुँचते तो वे दूसरी ही लड़की के साथ उनका विवाह कर देते थे। वह दूसरी लड़की होती थी मौत। समझदार भारतीय क्रांतिकारी दूल्हे उस कुरूपा वधू को भी सर्वांग सुंदरी के रूप में स्वीकार करते थे और उसका सम्मान करते थे।

इसी प्रकार की मधुर कल्पनाओं के साथ 'भारत चलो' का आह्वान सुनते ही विदेशों में बसे हुए भारतीय क्रांतिकारी भारत की ओर दौड़ पड़े। गदर पार्टी के आह्वान पर अमेरिका एवं कनाडा में बसे हुए क्रांतिकारी विशेष रूप से अधीर हो बैठे और जिसको जो जहाज मिला, वह उसमें बैठकर भारत की ओर चल दिया।

दूल्हा जब दुलहिन के दरवाजे पर पहुँचता है तो वह घोड़ी पर सवार होकर पहुँचता है। आजादी रूपी दुलहिन का वरण करने के लिए प्रवासी क्रांतिकारी दूल्हे अमेरिका से 'प्रिंसेज कोरिया' पर सवार होकर चले। निधानसिंह चुग्घा दूल्हों की इस बारात में सम्मिलित होने के लिए शंघाई से अमेरिका पहुँचे थे। वे गदर पार्टी की शंघाई शाखा के प्रधान थे; पर मारे खुशी के वे अमेरिका जा पहुँचे और वहाँ से 'प्रिंसेज कोरिया' पर सवार हुए।

'प्रिंसेज कोरिया' को जापान के बंदरगाहों—याकोहामा, कोब तथा नागासाकी और फिलिपींस के बंदरगाह मनीला रुकते हुए हांगकांग पहुँचना था। जब वह जहाज नागासाकी पहुँचा तो निधानसिंह चुग्घा, इंद्रसिंह, सूरसिंह और प्यारासिंह वहाँ उतरकर हथियार खरीदने के लिए शंघाई चले गए। उन्होंने शंघाई से तार द्वारा प्रिंसेज कोरिया के यात्रियों को सूचना दी कि हांगकांग में तलाशी का खतरा है। जिन लोगों के पास रिवॉल्वर आदि हथियार थे, वे उन्होंने साथी क्रांतिकारी पं. जगतराम भारद्वाज को दे दिए। पं. जगतराम भारद्वाज ने उन हथियारों को एक संदूक में बंद किया और वह संदूक जहाज के डॉक्टर के कमरे में रख आए।

इधर शंघाई में निधानसिंह चुग्घा ने एक जर्मन व्यापारी से कुछ हथियार खरीदे। शंघाई से तीस क्रांतिकारी और उनके साथ हो लिये। यह नया दल १५ अक्तूबर, १९१४ को 'मशीमामारू' जहाज पर सवार होकर शंघाई से भारत के लिए चल दिया। 'मशीमामारू' जहाज को कोलंबो होते हुए भारत पहुँचना था। जब वह जहाज हांगकांग पहुँचा तो वहाँ 'प्रिंसेज कोरिया' जहाज के साथी लोग मिल गए। 'प्रिंसेज कोरिया' को वहाँ छोड़कर वे लोग अब 'तोशामारू' जहाज पर सवार हो गए। 'तोशामारू' को कलकत्ता पहुँचना था। इस प्रकार दो पृथक्-पृथक् जहाजों पर सवार होकर अलग-अलग रास्तों से उन्हें एक ही मंजिल पर पहुँचना था।

निधानसिंह चुग्घा 'मशीमामारू' जहाज से कोलंबो होते हुए बिना किसी खतरे के भारत पहुँच गए; पर 'तोशामारू' जहाज के कुछ यात्रियों को कलकत्ता पहुँचने पर बलपूर्वक एक विशेष गाड़ी द्वारा पंजाब भेजकर जेलों में डाल दिया गया। उस जहाज के कुछ यात्री कलकत्ता से भागने में सफल होकर, स्वतंत्र रूप से पंजाब पहुँचकर गदर क्रांतिकारियों से जा मिले और गदर की योजनाओं में संलग्न हो गए।

अमृतसर जिले के खासा स्थान पर क्रांतिकारियों की एक सभा हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि १५ नवंबर, १९१४ से गदर प्रारंभ कर दिया जाए। इस कार्य के लिए एक नेता के रूप में निधानसिंह चुग्घा भी चुने गए। हथियारों के न पहुँचने के कारण यह योजना कार्यान्वित न हो सकी। दूसरी योजना के अनुसार मियाँमीर का हथियारखाना लूटने का निश्चय किया गया। यह योजना भी विफल हो गई और निधानसिंह चुग्घा की टोली के कुछ लोग पुलिस की मुठभेड़ में मारे और पकड़े गए। निधानसिंह की टोली बिखर जाने के कारण गदर पार्टी को बड़ा धक्का लगा।

गदर का पहला प्रयास असफल हो जाने के पश्चात् गदर पार्टी के लोगों ने बंगाल के क्रांतिकारियों और विशेष रूप से रासबिहारी बोस के साथ मिलकर दूसरे प्रयास की संरचना की। अब गदर की तारीख २१ फरवरी, १९१५ निश्चित की गई। पृथक्-पृथक् टोलियों को कार्य सौंपा गया कि वे विभिन्न पल्टनों में जाकर पल्टनों को गदर के लिए तैयार करें। निधानसिंह चुग्घा और डॉ. मथुरासिंह को सीमा प्रांत की सेनाओं को सूचना देने के लिए भेजा गया। वे लोग अपना काम पूरा करके लाहौर पहुँच गए।

इन क्रांतिकारियों में एक गद्दार ने भी घुसपैठ कर ली थी और उस गद्दार का नाम था कृपालसिंह। यद्यपि निधानसिंह की सिफारिश पर ही कृपालसिंह को गदर पार्टी में सम्मिलित किया गया था, पर निधानसिंह ही यह पता लगाने में सफल हुए कि कृपालसिंह गद्दार है। कृपालसिंह दल की सारी सूचनाएँ पुलिस को देता रहता था। किसी प्रकार उसे यह भी पता लग गया कि गदर की तारीख २१ फरवरी के स्थान पर १९ फरवरी कर दी गई है। उसने इस परिवर्तित तारीख की सूचना भी पुलिस के पास भिजवा दी। निधानसिंह और उसके साथियों ने तय किया कि गद्दार कृपालसिंह को समाप्त कर दिया जाए। उस समय तो नहीं, आगे चलकर यह कार्य संपन्न हुआ।

कृपालसिंह की गद्दारी के कारण गदर योजना विफल हो गई और धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। निधानसिंह चुग्घा के कई प्रमुख साथी गिरफ्तार हो गए। निधानसिंह गिरफ्तारी से बच गए और वे किसी अन्य योजना की संरचना में लग

गए। उनके एक साथी सुरजनसिंह ने बताया कि 'मंडी सुकेत' नामक स्थान का थानेदार जवाहरसिंह क्रांतिकारियों के साथ सहानुभूति रखता है और वह कुछ हथियार दे सकता है। मंडी सुकेत पहुँचकर निधानसिंह चुग्घा उस थानेदार से मिले। थानेदार ने उन्हें काफी आश्वासन दिए और यह भी कहा कि एक रात्रि हम लोगों का साथ देने के लिए तैयार है।

दुर्भाग्यवश मंडी सुकेत योजना पूरी न हो सकी और इस योजना के नेता निधानसिंह चुग्घा गिरफ्तार कर लिये गए। उन्हें गदर पार्टी के अन्य क्रांतिकारियों के साथ लाहौर सेंट्रल जेल में रखा गया।

गदर वीरों पर 'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' के नाम से मुकदमा चला। विशेष ट्रिब्यूनल ने चौबीस क्रांतिकारियों को फाँसी पर लटकाए जाने का निर्णय सुना दिया, जिसमें निधानसिंह चुग्घा भी एक थे। इस निर्णय के विरुद्ध सारे देश में हंगामा हुआ और वाइसराय महोदय को मामले पर पुनर्विचार करना पड़ा। पुनर्विचार के फलस्वरूप चौबीस में से सत्रह की फाँसी की सजा आजीवन कालापानी की सजा में परिवर्तित कर दी गई। फाँसी से बचनेवाले इन सत्रह व्यक्तियों में से निधानसिंह चुग्घा भी एक थे। आजीवन कारावास की सजा भुगतने के लिए उन्हें अंडमान भेज दिया गया। उनके जिन सात साथियों को आजादी की झलक दिखाकर चालाक अंग्रेज श्वसुर ने मृत्यु के साथ गठबंधन कर दिया, वे थे—

१. बख्शीशसिंह,
२. विष्णु गणेश पिंगले,
३. सुरेंद्रसिंह (आत्मज ईश्वरसिंह),
४. सुरेंद्रसिंह (आत्मज भूरासिंह),
५. हरनामसिंह,
६. जगतसिंह,
७. करतारसिंह सराबा।

□

★ निर्मलकांत राय

हेड कांस्टेबिल हरिपद डे की हत्या ने कलकत्ता पुलिस के खुफिया विभाग की विशेष शाखा के इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष के लिए खतरे की घंटी बजा दी। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि अपने रास्ते से हरिपद डे को हटाने के पश्चात् अब

क्रांतिकारी लोग उसे भी अपने रास्ते से हटाकर रहेंगे। क्रांतिकारियों से वह इतना अधिक आतंकित हो गया कि सोते-सोते भी वह चौंककर उठ बैठता और कहने लगता—''वह मेरा पीछा कर रहा है। वह मेरे सामने रिवॉल्वर तान रहा है।'' कोर्ट या अपने ऑफिस में भी वह कभी-कभी इधर-उधर इस प्रकार झाँकने लगता जैसे वह किसी छिपे हुए व्यक्ति को खोज रहा हो। वह एक-न-एक अंगरक्षक अपने पास रखता। उसने उत्सवों आदि में भी जाना बंद कर दिया।

क्रांतिकारी लोगों का भी वही चिंतन था। हरिपद डे को अपने रास्ते से हटाने के पश्चात् अब उनके रास्ते में नृपेंद्रनाथ घोष ही था, जिसे उन्हें हटाना था। यह काम उनके लिए दो प्रकार से कठिन हो गया था। पहली बात तो यह थी कि कलकत्ता की पुलिस क्रांतिकारियों के पीछे बुरी तरह पड़ गई थी और क्रांतिकारियों को अपनी सुरक्षा की चिंता अधिक होने लगी थी। दूसरी बात यह थी कि इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष स्वयं भी बहुत अधिक सतर्क रहने लगा और उसे घात में लेना बहुत कठिन हो गया था। आखिर क्रांतिकारियों को यह काम तो करना ही था। उनकी गुप्त बैठक हुई। इस बैठक में प्रतुल गांगुली, रवि सेन और निर्मल राय के अतिरिक्त एक नया क्रांतिकारी सम्मिलित हुआ, जिसका नाम निर्मलकांत राय था।

इस विचार से तो सभी सहमत थे कि पुलिस इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष की हत्या कर दी जाए; पर हत्या कब की जाए, इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए निर्मलकांत राय ने कहा—

''हमें कुछ दिन नृपेंद्र की हत्या का विचार छोड़ ही देना चाहिए। जितना-जितना समय बीतता जाएगा, नृपेंद्र के मन से आतंक दूर होता जाएगा और वह अपनी सुरक्षा के साधनों में भी ढील देता जाएगा। इस प्रकार जब वह अपने प्रति असावधान हो जाएगा, तब अवसर पाकर हम उसे दूसरी दुनिया का टिकट दे देंगे।''

निर्मलकांत राय के विचार से सभी सहमत हुए, पर प्रतुल गांगुली ने विचार को कुछ आगे बढ़ाया—

''यह ठीक है कि हम उसे ढील देकर ही मारें; पर यह भी उचित लगता है कि हम सामूहिक रूप से उसके आगे-पीछे न फिरें और हममें से जब जिसका दाँव लग जाए, वह नृपेंद्र को समाप्त कर दे।''

बात पक्की हो गई। समय व्यतीत होता गया। धीरे-धीरे इंस्पेक्टर नृपेंद्र के मन से मृत्यु का भय दूर होता गया और वह अपनी सुरक्षा के प्रति अब उतना सजग दिखाई नहीं देता था। पुलिस की गाड़ी के स्थान पर अब वह ट्राम गाड़ी से भी कार्यालय से अपने घर जाने लगा।

इस तरह होते-होते सन् १९१४ के जनवरी माह की १९ तारीख आ पहुँची।

इंस्पेक्टर नृपेंद्र ने दिन का अपना काम निबटाया। एलीसियम रोडवाले कार्यालय से निकलकर उसने ट्राम पकड़ी और अपने घर के लिए रवाना हो गया। ट्राम संध्या के लगभग पौने आठ बजे ग्रे स्ट्रीट और शोभा बाजार के चौराहे पर रुकी। नृपेंद्र ट्राम से उतरकर अपने घर की दिशा में चल दिया। उस स्थान से कुमारतूली पुलिस स्टेशन लगभग एक सौ गज की दूरी पर ही था। इस बात की चिंता किए बिना ही उसका पीछा करता आ रहा क्रांतिकारी निर्मलकांत राय उसके पीछे से कूदकर उसके सामने पहुँच गया और अपने रिवॉल्वर की एक गोली उसके सिर का निशाना साधकर दाग दी। निशाना इतने पास से लगाया गया था कि उसकी गोली नृपेंद्र के सिर को फोड़ती हुई बाहर निकल गई। एक चीख नृपेंद्र के मुँह से निकली और वह भूमि पर गिरा, उसके बाद ही दूसरी गोली उसके हृदय में जा घुसी। गिरते ही नृपेंद्र की मृत्यु हो गई। निर्मलकांत राय ने रिवॉल्वर अपनी जेब में रखकर इस प्रकार का अभिनय किया जैसे वह नृपेंद्र का अर्दली हो। वह चिल्लाने लगा—

''हमारे साहब को बचाओ! हमारे साहब को बचाओ!''

नृपेंद्र के आसपास भीड़ एकत्र हो गई। सड़क पर वैसे ही भीड़ कम नहीं थी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए निर्मलकांत राय को खिसक जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वह गिरफ्तार नहीं हो सका। बहुत दिन पश्चात् पुलिस ने संदेह में एक युवक को गिरफ्तार किया। उस र हाई कोर्ट में मुकदमा चलाया गया; पर कोई ठोस साक्ष्य उसके विरुद्ध प्रस्तुत नहीं किया जा सका। पुलिस जिस प्रकार के झूठे साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया करती थी वैसे साक्ष्य को क्रांतिकारियों के आतंक से वह प्रस्तुत नहीं कर सकी। परिणाम यह हुआ कि वह युवक निर्दोष करार दिया जाकर छोड़ दिया गया।

क्रांतिकारियों की यह बहुत बड़ी सफलता थी।

□

★ निर्मल राय ★ प्रतुल गांगुली ★ रवि सेन

कलकत्ता में २९ सितंबर, १९१३ को दो दलों के बीच घात-प्रतिघात की योजनाएँ संचालित की जा रही थीं। खुफिया विभाग का हेड कांस्टेबिल हरिपद डे अपने पुलिस इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष के सामने अपनी कारगुजारियों की डींग हाँक रहा था—

''साहब! आप तो जानते ही हैं कि मैंने कितने क्रांतिकारियों को पकड़ा है

और उनमें से कितनों को झूठे-सच्चे मामलों में फाँसकर सजाएँ दिलाई हैं! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आज ही कुछ क्रांतिकारियों को पकड़कर आपके सामने हाजिर कर दूँगा।''

इस आश्वासन पर इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष की प्रतिक्रिया थी—

''वैसे तो क्रांतिकारी लोग तुम्हारे नाम से चौंकते हैं और विभाग में तुम्हारे अच्छे कामों के कारण तुम्हारी तरक्की का रास्ता साफ है; पर यदि तुमने सचमुच ही आज कुछ क्रांतिकारियों को पकड़ लिया तो यह समझो कि तुम्हारी तरक्की का आदेश जारी हो गया।''

उधर क्रांतिकारियों का दल भी अपनी योजना बनाने में सक्रिय था। प्रतुल गांगुली का कहना था—

''पुलिस इंस्पेक्टर नृपेंद्रनाथ घोष और हेड कांस्टेबिल हरिपद डे, दोनों ही हाथ धोकर हम क्रांतिकारियों के पीछे पड़े हुए हैं। हमें यह निर्णय लेना है कि यदि दोनों को एक साथ समाप्त नहीं कर सके तो पहले किसको समाप्त करना चाहिए।''

इस विचार को आगे बढ़ाया क्रांतिकारी निर्मल राय ने—

''पहले हमें हेड कांस्टेबिल हरिपद को मारने का ही यत्न करना चाहिए। उसने अपने जासूस सभी ओर छोड़ रखे हैं और यह वही है, जो हमें पकड़ता भी है तथा झूठे-सच्चे साक्ष्य प्रस्तुत करके हमें लंबी-लंबी और कड़ी सजाएँ दिलाता है।''

रवि सेन ने इस विचार का समर्थन किया—

''मैं भी इसी विचार का हूँ कि यदि अवसर हाथ लगे तो पहले हेड कांस्टेबिल हरिपद डे को ही समाप्त करना चाहिए। वह आएदिन ही तो अपने जासूसों के साथ नागरिक लिबास में कॉलेज स्क्वायर के आसपास खड़ा रहकर हम लोगों की टोह में रहता है। हम लोग आजमाइश करके देखें, यदि वह आज हमें कॉलेज स्क्वायर के पास खड़ा दिखाई दे तो हम आज ही उसका फैसला कर दें।''

बात सभी को पसंद आ गई और तय हुआ कि यदि हरिपद डे दिखाई दे तो युक्तिपूर्वक उसे समाप्त कर दिया जाए।

संध्या का समय आ पहुँचा। कॉलेज स्क्वायर के क्षेत्र में घुमक्कड़ों की भीड़ बढ़ने लगी। इस अवसर का लाभ उठाने के लिए हेड कांस्टेबिल हरिपद डे विद्यासागर की मूर्ति के पास इस प्रकार खड़ा हो गया कि पीछे से उसे कोई देख न सके। उसके कुछ जासूस भी नागरिक लिबास में आसपास चक्कर काटने लगे। वे इसलिए चक्कर काट रहे थे कि यदि संदिग्ध व्यक्ति उन्हें दिखें तो वे उनकी सूचना हरिपद डे को दे सकें।

इधर क्रांतिकारियों का वह दल भी हरिपद डे की घात में था। पहले उनमें

से एक व्यक्ति ने हरिपद को देख लिया कि वह विद्यासागर की मूर्ति के पास खड़ा हुआ है। बाद में तीनों क्रांतिकारियों ने हरिपद डे के पास तक पहुँचने की योजना बना डाली। मूर्ति के पास उसका खड़ा होना उन लोगों के लिए लाभदायक ही सिद्ध हुआ। उन लोगों ने पश्चिम की ओर के दरवाजे से प्रवेश किया और मूर्ति की ओट लेकर वे लोग हरिपद डे के बिलकुल निकट ही पहुँच गए। उनमें से एक ने हरिपद डे पर दनादन तीन फायर किए और भाग खड़े हुए। उसके दो साथी उसके पीछे इस तरह भागे कि यदि कोई उनका पीछा करे तो वे उससे निबट सकें। क्रांतिकारियों को हाथों में रिवॉल्वर लिये देखकर किसीने भी उनका पीछा करने का साहस नहीं किया। इस बार क्रांतिकारी दक्षिणी दरवाजे की ओर मुड़े और बीच में ही कँटीले तार को फाँदकर नौ दो ग्यारह हो गए।

हरिपद डे को उसके साथियों ने तुरंत ही कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के अस्पताल पहुँचाया। डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया।

बहुत यत्न करने पर भी कोई गिरफ्तारी नहीं हो सकी।

□

★ नृपेंद्रनाथ ★ सुशील लाहिड़ी

सुशील लाहिड़ी को यह अनुमान नहीं था कि विनायकराव कंपले उसे जान से मारना चाहता है। वे दोनों ही क्रांतिकारी थे और एक ही दल के। विनायकराव कंपले के आमंत्रण पर सहज भाव से सुशील लाहिड़ी निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया और उसके ऊपर गोली चला दी गई। यह तो सुशील लाहिड़ी का सौभाग्य था कि वह बच गया। घटना इस प्रकार हुई।

'बनारस षड्यंत्र केस' के अंतर्गत जिन लोगों पर मुकदमा चलाया गया था, उसी दल का सदस्य था सुशील लाहिड़ी। उस समय वह गिरफ्तारी से बाल-बाल बच गया था और वह उत्तर प्रदेश छोड़कर बंगाल चला गया था। बंगाल के केंद्र द्वारा ही 'बनारस षड्यंत्र' के लिए पैसा और हथियार भेजे गए थे। वह सारी योजना विफल हो गई और उसके सूत्रधारों में से रासबिहारी बोस भारत छोड़कर जापान चले गए और शचींद्रनाथ सान्याल को आजन्म कालापानी की सजा हुई। स्थिति को सँभालने का दायित्व आ पड़ा एक मराठा युवक विनायकराव कंपले पर। इसमें कोई संदेह नहीं कि टूटते हुए संगठन को कंपले ने अपनी योग्यता के सहारे टिकाए रखा; पर अब वह निरंकुश हो गया था और बंगाल के क्रांतिकारियों का अनुशासन नहीं

मान रहा था। उसपर यह भी आरोप था कि वह पार्टी के धन और हथियारों का दुरुपयोग कर रहा था। सुशील लाहिड़ी को बंगाल से इसीलिए भेजा गया था कि वह विनायकराव कंपले से पैसे तथा हथियारों का हिसाब ले और ये चीजें उससे प्राप्त करके बंगाल भेजे। यह घटना सन् १९१७ की है।

विनायकराव कंपले और सुशील लाहिड़ी की भेंट लखनऊ में हुई। सुशील लाहिड़ी के साथ नृपेंद्रनाथ नाम का एक क्रांतिकारी साथी था। विनायकराव कंपले के साथ भी एक युवक था। दोनों पक्षों की ओर से काफी कहा-सुनी एवं गरमा-गरमी हुई और कोई बात तय नहीं हो सकी। आखिर विनायकराव कंपले की ओर से एक प्रस्ताव रखा गया कि अगले दिन एक निर्दिष्ट स्थान पर सुशील लाहिड़ी उससे मिले। सुशील लाहिड़ी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

निर्दिष्ट स्थान और निश्चित समय पर वे दोनों दल फिर मिले। रात के समय लखनऊ की एक वीरान बस्ती में उन लोगों की मीटिंग होनी थी। सुशील लाहिड़ी के साथ नृपेंद्रनाथ था और कंपले के साथ वही उसका युवक साथी। साक्षात्कार होने पर अचानक ही विनायकराव कंपले के साथी ने सुशील लाहिड़ी पर गोली चला दी। सुशील लाहिड़ी गोली का निशाना बनने से बाल-बाल बच गया। नृपेंद्रनाथ के पास भी भरा हुआ रिवॉल्वर था। अँधेरे में कुछ साफ दिखाई नहीं दे रहा था। उसने भी अनुमान से गोली चला दी। नृपेंद्रनाथ की गोली विनायकराव कंपले को लगी और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका साथी भाग खड़ा हुआ। ९ फरवरी, १९१८ की सुबह घसियारी मंडी में पुलिस को विनायकराव कंपले की लाश पड़ी मिली।

लखनऊ की पुलिस ने तत्परता से विनायकराव कंपले के हत्यारों की तलाश की, पर कोई सुराग नहीं लग सका। नृपेंद्रनाथ फरार हो गया और फरारी का जीवन उसे बहुत संकट में निकालना पड़ा। संग्रहणी के रोग का शिकार होकर वह शरीर से जर्जर हो गया और सन् १९२० में बनारस के चौखंडी अस्पताल में असहायावस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

सुशील लाहिड़ी ने लखनऊ नहीं छोड़ा। किराए का मकान लेकर वे वहीं रहने लगे। वे जिस मकान में रहते थे, उसमें बाहर से ताला पड़ा रहता था। एक दिन एक पुलिसवाले ने यह देखा कि मकान में तो ताला पड़ा हुआ है, पर उसके अंदर की नाली में से पानी बहकर आ रहा है। उसे संदेह हो गया। ताला तोड़ा गया और सुशील लाहिड़ी गिरफ्तार कर लिये गए। उनके पास से दो रिवॉल्वर और दो सौ जीवित कारतूस बरामद हुए। उनकी गिरफ्तारी २१ फरवरी, १९१८ को हुई।

अवैध शस्त्र रखने के अपराध में सुशील लाहिड़ी पर मुकदमा चला और

उन्हें पाँच वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया। वे विनायकराव कंपले की हत्या में सम्मिलित हैं, पुलिस इससे अनभिज्ञ रही।

जाँच-पड़ताल के पश्चात् यह पाया गया कि विनायकराव कंपले के हत्यास्थल पर जो खाली कारतूस पाया गया, वह ठीक उन्हीं कारतूसों जैसा था, जो सुशील लाहिड़ी के पास से बरामद हुए थे। जेल में रहते हुए ही सुशील लाहिड़ी पर नए सिरे से हत्या का मुकदमा चलाया गया। ११ अगस्त, १९१८ को सेशन कोर्ट द्वारा सुशील लाहिड़ी को फाँसी का दंड सुना दिया गया। इस मुकदमे की विशेषता यह रही कि सुशील लाहिड़ी ने अखंड मौन व्रत धारण कर लिया और अदालत में उसने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। यह बात पुलिस के पक्ष में ही गई और यह मान लिया गया कि विनायकराव कंपले की हत्या उसीने की है।

अक्तूबर १९१८ में सुशील लाहिड़ी को फाँसी दे दी गई। वह अंतिम समय तक बहुत प्रसन्न दिखाई देता रहा। फाँसी की सुबह उसने गंगाजल मँगवाकर स्नान किया। 'वंदेमातरम्' का नारा लगाते हुए वह फाँसी के फंदे पर झूल गया।

सुशील लाहिड़ी बनारस के मदनपुरा का रहनेवाला था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से उसने बी.एस-सी. परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कुछ दिन उसने अध्यापक के पद पर भी कार्य किया। अंततोगत्वा वह क्रांतिकारी आंदोलन में सम्मिलित हो गया। उसका साथी नृपेंद्रनाथ काशी के प्रसिद्ध वैद्य शास्त्री महेंद्र कविराज का इकलौता पुत्र था। उसने काशी के सेंट्रल हिंदू कॉलेज में इंटर तक की शिक्षा पाई थी।

दोनों ही देश की आजादी के लिए अपने बलिदान दे गए। □

★ नैना ★ बलवंतसिंह ★ बाबूराम ★ रूढ़सिंह ★ हफीज अब्दुल्ला
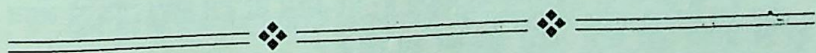
संध्या के धुँधलके सब ओर फैलने लगे थे। कनाडा का वैंकोवर नगर यद्यपि बिजली के प्रकाश से जगमगा उठा था, पर उसके बाहरी अंचल में अँधेरे का साम्राज्य था। एक सिख सज्जन हवाखोरी के लिए बाहर गए हुए थे। जब वे लौट रहे थे तो उन्होंने देखा कि दस-बारह लोगों का एक समूह तेज कदमों से उन्हें पार करता हुआ आगे बढ़ गया। वह भारतीय लोगों का समूह था और वह भी बाहर से
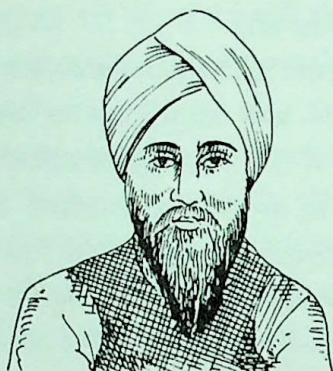
बलवंतसिंह

नगर की ओर जा रहा था। उनमें से एक व्यक्ति ने सिख सज्जन को पहचान लिया और नाम लेकर पुकारा—

"क्या बलवंतसिंहजी हैं?"

"हाँ, भाई, हूँ तो बलवंतसिंह ही; पर आप कौन लोग हैं? जरा रुक जाइए।" सिख सज्जन का उत्तर था।

जानेवाले लोगों का समूह रुक गया; पर जिन्होंने बलवंतसिंहजी को आवाज दी थी, उन्हींने कहा—

"हम लोग सड़क से हटकर जरा उधर वृक्षों के झुरमुट की तरफ चलकर बात करें तो ठीक रहेगा।"

बलवंतसिंहजी को यह कुछ समझ में नहीं आया; पर वे उनके साथ चले गए और वृक्षों की ओट में बैठकर बातें होने लगीं। बलवंतसिंह वैंकोवर नगर में नए-नए आए हुए थे और जिसने उन्हें पुकारा था, उससे भी उनका परिचय नया था। वह एक भारतीय हिंदू था और उसका नाम दौलतराम था। बातचीत का सिलसिला दौलतराम ने ही प्रारंभ किया—

"आपसे क्या छिपाएँ, बलवंतसिंहजी, हमारे एक साथी की मृत्यु हो गई और हम लोग उसीका अंतिम संस्कार करके लौट रहे हैं।"

शोक के स्वर में बलवंतसिंह ने कहा—

"अरे भाई, तुम मुझे और समाज के लोगों को भी खबर कर देते तो अच्छा था। हम लोग गाजे-बाजे के साथ अपने साथी को ले जाते।"

"गाजे-बाजे की बात भारत में होती है, बलवंतसिंहजी! यह तो कनाडा है। यहाँ हम लोगों को मुरदे जलाने की भी अनुमति नहीं है।"

"तो क्या आप लोग अपने साथी को दफनाकर आ रहे हैं?"

"कभी-कभी दफनाना भी पड़ता है; पर आज तो हम लोग गाँव से बहुत दूर ले जाकर उसे चोरी-चोरी फूँककर आ रहे हैं।"

"क्या यहाँ की सरकार शवों को दाह करने की अनुमति किसी भी शर्त पर देने के लिए तैयार नहीं है?"

"हमने भी बात करके देखी है। शर्तें बहुत कड़ी हैं। वे लोग शहर से पाँच मील दूर स्थान देने को तैयार हैं। उनकी दूसरी शर्त यह है कि श्मशान भूमि के आसपास पंद्रह फीट ऊँची दीवारों का एक परकोटा हो, जिससे लपटें बाहरवालों

को दिखाई न दें और धुआँ सीधा ऊपर की ओर जाए।''

''तो आप लोग इसके लिए राजी क्यों नहीं हो जाते?''

''राजी कैसे हों, हम लोगों के पास इतना पैसा कहाँ रखा है! मेहनत-मजदूरी करके हम लोग पेट ही तो भर पाते हैं।''

''पर भाई, पूरे कनाडा में तो हजारों भारतीय हैं। यदि थोड़ा-थोड़ा सभी लोग दें तो अपना काम चलाने लायक पैसा इकट्ठा हो सकता है। एक बात और भी है, और वह यह कि इस काम में हमें हिंदू व सिखवाली बात भुलानी पड़ेगी। श्मशान घाट सभी का एक होगा। यहाँ हम लोग भारतीय हैं।''

दौलतराम और उसके साथियों को यह विचार पसंद आया। तय हुआ कि इस मुद्दे पर विचार करने के लिए किसी दिन मीटिंग रख ली जाए। यह तय हो जाने के बाद वे लोग चले गए और बलवंतसिंह भी विचारों में खोए-खोए अपने गंतव्य की ओर चल दिए।

बलवंतसिंह के व्यक्तित्व और वाणी दोनों में ही जादू था। जो एक बार उनके संपर्क में आता, उनका होकर रह जाता था। कहते हैं कि उन्होंने अपने गाँव के पास एक गुफा के अंदर ग्यारह महीने रहकर तपस्या की थी और उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई थी कि जो कार्य वे हाथ में लेंगे, वह अवश्य ही पूरा होगा।

बलवंतसिंह का जन्म जालंधर जिले के 'खुर्दूपुर' गाँव में सन् १८८२ में सरदार बुद्धसिंह के घर हुआ था। परिवार बहुत धनाढ्य था। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् फौज में नौकरी कर ली। फौज में रहते हुए आपको कर्मसिंहजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनके सत्संग के प्रभाव से आप ईश्वरभक्त हो गए। फौज की नौकरी छोड़कर ईश्वरोपासना में मस्त रहने लगे। एक गुफा में रहकर खूब तपस्या की। कुछ प्रेरणा हुई तो सन् १९०५ में कनाडा पहुँच गए। कुछ वर्ष कनाडा रहने के पश्चात् सन् १९१३ में इंग्लैंड पहुँच गए। इंग्लैंड में ही कई भारतीय क्रांतिकारियों से आपका परिचय हुआ और राजनीति भी आपकी रुचि का विषय बन गया। इंग्लैंड से आप थोड़े समय के लिए लाहौर पहुँचे और १९१४ तक फिर कनाडा पहुँच गए।

कनाडा के वैंकोवर नगर में बलवंतसिंह के प्रयत्नों से भूमि खरीदी गई और सिख समाज के लिए गुरुद्वारे का निर्माण हुआ। आप ही के प्रयत्नों के फलस्वरूप शहर के बाहर भूमि खरीदकर एक श्मशान घाट का निर्माण हुआ, जहाँ हिंदू और सिख मुरदों का दाह-संस्कार कर सकते थे। पहले इसकी अनुमति उन्हें नहीं थी। वैंकोवर के गुरुद्वारे का ग्रंथी बलवंतसिंहजी को ही बनाया गया। जब बहुत अधिक आग्रह किया गया, तब यह पद उन्होंने स्वीकार किया। गुरुद्वारे की स्थापना ने

वैंकोवर के भारतीय समाज में चेतना उत्पन्न करके उन्हें संगठित कर दिया।

वहाँ धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त राजनीतिक मसलों पर भी चर्चा होती थी, जिसमें सिखों के साथ-साथ अन्य भारतीय भी भाग लेते थे। अब वे लोग कनाडा के दमनकारी कानूनों और इमीग्रेशन अधिकारियों के अत्याचारों का सामना करने के लिए कटिबद्ध थे। इमीग्रेशन विभाग का अध्यक्ष हॉपकिंसन भारतीयों के इस संगठन के विरुद्ध था और वह इस प्रयत्न में था कि इस संगठन के नेता लोगों को जान से मरवा दें। वह भारत में पुलिस विभाग में अधिकारी रह चुका था और तोड़-फोड़ के सब हथकंडे जानता था।

कनाडा के अपने प्रथम प्रवास के समय जब बलवंतसिंह वैंकोवर में भागसिंहजी के साथ रह रहे थे तो उन लोगों का विचार हुआ, भारत से वे लोग अपने-अपने परिवारों को भी कनाडा ले आएँ। कनाडा सरकार के कानून के अनुसार, उस समय भारतीय लोग अपने परिवारों को कनाडा नहीं ले जा सकते थे। इन लोगों ने बहुत प्रयत्न किया और अंत में आप लोगों को मौखिक आश्वासन मिला कि ठीक है, जब आप लोग परिवार लाएँगे, तब देखा जाएगा। इसे आश्वासन समझकर बलवंतसिंह, सुंदरसिंह और भागसिंह अपने-अपने परिवार लाने के लिए भारत चले गए।

सन् १९११ में ये तीनों सज्जन अपने-अपने परिवारों के साथ कनाडा के लिए फिर प्रस्थित हुए। भागसिंह ने तो पेशावर की एक महिला के साथ नई शादी करके अपना परिवार बनाया। कनाडा पहुँचते-पहुँचते उन्हें इतना समय लग गया कि पुत्र का जन्म यात्रा में ही हुआ। उस समय भारत से कोई जहाज सीधा कनाडा या अमेरिका नहीं जाता था। इन लोगों को भारत से हांगकांग पहुँचकर रुक जाना पड़ा। बड़ी कठिनाई से वैंकोवर के लिए टिकट मिला। उसका उपयोग सुंदरसिंह ने किया। लेकिन वे अपना परिवार साथ नहीं ले जा सके। अपने-अपने परिवारों तथा सुंदरसिंह के परिवार के साथ बलवंतसिंह और भागसिंह सानफ्रांसिस्को (अमेरिका) के लिए प्रस्थित हुए। परिवार साथ होने के कारण उन लोगों को वहाँ नहीं उतरने दिया गया। अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुए वे लोग फिर हांगकांग लौट गए और काफी समय तक वहाँ पड़े रहे। बड़ी मुश्किल से उन लोगों को वैंकोवर के टिकट मिले। जब वे सपरिवार वैंकोवर पहुँचे तो इमीग्रेशन विभाग द्वारा उनसे कहा गया कि आप लोग ही यहाँ उतर सकते हैं, अपने-अपने परिवार आपको वापस भेजने पड़ेंगे। यह भी कोई बात हुई, लगभग एक वर्ष यात्रा में बिताने के पश्चात् तो वैंकोवर पहुँचे और कह दिया कि परिवार वापस भेजो। बहुत झगड़ा हुआ। आखिर तय हुआ कि इमीग्रेशन विभाग के प्रधान कार्यालय ओटावा से आज्ञा आने तक

जमानत के आधार पर ही परिवारों को वैंकोवर में रहने की आज्ञा दी जाती है। अनुमति न मिलने पर परिवारों को वापस भेजना पड़ेगा।

यहाँ से वहाँ तक कुचक्र चल रहा था। ओटावा से भी मनाही आ गई। इमीग्रेशन विभाग के अफसर और गोरे सिपाही सरदार लोगों के परिवारों को लेने के लिए उनके घर जा धमके। लो, यह भी खूब रही! तुम लोग हमारे परिवारों को ले जाओगे। परिवार क्या हुए, भेड़ें और बकरियाँ हुईं, जो हाँक ले जाओगे। तुम लोग हमारी जनानियों को हाँक ले जाओगे और हम मर्द होकर तमाशा देखते रहेंगे। हम गुरु गोविंदसिंहजी के वंशज हैं। जान दे देंगे और जान ले लेंगे; पर अपने परिवारों को नहीं जाने देंगे।

सरदार लोगों को विकराल मुद्राएँ और उन्हें मरने-मारने पर उतारू देखकर इमीग्रेशन विभागवाले चुपचाप खिसक गए। फिर वे उनके परिवारों को लेने नहीं पहुँचे।

इन लोगों ने सोचा कि सभी भारतीय अपने-अपने परिवार ला सकें, इसके लिए वैधानिक अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। चूँकि भारत पर अंग्रेजी शासन था, इस कारण इंग्लैंड से अनुमति लेने का निश्चय किया गया। एक शिष्टमंडल बना, जिसमें एक सदस्य बलवंतसिंह भी थे।

इंग्लैंड में इस शिष्टमंडल ने बहुत दौड़धूप की, पर सफलता हाथ नहीं लगी। कोरा उत्तर देकर टरका दिया गया कि मामला वैधानिक रूप से भारत सरकार की ओर से हमारे पास आना चाहिए। शिष्टमंडल भारत जा पहुँचा। भारत में भी कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा गया; पर सफलता हाथ नहीं लगी। कांग्रेस के सभी वरिष्ठ नेताओं से वे लोग मिले, पर सभी ने ऊँचे हाथ कर दिए। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर माइकेल ओ डायर से भी वे लोग मिले, पर उन्होंने भी निराश ही किया। वे लोग वाइसराय से भी मिले, पर वहाँ से भी निराशा ही हाथ लगी। माइकेल ओ डायर ने अपनी पुस्तक 'इंडिया एज आई न्यू इट' में इन लोगों के बारे में लिखा—

'इस स्थिति में मैंने शिष्टमंडल के सदस्यों के पास चेतावनी भेजी कि यदि यही हालत रही तो मुझे कोई कड़ा कदम उठाना पड़ेगा। इसपर सदस्यों ने मुझसे मिलने की अनुमति चाही। उनके साथ मेरी लंबी वार्त्ता हुई और मैंने उनके सामने अपनी चेतावनी बार-बार दोहराई। प्रतिनिधिमंडल के तीसरे सदस्य (बलवंतसिंह) का व्यवहार बहुत ही खतरनाक क्रांतिकारी की भाँति लग रहा था। उन लोगों ने वाइसराय महोदय से भी मिलना चाहा। उन लोगों को वाइसराय महोदय के पास भेजते समय मैंने इस तीसरे सदस्य से सावधान रहने की बात लिखी।'

वे तीसरे सदस्य हमारे नायक बलवंतसिंह ही थे। वे हर अन्याय का मुकाबला अपने समस्त आत्मबल के साथ करते थे।

हर तरह से निराश होकर शिष्टमंडल सन् १९१४ के आरंभ में वैंकोवर वापस लौट गया। वैंकोवर पहुँचकर एक सभा बुलाई गई और उसमें बलवंतसिंह ने अपने जीवन का सबसे अधिक प्रभावशाली भाषण दिया। उन्होंने लोगों के सामने अपना कलेजा निकालकर रख दिया। उनके इतने ओजस्वी भाषण का स्पष्ट अर्थ यही था कि केवल गुलाम होने के कारण ही हमारी यह दुर्दशा है। उनके भाषण ने इस बात की प्रेरणा दी कि देश की आजादी हासिल करने के लिए यदि सब लोगों को अपने प्राण भी देने पड़ें तो यह बहुत ज्यादा कीमत नहीं होगी।

उस दिन से सब लोगों का एक ही चिंतन था—देश की आजादी के लिए सबकुछ न्योछावर करना है। बिना आजादी प्राप्त किए जीवित रहना धिक्कार है।

इसी समय 'कामागाटामारू' जहाज का प्रकरण एक विकट समस्या के रूप में उन लोगों के सामने उपस्थित हो गया। 'कामागाटामारू' एक जापानी जहाज था, जो एक भारतीय 'बाबा गुरुदत्तसिंह' के नेतृत्व में तीन सौ साठ यात्रियों को लेकर ४ अप्रैल, १९१४ को हांगकांग से चला और २२ मई को वैंकोवर जा पहुँचा। वैंकोवर में जहाज को समुद्र में ही खड़ा रखा गया, किनारे से लगने की अनुमति नहीं दी गई। कनाडा सरकार ने कानून बना रखा था कि यदि कोई भारतीय भारत से सीधा कनाडा पहुँचता है तो उसे कनाडा में उतरने की अनुमति दी जाएगी, हांगकांग होकर आनेवालों को नहीं। उन दिनों भारत से कनाडा तक सीधी जहाज सेवा नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि 'कामागाटामारू' जहाज के यात्रियों को पूरे दो महीने वैंकोवर के किनारे समुद्र में पड़ा रहना पड़ा। जहाज की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। पानी भी समाप्त हो गया। छह दिन तक लोगों को पानी पीने के लिए नहीं मिला। इतना ही नहीं, कनाडा की सशस्त्र पुलिस एक मोटरबोट द्वारा भारतीय यात्रियों को ठीक करने के लिए जहाज के अंदर पहुँचने के लिए चली। जहाज के यात्री भी मरने-मारने पर उतारू हो गए। उन्होंने जहाज के डैक के ऊपर से पत्थर के कोयले के बड़े-बड़े ढेले मोटरबोट में बैठे पुलिसवालों के ऊपर फेंकने प्रारंभ कर दिए। जमकर संघर्ष हुआ। पुलिसवाले नीचे से गोलियाँ चला रहे थे। भारतीय लोग जहाज के ऊपर होने के कारण झुककर गोलियों से बच जाते थे। उनके फेंके हुए कोयले पुलिसवालों के सिरों पर गिर रहे थे। अच्छी पिटाई खाकर पुलिसवाले लौट आए।

इधर वैंकोवर में रहनेवाले भारतीय भी निरंतर प्रयत्न कर रहे थे कि जहाज को तट से लगने की अनुमति मिल जाए। इनमें सबसे अधिक परिश्रम कर रहे थे

बलवंतसिंह। गोरे लोगों ने जहाज के जापानी अधिकारियों को भड़काया कि वे जहाज का शेष किराया ग्यारह हजार डॉलर एक साथ वसूल कर लें। यात्रियों के पास तो कुछ था नहीं। यह भार भी बलवंतसिंह पर ही पड़ा। उन्होंने वैंकोवरवासी भारतीयों के सामने ऐसा हिला देनेवाला भाषण दिया कि उन लोगों ने ग्यारह हजार डॉलर इकट्ठे कर लिये और किराया चुका दिया। जहाज को तट पर लगने की अनुमति फिर भी नहीं दी गई। कुछ प्रयत्न करने के लिए बलवंतसिंह कनाडा के दक्षिण की ओर अमेरिका की सीमा तक गए। वहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें बड़ी मुश्किल से छोड़ा गया। जब वे वैंकोवर पहुँचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि कनाडा सरकार ने भारतीय यात्रियों को समाप्त करने के लिए फौज बुलवा ली है। उधर यात्रियों ने भी तय कर लिया था कि भूख और प्यास से मरने की अपेक्षा तो मुकाबला करके मरना अच्छा होगा। जिसको जो कुछ भी मिला—लोहे के सरिए, जंजीर के टुकड़े और लट्ठे तथा कोयले के ढेले लेकर वे भी कनाडा की फौज का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गए। संघर्ष प्रारंभ होने ही वाला था कि वैंकोवर की एक पहाड़ी के ऊपर से कुछ भारतीयों ने जहाज के यात्रियों को कुछ इशारे किए। उन इशारों का मतलब था कि जैसे ही कनाडा की फौज जहाज पर हमला करेगी, हम लोग सारे वैंकोवर नगर में आग लगाकर उसे श्मशान बना देंगे। ये संकेत कनाडा के अधिकारियों ने पकड़ लिये और अपने नगर को श्मशान बनने से बचाने के लिए उन्होंने जहाज पर होनेवाला फौज का हमला रोक दिया तथा नरम रुख करके संधिवार्त्ता करने लगे। तय हुआ कि जहाज में पर्याप्त खाद्य सामग्री और पानी पहुँचाकर उसे हांगकांग लौट जाने दिया जाए। यही हुआ। कनाडा सरकार को इस सीमा तक झुकना पड़ा कि जहाज के यात्रियों के पास खाद्य सामग्री भिजवाई गई। जहाज पूरे दो महीने समुद्र में पड़ा रहकर २३ जुलाई को हांगकांग के लिए चल दिया।

जहाज के चलने तक यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया था। मालूम हुआ कि जहाज को हांगकांग नहीं ठहरने दिया जाएगा। बाबा गुरुदत्तसिंह चाहते थे कि जहाजवालों की रसद की माँग पूरी कर दी जाए तो वे आगे जाने के लिए भी तैयार हैं। याकोहामा स्थित ब्रिटिश राजदूत ने यह माँग पूरी करने से इनकार कर दिया और कोब के राजदूत ने बड़ी चालाकी के साथ जहाज को कलकत्ता के लिए रवाना कर दिया। जहाज २६ सितंबर, १९१४ को हुगली पहुँचा और २९ सितंबर को बजबज के बंदरगाह पर लाया गया। यात्रियों को जहाज से उतारकर उनपर गोलियाँ बरसाई गईं, जिसके परिणामस्वरूप अठारह सिख यात्री मारे गए और कुछ घायल हुए। अट्ठाईस यात्रियों के साथ बाबा गुरुदत्तसिंह भाग निकले। शेष को जबरन एक

विशेष ट्रेन द्वारा पंजाब भेज दिया गया। इस प्रकार पूरे छह महीने तक जहाज के यात्रियों ने समुद्र में रहकर गोरी सरकार के अकथनीय अत्याचार सहे और भारत पहुँचने पर गोलियों से उनका स्वागत हुआ। यह सब इसलिए कि भारत गुलाम था।

बलवंतसिंह ने भी यही बात लोगों को समझाई। यूरोप में महायुद्ध छिड़ ही चुका था। गदर पार्टी ने भी आह्वान किया कि अपने देश को आजाद करने के लिए लोगों को भारत पहुँचना चाहिए। माँ की पुकार पर भारत पहुँचने के लिए लोगों का ताँता लग गया।

दूसरों को उत्तेजित कर बलवंतसिंह खुद खामोश बैठनेवाले व्यक्ति नहीं थे। सपरिवार कनाडा से चल दिए और शंघाई पहुँच गए। शंघाई में ही आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। अपने परिवार को करतारसिंह के साथ भारत भेज दिया और विद्रोह फैलाने की दृष्टि से खुद स्याम देश (थाईलैंड) चले गए। वहाँ बीमार पड़ गए और अस्पताल में भरती होना पड़ा। एक फोड़ा निकल आया था। अनाड़ी डॉक्टर ने कच्चे फोड़े का ऑपरेशन कर डाला और वह भी बिना क्लोरोफार्म सुँघाए। असह्य वेदना हुई। अत्यधिक कमजोर हो गए। अस्पताल के अधिकारियों ने अस्पताल से निकाल दिया। उन्होंने जानबूझकर निकाला था। बाहर स्याम की पुलिस तैयार थी। अस्पताल से निकलते ही गिरफ्तार कर लिया गया। यह घटना अगस्त १९१५ की है।

बैंकॉक से बलवंतसिंह को सिंगापुर भेजा गया और गिरफ्तारी की दशा में ही भारत लाया गया तथा लाहौर षड्यंत्र केस द्वितीय पूरक मुकदमे में सम्मिलित कर लिया गया। ८ नवंबर, १९१६ को मुकदमा प्रारंभ हुआ, जो १४ दिसंबर, १९१६ तक चला। जजों का वही ट्रिब्यूनल था। गवाह भी सध चुके थे और रटी हुई कहानी की तरह उन्होंने गवाहियाँ दे डालीं। ५ जनवरी, १९१७ को निर्णय सुना दिया गया। छह व्यक्तियों को फाँसी का दंड सुनाया गया। बाद में एक के दंड को कालापानी के दंड में परिवर्तित कर दिया गया। लेकिन इन पाँच व्यक्तियों का फाँसी का दंड बरकरार रहा—बाबूराम, बलवंतसिंह, हफीज अब्दुल्ला, रूढ़सिंह और नैना।

इन सबको २९ मार्च, १९१७ को लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी दे दी गई।

फाँसी दिए जाने की अवधि तक बलवंतसिंह को काल कोठरी में रखकर अनेक त्रास दिए गए। सामान्य कैदियों को तो टोपियाँ दी जाती थीं, पर सिख होने पर भी आपको टोपी नहीं दी गई। आप सिर से कंबल ही लपेटे रहते थे। किसीने कुचक्र भी रच डाला। थोड़ी-सी अफीम कंबल में खोंस दी गई। आरोप लगा दिया गया कि कैदी आत्महत्या करना चाहता था। आपने बड़ी अच्छी सफाई दी—''मृत्यु सामने खड़ी है। उसके आलिंगन के लिए तैयार हो चुका हूँ। आत्महत्या करके मैं

मृत्यु-सुंदरी को कुरूपा नहीं बनाऊँगा। विद्रोह के रूप में मृत्युदंड पाने में गर्व का अनुभव करता हूँ। फाँसी के तख्ते पर ही वीरतापूर्वक प्राण त्यागूँगा।''

कुचक्र का पता भी चल गया और कुचक्र रचनेवालों को दंड भी मिला।

एक दिन आपसे भेंट करने के लिए आपकी पत्नी जेल पहुँचीं। उन्हें बताया गया कि एक दिन पहले ही उनके पति को फाँसी दी जा चुकी है। क्या बीती होगी उस अभागिन नारी पर, जो न तो अपने पति के अंतिम दर्शन कर सकी और न ही शव-दर्शन कर सकी।

भारत की आजादी के क्रम में जाने कितनी-कितनी बहनों को ऐसे दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ा है।

बलवंतसिंह आज हमारे बीच नहीं हैं। उनके वंशधर हम हैं। हम सोचें कि क्या हम ऐसे बलिदानियों के वंशधर कहलाने के योग्य हैं!

□

★ पं. परमानंद
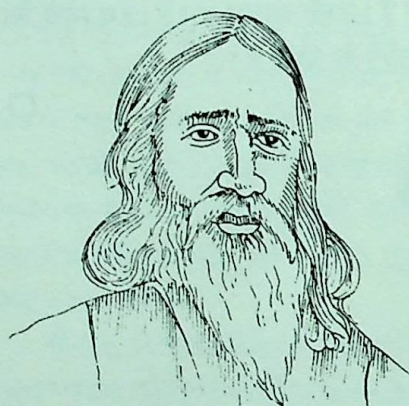
पं. परमानंद

कालापानी की काल कोठरियों में उस दिन तीव्र सनसनी फैल गई, जब कुछ बिगड़ैल भारतीय क्रांतिकारियों को तीस-तीस बेंतों की सजा सुना दी गई और उनमें से एक-एक को निकालकर उनपर कस-कसकर बेंतों के प्रहार किए जाने लगे। कोई भी कैदी किसी अन्य सजा से उतना विचलित नहीं होता था, जितना वह बेंतों की सजा से होता था। जिन क्रांतिकारी कैदियों को बेंतों की सजा नहीं हुई थी, वे पारस्परिक बातचीत द्वारा अटकलें लगा रहे थे—

''मुझे तो कोई क्रांतिकारी नहीं दिखता, जो बिना चीखे-चिल्लाए बेंतों की सजा भुगत ले।''

''आशंका तो इस बात की भी है कि कुछ लोग तो दया की भीख भी माँग सकते हैं।''

''यदि ऐसा हुआ तो सचमुच ही क्रांतिकारियों की नाक कट जाएगी; क्योंकि क्रांतिकारी और कुछ कर सकता है, पर अपने शत्रु से दया की भीख नहीं माँग सकता।''

''देखना तो यह है कि पं. परमानंद बेंतों की सजा किस तरह भुगतते हैं; क्योंकि उनको बेंत लगाने के लिए बहुत ही भयानक जल्लाद बुलाया गया है और उसे शराब भी पिलाई जाएगी।''

''हाँ, सचमुच ही पंडितजी की शामत आने वाली है; क्योंकि अंग्रेज जेलर

वारी उनसे सख्त नाराज है और वह अपनी पिटाई का उनसे कसकर बदला लेगा।''

''कसकर बदला ले तो ले, पर पंडितजी ने भी वह काम किया है कि बच्चू जिंदगी-भर नहीं भूल सकेगा। हाँ, एक बात वह जरूर भूल जाएगा और वह यह कि अब वह हिंदुस्तानियों को कभी कुत्ता नहीं कहेगा।''

''हाँ, भाई! पंडितजी की दिलेरी और सूझबूझ को तो हम सब लोग मान गए। यदि उस दिन उनके पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ नहीं पड़ी होतीं तो सचमुच ही वे उस जेलर वारी के बच्चे का गला घोंट देते।''

''हथकड़ियाँ पहने हुए भी दोनों हाथों का क्या भरपूर वार उन्होंने वारी के सिर पर मारा कि वह गिरकर धूल चाटने लगा!''

''हथकड़ियोंवाले हाथों से ही पंडितजी ने उसके सिर के बाल पकड़कर उसके सिर को दो-चार बार जमीन से दे मारा था।''

''वह अंग्रेज का बच्चा अब कम-से-कम पंडितजी के साथ तो कोई गुस्ताखी नहीं कर सकता।''

''गुस्ताखी भले ही न करे, पर वह पंडितजी को तरह-तरह से सताएगा अवश्य।''

और सचमुच ही जेलर वारी ने पं. परमानंद के लिए बहुत सख्त सजा की तजवीज कर डाली। सबसे पहले उन्हें तीस कोड़ों की सजा पानी थी। उसके पश्चात् तीन महीने तक उन्हें टाट के कपड़े पहनने थे। इस सजा के पश्चात् उन्हें अगले तीन महीनों के लिए डंडा-बेड़ी में रहना था। वैसे तो बेड़ी की सजा ही काफी होती है, पर यदि बेड़ियों के साथ लोहे का डंडा और लगा दिया जाए तो कैदी को अच्छी-खासी परेशानी होती है। इससे उसके पैर छिलते रहते हैं और उनमें फफोले पड़कर फूटते रहते हैं। तीन-तीन महीनों की इन सजाओं के उपरांत उन्हें तीन महीने बिलकुल अँधेरी कोठरी में भी रहना था, जिसमें कैदी को अन्य वस्तुएँ तो क्या, अपने ही अंग दिखाई नहीं देते थे।

पं. परमानंद की सजा का प्रारंभ बेंतों की सजा से हुआ। उनके पहले उन लोगों को बेंत लगाए गए, जो पंडितजी के साथ जेलर के पिटाई-अभियान में सम्मिलित थे। उनमें से कुछ ऐसे थे, जिन्होंने बेंत खाते समय काफी धैर्य और संयम का प्रदर्शन किया; पर ऐसा कोई नहीं था, जिसके मुँह से हर बेंत के साथ चीख न निकली हो। बेंत खानेवालों में कुछ ऐसे भी थे, जो हर बेंत के साथ बेतहाशा चिल्ला रहे थे और जिनकी हाहाकारों से पूरी जेल गूँज रही थी। जेल के अधिकारी भी चाहते थे कि बेंतों की मार पड़ते समय कुहराम मचे और अन्य कैदी आतंकित होकर कोई उपद्रव न मचाएँ। चीखने-चिल्लानेवालों में कुछ ऐसे भी थे, जिनपर

मार तो धीरे-धीरे पड़ रही थी, पर वे शोर अधिक मचा रहे थे। बेंत का हलका-सा प्रहार होने पर भी वे इस तरह चिल्लाते थे जैसे उनपर बिजली का हंटर पड़ रहा हो। उन लोगों ने जेल के अधिकारियों के साथ तिकड़म कर रखी थी। जेलों में तिकड़म का खास महत्त्व होता है। तिकड़म के आधार पर कैदियों को जेलों में वे सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं, जिनकी उनके लिए मनाही होती है। यह तिकड़म का ही फल होता है कि बेंत मारनेवाला और बेंत खानेवाला—दोनों ही जोर-शोर का प्रदर्शन करते हैं; पर बेंत आहिस्ता-आहिस्ता पड़ते हैं।

जब अन्य लोगों को बेंतों की सजा दी जा चुकी तो पं. परमानंद को उनकी कोठरी से निकाला गया। वस्त्रहीन करके उनके हाथ-पैर एक तिपाई से बाँध दिए गए। विशेष रूप से बुलाए गए एक जल्लाद ने बेंत का एक भरपूर हाथ पं. परमानंद की पीठ पर छोड़ दिया। बेंत से 'सटाक' का तीव्र स्वर निकलकर जेल की कोठरियों में गूँज गया। पंडितजी ने 'सी' तक नहीं की और अगला बेंत खाने के लिए और अधिक दृढ़ता के साथ तन गए। जल्लाद एक कदम पीछे हटा और घुमा-घुमाकर एक साथ चार-पाँच भरपूर हाथ उसने पंडितजी की नंगी पीठ पर दे मारे। वह इस बात पर तुला हुआ था कि पंडितजी से 'सी' कराके रहेगा और पंडितजी संकल्पित थे कि वे किसी प्रकार की कमजोरी का प्रदर्शन नहीं करेंगे। पास में खड़े हुए जेलर वारी ने घूरकर जल्लाद की तरफ देखा। उसे लगा जैसे वह पूरी ताकत से बेंत नहीं मार रहा हो। अपनी पिटाई का बदला लेने के लिए जेलर ने जल्लाद के हाथ से बेंत लेकर अपनी पूरी ताकत से दो-चार हाथ पंडितजी की पीठ पर दे मारे। उसने देखा कि पंडितजी के शरीर पर सिहरन तक नहीं हुई और उसके बेंतों के निशान जल्लाद के बेंतों की अपेक्षा क्षीण थे। उसने बेंत फिर जल्लाद को दे दिया। जल्लाद ने और अधिक क्रोधित होकर तीस तक बेंतों की गिनती पूरी की। बेंतों की मार से पं. परमानंद की पीठ पर निशान ही नहीं पड़े थे, जगह-जगह से खाल तक उधड़ गई थी और लहू टपकने लगा था। तिपाई से जब उनके हाथ-पैर खोले जाने लगे तो जेलर वारी अपनी सुरक्षा के लिए दूर जाकर खड़ा हो गया। पंडितजी ने उसकी ओर घूरते हुए कहा—"अब कभी मेरे दाँव में आया तो जिंदा नहीं छोड़ूँगा।"

होता यह था कि जिस कैदी को बेंत लगते थे, उसे बेंतों की सजा के बाद स्ट्रेचर पर डालकर ले जाया जाता था; क्योंकि वह लगभग अधमरा हो जाता था। पंडितजी के लिए भी स्ट्रेचर लाया गया; पर उसकी ओर उन्होंने घृणा के साथ देखा और खट-खट करके, एक साँस में जीना चढ़कर ऊपर की मंजिल की अपनी कोठरी में जा पहुँचे। उनके साथी क्रांतिकारियों के वक्ष गर्व के साथ फूल उठे। जेल

के अधिकारी अब पंडितजी से दहलने लगे और कर्मचारी तो उनको भरसक सुविधाएँ देने लगे। उनकी बहादुरी ने कहानियों का रूप धारण कर लिया।

कालापानी की काल कोठरियों की यातनाओं पर पंडितजी उसी प्रकार हावी हो गए जैसे उनकी तेजस्विता सिंगापुर में ब्रिटिश हुकूमत पर हावी हुई थी। पं. परमानंद अमेरिका की 'गदर पार्टी' के संस्थापकों में से एक थे और जापान में भारतीय क्रांतिकारियों को संगठित करने के लिए उन्हें जापान भेजा गया था। यह निश्चित हुआ था कि 'गदर पार्टी' के क्रांतिवीर जब विशेष जहाजों द्वारा अमेरिका से प्रस्थित होंगे तो जापान से पं. परमानंद भी उसके दल में सम्मिलित हो जाएँगे।

भारतीय क्रांतिकारियों का पहला जत्था २९ अगस्त, १९१४ को 'कोरिया' जहाज द्वारा सानफ्रांसिस्को से चला। क्रांतिकारी लोग छोटे-छोटे दलों में विभक्त हो गए। उन सभी को अपना कर्तव्य ज्ञात था। उन्हें मार्ग में हथियार मिलने की आशा थी। अन्य देशों से हथियार प्राप्त न होने की दशा में उन्हें भारत पहुँचकर पुलिस थानों और शस्त्रागारों पर हमले करके हथियार प्राप्त करने थे और अंग्रेजों के साथ भारत की आजादी की लड़ाई लड़नी थी।

गदर पार्टी के क्रांतिवीरों को लेकर 'कोरिया' जहाज जापान के याकोहामा बंदरगाह जा पहुँचा। वहाँ पं. परमानंद क्रांतिकारियों से जा मिले। 'कोरिया' जहाज के अतिरिक्त क्रांतिकारियों की कुछ टोलियाँ 'मशीमामारू', 'साइबेरिया' और 'मैक्सिकोमारू' जहाजों द्वारा भी आजादी की यात्रा पर चल पड़ीं। सभी टोलियों का मिलन हांगकांग में हो गया। आगे की यात्रा में कई तरह की कठिनाइयाँ थीं।

पं. परमानंद का जहाज अंततोगत्वा सिंगापुर जा पहुँचा। सिंगापुर अंग्रेजी साम्राज्य का सिंहद्वार था। क्रांतिकारियों ने तय किया कि क्रांति की ज्वाला सिंगापुर में भी सुलगाई जाए। निश्चय के अनुसार एक इनकलाबी मीटिंग का आयोजन सिंगापुर में किया गया, जिसमें उन सभी हिंदुस्तानी फौजियों को आमंत्रित किया गया, जो अंग्रेजी पल्टनों में सेवारत थे। इनकलाबी मीटिंग की तैयारी तो हो गई, पर प्रश्न यह था कि सभा को संबोधित कौन करे। सभी की आँखें तरुण विद्रोही पं. परमानंद पर जा टिकीं। पंडितजी ने अनुरोध को स्वीकार किया और बोलने के लिए खड़े हो गए। सिंगापुर की इनकलाबी मीटिंग में सैकड़ों की संख्या में पं. परमानंद के क्रांतिकारी साथी ही थे। उनके अतिरिक्त जहाज के अन्य सामान्य यात्री भी थे।

अंग्रेज पल्टनों के सैकड़ों जवान और अफसर भी आमंत्रण पाकर मीटिंग में सम्मिलित हुए थे। इसके पहले भी पं. परमानंद सिंगापुर में गीता के 'कर्मयोग' पर भाषण देकर लोकप्रिय हो चुके थे। लोगों ने उन्हें पहचानकर जोरदार तालियों द्वारा उनका स्वागत किया। पंडितजी के विद्रोही स्वर लहराने लगे—"भाइयो! हम और

आप सभी भारत के सिपाही हैं। आप सिपाही हैं, भारत माता के वीर पुत्र हैं। आपकी भुजाओं में बल है और दिलों में साहस का तूफान है। आप लोग उन वीरों की संतान हैं, जिनको अंग्रेजों ने दिल्ली से पटना तक दरख्तों से टाँग-टाँगकर फाँसियों पर झुलाया था। आज आपके वे ही पूर्वज भारत की आजादी के लिए आपका आह्वान करते हैं।''

पं. परमानंद बोले जा रहे थे और लोगों के दिलो-दिमाग पर उनके स्वर का जादू चढ़ता जा रहा था। उनके स्वर अब और अधिक मनोवैज्ञानिक ऊँचाई पर पहुँचने लगे—''अपने उन वीर पूर्वजों का रक्त हमारी और आपकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा है। अगर हमारा खून असली है तो वह भावनाओं की टक्कर लगते ही उछल पड़ेगा। अगर वह न उछला तो समझना चाहिए कि हमारे रक्त में अवश्य कुछ फर्क पड़ गया है। बस आप सिपाही हैं और वीरता के सब साधन आपके पास हैं। अपने पूर्वजों का बदला लेकर उनके ऋण से मुक्ति प्राप्त कीजिए और अपने देशवासियों को गुलामी से मुक्त कीजिए।''

क्रांतिवीर पं. परमानंद के स्वरों का जादू अंग्रेजी फौजियों पर पूरी तरह से चढ़ चुका था। विद्रोह की चिनगारी सुलगाकर क्रांतिकारियों का जहाज अपनी मंजिल पर आगे बढ़ गया और उधर अंग्रेजी पल्टनों ने विद्रोह का बिगुल बजा दिया। भयंकर रक्तपात के परिणामस्वरूप सिंगापुर में भारतीय झंडा फहरा दिया गया। इक्कीस दिन तक सिंगापुर ब्रिटिशं साम्राज्य से मुक्त रहा।

अपने स्वरों में वही आग और वही जादू लेकर पं. परमानंद गदर वीरों के साथ भारत जा पहुँचे। अमेरिका एवं कनाडा से आए हुए गदर पार्टी के कुछ लोग तो भारत पहुँचते ही गिरफ्तार कर लिये गए तथा कुछ लोग बच निकले और पंजाब पहुँच गए। पं. परमानंद भी पंजाब पहुँचकर विप्लव यज्ञ की तैयारी में जुट गए। उनमें यह विशेषता थी कि वे अपनी वाणी के जादू एवं व्यक्तित्व के प्रभाव से फौजियों को अपनी ओर मिला लेते थे और उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़का देते थे। इसी कार्य के लिए उन्हें पेशावर भेजा गया कि वे ब्रिटिश फौजों को इस बात के लिए राजी करें कि संकेत मिलते ही निश्चित तारीख को विद्रोह का बिगुल बजा दें। पं. परमानंद यह काम बखूबी कर आए।

सारे पंजाब, उत्तर प्रदेश और अन्य प्रांतों में क्रांति के ताने-बाने तैयार कर लिये गए। क्रांतिकारी लोग धड़कते हुए दिलों से निश्चित तारीख की प्रतीक्षा करने लगे। वे प्रतीक्षा कर रहे थे उस घड़ी की, जब क्रांति महायज्ञ में अंग्रेजों की आहुतियाँ दी जाने को थीं; वे प्रतीक्षा कर रहे थे उस घड़ी की, जब देश के दीवाने

अपनी रक्तांजलियों से स्वतंत्रता की देवी की अर्चना करने को थे। कभी-कभी प्रतीक्षा निष्फल भी हो जाती है। क्रांतिकारियों की प्रतीक्षा का भी यही हश्र हुआ। क्रांतिकारियों के साथ मिले हुए एक गद्दार कृपालसिंह ने विद्रोह के विस्फोट की सूचना ब्रिटिश हुकूमत को दे दी और सारी तैयारियों पर पानी फिर गया। फौजी शस्त्रागारों से हिंदुस्तानियों को हटाकर वहाँ अंग्रेजों को नियुक्त किया गया। क्रांतिकारियों के सभी संभावित अड्डों पर छापे मारे गए और भारी संख्या में उन्हें गिरफ्तार किया गया। कई क्रांतिकारियों को फाँसी के फंदों पर लटका दिया गया।

पं. परमानंद भी गिरफ्तार हुए और उन्हें आजीवन कारावास का दंड देकर अंडमान की काल कोठरियों में डाल दिया गया। जंगल का शेर अब पिंजड़े में था; लेकिन उसकी दहाड़ से पिंजड़े के रक्षकों के कलेजे काँप उठते थे। आखिर उसने कालापानी के कुख्यात जेलर वारी पर झपट्टा मार ही दिया और उसे बता दिया कि हिंदुस्तानी शेर कितने भयानक होते हैं। तीस बेंतों की सजा पाकर उसका रुतबा घटा नहीं, और अधिक बढ़ गया। सारे भारतवर्ष में इस बात के लिए जोरदार आंदोलन छेड़ा गया कि क्रांतिकारियों को कालापानी से हटाकर भारत की जेलों में रखा जाए। आंदोलन सफल हुआ और कालापानी की काल कोठरियों से निकालकर क्रांतिकारियों को भारत की विभिन्न जेलों के अंदर ठूँस दिया गया। पं. परमानंद को अहमदाबाद के केंद्रीय कारागार में रखा गया।

अपने हँसमुख स्वभाव व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के कारण पं. परमानंद अहमदाबाद की जेल में सभी क्रांतिकारी बंदियों और जेल अधिकारियों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हो गए। यद्यपि वे जेल के अंदर एक क्रांतिकारी कैदी ही थे, फिर भी जेल की यातनाओं और असुविधाओं से मुक्त थे। वे अब जेल के अंदर बुनाई मास्टर थे और सारे कैदियों को वे दरी-निवार आदि बुनना सिखाते थे। जेल के अंदर घूमने-फिरने की उन्हें पूरी स्वतंत्रता थी और अपनी इस सुविधा का उपयोग वे अन्य क्रांतिकारी कैदियों को सुख-सुविधाएँ वितरित करने में करते थे।

पं. परमानंद को सुख-सुविधाओं का यह जीवन रास नहीं आया। भला वह भी क्या जेल-जीवन, जिसमें भोजन में कंकड़-बालू तथा डंडों की मार खाने को न मिले और जहाँ अँधेरी कोठरी व डंडा-बेड़ी की सजाएँ एवं मशक्कत के काम न मिलें। पं. परमानंद को कालापानी की जेल में मिले इस प्रकार के उपहार याद आने लगे और वे अहमदाबाद जेल में उन्हें पाने के लिए लालायित हो उठे। अवसर भी बहुत शीघ्र ही उनके हाथ लग गया। वह समय १९३०-३१ का था। सारे देश में गांधी आंदोलन की लहर चल रही थी। जेल में बंद क्रांतिकारी बम और पिस्तौल के खेल तो खेल नहीं सकते थे, फिर अहिंसात्मक आंदोलन अपनाने से उन्हें कौन

रोक सकता था! जेल के अंदर 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाए जाने लगे। क्रांतिकारियों ने अपने कपड़े फाड़-फाड़कर और तिकड़म से उन्हें रँगवाकर तथा उनके तिरंगे झंडे बनवाकर जगह-जगह उन्हें खोंस दिया। कुछ लोगों ने जेल के अंदर के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर भी इस प्रकार के तिरंगे झंडे लगा दिए। किसी-न-किसी रूप में लगभग एक महीने तक जेल के अंदर आंदोलन का यह क्रम चलता रहा। जेल अधिकारियों को यह समझते देर नहीं लगी कि इस आंदोलन के नेता पं. परमानंद ही हैं। उनसे बुनाई मास्टर का पद छीन लिया गया और उन्हें टाट के कपड़े, अँधेरी कोठरी और डंडा-बेड़ी की सजाएँ दे दी गईं। पं. परमानंद तो यही चाहते थे। जब जेल अधिकारियों को पता चला कि इस हाल में भी वे मगन हैं, तो उन्हें फाँसी की सजा पाए क्रांतिकारियों की कोठरी में बंद कर दिया गया। आएदिन ही उनका कोई साथी फाँसी की सजा पाता और उनका साथ छोड़कर चला जाता। उन्हें ठीक करने के लिए ही उन्हें साथियों के चिरवियोग का दंड दिया गया था। पं. परमानंद ने मौत को बहुत निकट से देखा और उसके प्रति एक दार्शनिक भाव की सृष्टि उन्होंने कर डाली।

अहमदाबाद के केंद्रीय कारागार की यातनाएँ भी महान् क्रांतिकारी पं. परमानंद को तोड़ न सकीं। उस जेल के सात वर्षों के लंबे जीवन में जाने कितने-कितने क्रांतिकारी साथी उनके स्नेहपूर्ण सान्निध्य की स्निग्धता पाते रहे। इस प्रकार होते-होते १९३७ का समय आ पहुँचा और देश के कुछ प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल गठित होने की पहल प्रारंभ हो गई। आंदोलन की शर्तों के अनुसार अधिकांश क्रांतिकारी जेलों से मुक्त कर दिए गए। पं. परमानंद भी मुक्त होनेवालों में से एक थे। उस समय के कांग्रेसी मंत्रिमंडल राज-सुख भोगने के लिए नहीं बने थे। वे देश को पूर्ण आजादी दिलाने के लिए बने थे। जब यह लक्ष्य पूरा होता हुआ दिखाई नहीं दिया तो कांग्रेसी मंत्रिमंडल भंग हो गए और आजादी का आंदोलन फिर उग्र हो उठा। क्रांतिकारी लोग भी अपने ढंग से फिर सक्रिय हो उठे। वे भूमिगत जीवन अपनाकर देश की आजादी के आंदोलन में अपना योगदान देने लगे।

ब्रिटिश शासन ने क्रांतिकारियों पर कुछ गलत आरोप लगाए थे। उसका निराकरण करने के लिए आवश्यक था कि कोई क्रांतिकारी या तो वक्तव्य प्रकाशित करता या किसी आमसभा में स्थिति को स्पष्ट करता। यह दायित्व प्रसिद्ध क्रांतिकारी योगेशचंद्र चटर्जी ने अपने ऊपर लिया। दिल्ली के एक महत्त्वपूर्ण स्थान पर उन्होंने सार्वजनिक सभा करके क्रांतिकारियों की ओर से सफाई देने का निश्चय किया। उन्हें मालूम था कि मीटिंग करते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाएगा; फिर भी उन्होंने मीटिंग की व्यवस्था कर डाली। उन्हें विश्वास था कि उनकी

गिरफ्तारी के पश्चात् पं. परमानंद क्रांतिकारी गतिविधियों का सुचारु रूप से संचालन कर सकेंगे। उन्होंने पंडितजी को समझाते हुए कहा—"पंडितजी! मैं तो दल की सफाई के लिए मीटिंग ले रहा हूँ और बहुत संभव है कि मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ। आपसे मेरा निवेदन यही है कि आप स्वयं को गिरफ्तारी से बचाए रखें और दल का नेतृत्व करते रहें।"

पं. परमानंद ने 'हूँ-हूँ' करके योगेशचंद्र चटर्जी को कुछ आश्वासन दे दिया। नियत स्थान पर निश्चित समय सार्वजनिक सभा हुई। वक्ता के रूप में योगेशचंद्र चटर्जी ने अपने क्रांतिकारी विचार रखने प्रारंभ किए। वे धीरे-धीरे ब्रिटिश शासन की नीतियों की धज्जियाँ उड़ाने लगे। ब्रिटिश हुकूमत यह कब सहन कर सकती थी। पुलिस की अच्छी-खासी व्यवस्था पहले से ही कर ली गई थी। भाषण के मध्य ही योगेशचंद्र चटर्जी को गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस की सरगर्मी देख सभा विसर्जित होने लगी। तभी पास ही की एक झाड़ी में से शेर की तरह पं. परमानंद प्रकट होकर मंच पर चढ़ गए और अपनी सिंह-गर्जना प्रारंभ कर दी—"भाइयो! आप लोग यह न समझिए कि योगेशचंद्र चटर्जी की गिरफ्तारी से ब्रिटिश हुकूमत की गलत नीतियों की धज्जियाँ उड़ानेवाला कोई व्यक्ति यहाँ नहीं है। मैं पं. परमानंद, आप लोगों के सामने हूँ और मैं अपनी बात वहीं से प्रारंभ करूँगा, जहाँ से योगेशचंद्र चटर्जी को बात कहने से रोका गया था। आवश्यकता इस बात की है कि आप लोग अपने स्थान पर डटे रहें और मेरा वक्तव्य सुनें तथा ब्रिटिश हुकूमत को यह बता दें कि क्रांतिकारियों की जबान बंद नहीं की जा सकती।"

और फिर पं. परमानंद ने सचमुच ही दुगुने जोश के साथ ब्रिटिश हुकूमत की बखिया उधेड़ना प्रारंभ कर दिया। उपस्थित जनता भी जोश खा गई। उत्तेजना के उस वातावरण में पुलिस ने पं. परमानंद को गिरफ्तार करने की हिमाकत नहीं की; पर जैसे ही वे भाषण समाप्त करके मंच से नीचे उतरे और अपने गंतव्य की ओर जाने लगे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पं. परमानंद तो यही चाहते थे। देश की आजादी के लिए जेल जाना और जेल के अंदर भी बगावत फैलाना उनका जीवन-क्रम बन गया था। इस बार जो उन्हें बंद किया गया तो आजाद देश की हवा में ही मुक्ति की साँस लेने को मिली। पं. परमानंद का बागी स्वभाव बरकरार रहा और अपनी सरकार को भी आड़े हाथों लेने से वे कभी चूके नहीं। अन्याय को सहना या उससे समझौता करना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। क्रांतिकारी किसे कहते हैं, जब कभी यह समझने की आवश्यकता पड़ती है तो पं. परमानंदजी का चित्र सामने आ जाता है।

□

★ भाई परमानंद

भाई परमानंद

लाहौर का डी.ए.वी. कॉलेज उन दिनों क्रांतिकारियों का अड्डा बना हुआ था। लगभग सभी प्राध्यापक क्रांतिकारी विचारधारा के थे, जो अपने विद्यार्थियों को भी क्रांतिकारी विचारों से दीक्षित करते रहते थे। प्राध्यापकों में भाई परमानंद भी एक थे। इनके नाम के साथ 'भाई' शब्द इसलिए जोड़ा जाता था, क्योंकि इनके एक पूर्वज मतिराम को मुगल शासनकाल में आरे से चीरकर मारा गया था और उस बलिदानी को लोग 'भाई मतिराम' कहकर पुकारने लगे थे। उस समय से उस वंश के सभी लोगों के नाम के साथ 'भाई' शब्द जुड़ गया।
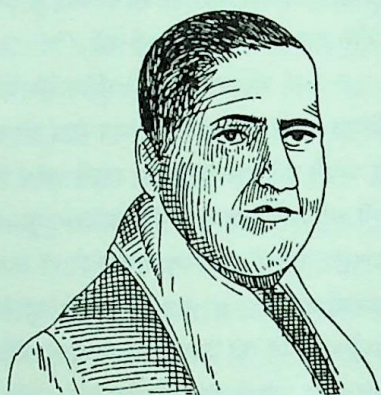
भाई परमानंद लाहौर के जिस मकान में रहते थे, किसी समय उसमें शहीद भगतसिंह के चाचा तथा महान् क्रांतिकारी सरदार अजीतसिंह रहते थे। यद्यपि सरदार अजीतसिंह भारत छोड़कर ईरान पहुँच चुके थे, पर उनका कुछ सामान उस मकान में पड़ा रह गया था, जिसमें भाई परमानंद रह रहे थे। एक दिन पुलिस ने मकान को घेरकर उसकी तलाशी ली और कुछ आपत्तिजनक साहित्य जब्त किया। भाई परमानंद भी लपेट में आ गए। यह घटना सन् १९१० की है। लाला दुर्गादास के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप तीन साल तक अच्छे चाल-चलन की जमानत पर भाई परमानंद को छोड़ा गया। अदालत ने उन्हें छोड़ा तो इधर कॉलेज ने भी उन्हें छोड़ दिया।

नौकरी छूट जाने के पश्चात् भाई परमानंद ने आर्य-प्रचारक के रूप में विदेशों में काम करना प्रारंभ कर दिया। इंग्लैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा से भी उनकी भेंट हुई। उन्होंने अफ्रीकी देशों में से मुंबासा, नैरोबी, ट्रांसवाल, केप कॉलोनी और जोहान्सबर्ग में आर्य धर्म का प्रचार किया। जोहान्सबर्ग में तो एक महीने तक आप गांधीजी के घर में रहकर प्रचार कार्य करते रहे।

भाई परमानंद का विचार हुआ कि ओषधि निर्माण के लिए एक फार्मेसी खोली जाए। इस कार्य का प्रशिक्षण लेने के लिए आपने अमेरिका जाने का निश्चय

किया। अमेरिका जाने से पूर्व आप फ्रांस गए और वहाँ आपको मालूम हुआ कि भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल फ्रांसीसी उपनिवेश लॉ मार्टीनिक के पहाड़ों में तपस्या कर रहे हैं। भाई परमानंद उस द्वीप पर जा पहुँचे। पर समस्या यह थी कि लाला हरदयाल का पता कैसे लगाया जाए; क्योंकि डाकखानेवालों को भी उनके घर का पता मालूम नहीं था। लाला हरदयाल डाकखाना पहुँचकर ही अपने पत्र ले जाते थे। एक हब्शी कुली की सहायता से भाई परमानंद ने लाला हरदयाल को खोज निकाला।

भाई परमानंद के तर्क अकाट्य होते थे। वे व्यक्ति के दिल की तह में पहुँचकर उसके विचारों को बदल देते थे। उन्होंने लाला हरदयाल को भी तपस्या छोड़कर क्रांति कार्य को फिर से हाथ में लेने के लिए राजी कर लिया।

कुछ दिन पश्चात् लाला हरदयाल और भाई परमानंद—दोनों ही कैलिफोर्निया पहुँच गए। लाला हरदयाल ने सानफ्रांसिस्को में गदर पार्टी संगठित कर ली। भाई परमानंद भी उसमें कार्य करते थे; पर इसके अतिरिक्त वे ओषधि निर्माण का प्रशिक्षण भी प्राप्त करते जा रहे थे।

वे प्रथम विश्वयुद्ध के दिन थे। लाला हरदयाल एवं भाई परमानंद के विचारों से प्रेरित होकर हजारों भारतीय अमेरिका और कनाडा से गदर कराने के इरादे से भारत पहुँचने लगे।

ओषधि निर्माण का प्रशिक्षण प्राप्त करके भाई परमानंद इंग्लैंड होते हुए भारत पहुँचे। ओषधि निर्माण के लिए उन्होंने इंग्लैंड से कुछ रसायन खरीदे और उन्हें जहाज में अपने साथ भारत ले चले। जब उनका जहाज कलकत्ता पहुँचा तो उनकी तलाशी ली गई और उनकी सामग्री में जो रसायन थे, उन्हें विस्फोटक द्रव्य समझकर गिरफ्तार कर लिया गया।

'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' के अंतर्गत भाई परमानंद पर मुकदमा चलाया गया और १३ सितंबर, १९१५ को निर्णय सुना दिया गया। जिन चौबीस व्यक्तियों को फाँसी की सजा सुनाई गई थी, उनमें भाई परमानंद भी एक थे। बाद में आपकी फाँसी की सजा आजन्म कारावास के दंड में परिवर्तित हो गई। इक्कीस वर्षों तक आप अंडमान की जेल में रहे। वहाँ वे सभी कार्य आपको करने पड़ते थे, जो कैदियों से कराए जाते थे। इक्कीस वर्षों तक जेल की यातनाएँ सहन करने के पश्चात् आपको वहाँ से मुक्ति मिली।

□

★ पांडुरंग सदाशिव खानखोजे
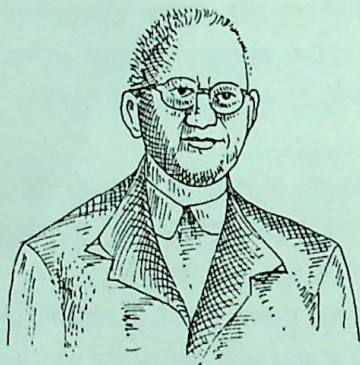
पांडुरंग सदाशिव खानखोजे

" 'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' के माध्यम से भारतीय युवक वर्ग में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न तो हो गई है; पर यह चेतना कार्यरूप में किस प्रकार ढलेगी, क्या इस बात पर भी कभी विचार किया है?"

"हाँ, मैंने इस समस्या के हर पहलू पर विचार किया है। युवक वर्ग में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को कार्यरूप में ढालने के लिए या तो विद्रोह का विस्फोट आवश्यक है या अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर महायुद्ध का विस्फोट।"

"इनमें से किसकी संभावना आपको अधिक निकट दिखाई देती है?"

"वैसे विद्रोह के विस्फोट के लिए किसी मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं होती; पर इस समय भारत में इसकी संभावना बहुत धूमिल है। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् हमारे कुछ वीरों द्वारा किए गए व्यक्तिगत प्रयासों का दमन भी ब्रिटिश हुकूमत ने इतनी निर्दयता के साथ किया है कि लोग अभी तो सिर उठाने का भी साहस नहीं कर पा रहे। हाँ, यदि महायुद्ध का विस्फोट हो तो स्वाधीन होने के लिए भारत को एक अच्छा अवसर हाथ लग सकता है।"

"महायुद्ध के विस्फोट तक के लिए क्या हम लोगों को हाथ-पर-हांथ रखे बैठे रहना चाहिए?"

"नहीं, हमको एक मिनट भी हाथ-पर-हाथ रखे नहीं बैठे रहना चाहिए। अवसर के स्वागत की तैयारी के लिए हमें अभी से जुट जाना चाहिए।"

"मेरा आशय है कि हमारे युवकों को सैन्य-शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। युद्ध के दिनों में आंतरिक विद्रोह करना भी बहुत आवश्यक होगा। इस आंतरिक विद्रोह को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए यदि हमारे नवयुवक बम निर्माण का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें तो बहुत अच्छा होगा।"

"सैन्य-शिक्षण और बम निर्माण के प्रशिक्षण की सुविधाएँ हमें अपने देश में तो नहीं मिल सकतीं।"

''तो आप लोग बाहर क्यों नहीं निकलते ? विदेशों में जाइए और वहाँ ये कलाएँ सीखिए। स्वयं सीखकर अपने देशवासियों को सिखाइए और उचित अवसर के आगमन पर आग एवं मौत के खेल रचाइए। दिल में आग लिये हुए स्वयं को जलाते रहने से तो काम नहीं चलेगा।''

''निश्चित रूप से आपके इन विचारों से मुझे कुछ करने की प्रेरणा मिली है। अब मेरा प्रत्येक कदम कर्तव्य के रास्ते पर ही उठेगा। मैं यह मानकर तो चलूँ ही कि आपका आशीर्वाद मेरे साथ रहेगा।''

''मेरा आशीर्वाद तो आप लोगों के साथ रहेगा ही। आप लोग ऐसे काम करें कि आनेवाली पीढ़ियाँ भी कृतज्ञता के साथ आप लोगों को याद करें। ईश्वर उन्हींसे प्रसन्न होता है, जो कुछ करके दिखाते हैं।''

ये बातें हो रही थीं महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और पांडुरंग सदाशिव खानखोजे नाम के एक युवक के बीच। तिलकजी से गुरुमंत्र प्राप्त करके नौजवान चला गया। क्रांति के रास्ते पर उसके कदम बहुत तेजी के साथ बढ़ चले।

महाराष्ट्र में ७ नवंबर, १८८४ को जनमे पांडुरंग सदाशिव खानखोजे का घर नागपुर में था। बचपन से ही उसके विचार बहुत उग्र और आग्नेय थे। तिलक जैसे कर्मवीर से दीक्षा लेकर वह युवक भारत से बाहर हो गया और चीन तथा जापान में उसने बम निर्माण का प्रशिक्षण प्राप्त किया। चीन एवं जापान में कुछ भारतीय लोग पहले से ही रह रहे थे। उनके माध्यम से खानखोजे ने उन देशों के उग्रवादियों से संपर्क स्थापित करके विस्फोटक पदार्थों का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया। खानखोजे को केवल विस्फोटक पदार्थों के ज्ञान से संतोष नहीं हुआ। वे तो सैन्य-विज्ञान और युद्ध-कला का अधुनातन प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते थे। जापान में अपने मित्र और सहयोगी काउंट ओकूमासा से इस संबंध में उन्होंने चर्चा की। काउंट ओकूमासा ने उन्हें बताया कि यहाँ जितना ज्ञान आपने प्राप्त कर लिया है, उससे आगे कुछ आपको बताना हमारे लिए संभव नहीं है; क्योंकि किसी सीमा तक हमारा राष्ट्र इंग्लैंड के साथ संधि-सूत्र में बँधा हुआ है।

खानखोजे तो भारत से यह संकल्प करके चले थे कि वे सैन्य-विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त करके रहेंगे। उनका विचार हुआ कि स्वाधीन देश अमेरिका में संभवत: उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हो जाए। इसी विचार से उन्होंने अमेरिका पहुँचने का निश्चय कर डाला। वहाँ पहुँचने के पूर्व उन्होंने चीन और जापान में भारतीय क्रांतिकारियों के कुछ केंद्र स्थापित किए। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में ये केंद्र भारत के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

जापानी बंदरगाह याकोहामा से एक जहाज में सवार हो खानखोजे १९०८ में

कैलिफोर्निया के सानफ्रांसिस्को नगर पहुँचकर वहाँ से बर्कले चले गए। उस समय वहाँ भारत के सुरेंद्र मोहन बोस, अधरचंद्र लश्कर, खगेनदास और तारकनाथ दास आदि विद्याध्ययन के साथ-साथ प्रवासी भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का प्रचार कर रहे थे। खानखोजे के वहाँ पहुँच जाने पर योजना कुछ आगे बढ़ी और निश्चित हुआ कि कुछ साथी अमेरिकन मिलिट्री में प्रविष्ट होकर सैन्य-विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त करें। यह काम बहुत कठिन था, फिर भी खानखोजे इस कार्य के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। उन्हें मिलिट्री अकादमी में सीधा प्रवेश नहीं मिला। अपने साथी अधरचंद्र लश्कर के साथ पहले वे अमेरिकन फौजी अफसरों की मेजों पर खाना लगानेवाले खानसामाओं के रूप में प्रविष्ट हुए और अपने अफसरों को खुश करके उन्होंने अकादमी में प्रविष्ट होने की सफलता प्राप्त कर ली। बहुत मन लगाकर उन्होंने सैन्य-विज्ञान और युद्ध-कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उन्होंने सैन्य अनुशासन का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया और उसके महत्त्व को समझा। थलसेना के अंतर्गत ही उन्होंने तोपखाने के संचालन का काम भी सीखा।

खानखोजे की अभिलाषा थी कि वे युद्ध संबंधी उन गूढ़ रहस्यों का ज्ञान भी प्राप्त करें, जिनका प्रशिक्षण केवल सर्वोच्च अधिकारियों को ही प्रदान किया जाता है। उन्हें ज्ञात हुआ कि अमेरिका की नागरिकता मिले बिना वह संभव नहीं। उन्होंने अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने का भी बहुत प्रयत्न किया; पर इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। मिलिट्री अकादमी का डिप्लोमा प्राप्त करके वे पोर्टलैंड पहुँच गए।

सन् १९१० में अमेरिका का पोर्टलैंड नगर भारतीय क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया। पंजाब के पं. काशीराम उन दिनों पोर्टलैंड में ही थे और बगीचों में फल तुड़वाने की ठेकेदारी करके उन्होंने अच्छा धन कमाया था। सोहनसिंह भकना भी ग्रंथी के रूप में वहीं थे। खानखोजे के वहाँ पहुँच जाने पर राजनीतिक कार्य और तेजी के साथ चल निकला। उन लोगों ने मिलकर 'भारतीय स्वाधीनता संघ' नाम की एक संस्था की स्थापना कर डाली, जो आगे चलकर 'गदर पार्टी' के रूप में परिवर्तित हो गई। 'भारतीय स्वाधीनता संघ' की शाखाएँ सैक्रिमेंटो और कैलिफोर्निया में भी खोली गईं। इस संघ ने अपना एक उद्देश्य पत्र भी तैयार करके छपवाया और उसकी प्रतियाँ भारत तथा अन्य देशों में बसे भारतीयों के पास भी भेजीं गईं। भारत में लाला पिंडीदास को ब्रिटिश सरकार ने सात वर्ष के कारावास का दंड केवल इस अपराध के लिए दिया कि उनके पास 'भारतीय स्वाधीनता संघ' के उद्देश्य पत्र की एक प्रति पाई गई थी।

अमेरिका और कनाडा में अभी तक भारतीय क्रांतिकारी केवल पढ़े-लिखे

वर्ग के बीच ही क्रांतिकारी विचारों का प्रसार कर पा रहे थे। अधिकांश भारतीयों तक उनके विचारों की पहुँच नहीं हो पा रही थी; क्योंकि बहुसंख्यक भारतीय मजदूर वर्ग इस तरफ से उदासीन था। इसी समय एक ऐसी स्थिति का निर्माण हुआ, जिसके कारण क्रांतिकारियों को सामान्य जनता तक पहुँचने का अवसर हाथ लग गया।

कनाडा सरकार ने अपने देश में भारतीयों की बढ़ती हुई आवक को रोकने के लिए 'एशियन इमीग्रेशन एक्ट' नाम का एक कानून बना डाला। इस एक्ट के अनुसार केवल वे भारतीय ही कनाडा में उतर सकते थे, जो भारत के किसी बंदरगाह से जहाज में सवार होकर सीधे कनाडा पहुँचे हों। इसके अतिरिक्त एक पाबंदी और थी कि कनाडा पहुँचनेवाले प्रत्येक भारतीय यात्री के पास दो सौ चार डॉलर की नकद राशि होनी अनिवार्य थी। इसे 'शो मनी' कहते थे और यह इमीग्रेशन विभाग के अधिकारी की मेज पर रखनी होती थी। ये दोनों ही शर्तें भारतीयों के मार्ग की भारी रुकावटें बन गईं। उन दिनों भारत के किसी बंदरगाह से कोई जहाज सीधे कनाडा नहीं जाता था। भारतीय यात्रियों को सिंगापुर, हांगकांग या शंघाई पहुँचना होता था और वहाँ से किसी जहाज में सवार होकर वे कनाडा पहुँचते थे। इस प्रकार बीच के किसी बंदरगाह से कनाडा पहुँचने पर वहाँ के तट पर उतरने की अनुमति उनको नहीं मिलती थी। जहाज पर सवार यात्री तट पर खड़े हुए अपने पुत्रों, पिताओं और इष्ट मित्रों को देख भर सकते थे; वे उतरकर उनसे मिल नहीं सकते थे। लोग मजदूरी करने ही तो कनाडा पहुँचते थे। प्रत्येक यात्री के पास दो सौ चार डॉलर की नकद राशि भी नहीं होती थी। इस कारण भी उन्हें कनाडा पहुँचकर वापसी यात्रा करने की परेशानी उठानी पड़ती थी। इन सब कारणों से कनाडा तथा अमेरिका की भारतीय जनता में काफी रोष उत्पन्न हो गया और इस स्थिति का लाभ उठाया क्रांतिकारियों ने। उन्होंने भारत की आजादी के लिए जो राजनीतिक संगठन खड़े किए, उनमें भारतीय जनता स्वेच्छा से सम्मिलित हो गई।

इसी समय सन् १९११ में विष्णु गणेश पिंगले नाम का एक भारतीय छात्र अमेरिका पहुँचा और भारत से ले जाया गया एक पत्र उसने खानखोजे को दिया। विष्णु गणेश पिंगले के रूप में खानखोजे को एक विश्वस्त साथी मिल गया। दोनों क्रांतिवीर रात-रात-भर भारत की आजादी के प्रयत्नों के संबंध में बातें किया करते थे। पिंगले पूना जिले के 'तलेगाँव' के निवासी थे और समर्थ विद्यालय में पढ़े थे, जिसे बाद में अंग्रेजी सरकार ने बंद करा दिया; क्योंकि वह विद्रोहियों का विद्यालय बन गया था। कुछ दिन पिंगले अध्यापक भी रहे थे; पर वे इंजीनियर बनना चाहते थे। इधर-उधर से धन एकत्रित कर वे अमेरिका जा पहुँचे। क्रांतिकारी विचार उनके पहले से ही थे, अमेरिका में खानखोजे व लाला हरदयाल जैसे

क्रांतिकारियों का निर्देशन भी उन्हें प्राप्त हो गया।

३० दिसंबर, १९१३ को अमेरिका के सैक्रिमेंटो स्थान पर भारतीयों की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया; जिसमें हिंदू, सिख, ईसाई और मुसलमान आदि सभी धर्मों के लोग सम्मिलित हुए। सभी का एक ही उद्देश्य था कि आसन्न विश्वयुद्ध की स्थितियों में भारत की आजादी के लिए क्या-क्या प्रयत्न किए जाएँ! मंच पर प्रमुख भारतीय नेताओं में से लाला हरदयाल, पं. रामचंद्र, मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला, करतारसिंह सराबा, पांडुरंग सदाशिव खानखोजे और विष्णु गणेश पिंगले के अतिरिक्त जर्मन कौंसल भी उपस्थित था। गरमागरम भाषणों के अतिरिक्त कुछ उपयोगी प्रस्ताव भी पारित हुए। सभी तत्कालीन संस्थाओं का विलय 'गदर पार्टी' में हो गया। गदर पार्टी के दो विभाग किए गए—एक था प्रचार विभाग और दूसरा था प्रहार विभाग। गदर पार्टी के अध्यक्ष सोहनसिंह भकना, मंत्री लाला हरदयाल और कोषाध्यक्ष पं. काशीराम चुने गए। प्रहार विभाग की पूरी जिम्मेदारी पांडुरंग सदाशिव खानखोजे को दी गई। उनके सहयोगियों में विष्णु गणेश पिंगले, हरनामसिंह, रिषीकेश लट्टा और केदारनाथ थे।

गदर पार्टी के प्रहार विभाग का काम था सैन्य संगठन तैयार करना, अस्त्र-शस्त्रों को एकत्रित करना और उनका निर्माण करना। वे सभी लोग बम बनाना जानते थे। बम बनाते समय ही हरनामसिंह का एक हाथ कोहनी से उड़ गया था। इस घटना को इस रूप से विज्ञप्ति न देकर कह दिया गया था कि दुर्घटना में उनका हाथ टूट गया है।

गदर पार्टी का काम करते हुए भी खानखोजे डॉक्टरेट के लिए मिनीसोटा विश्वविद्यालय के कृषि विभाग में शोधकार्य कर रहे थे। पार्टी ने किसी कार्यवश उन्हें भारत भेजने का निश्चय किया। दो और क्रांतिकारी उनके साथ जाने वाले थे। एक थे पंजाब के श्री विशनदास कोछा और दूसरे थे महाराष्ट्र के श्री आगाशे। मोहम्मद अली के नाम से आगाशे युद्धविद्या सीखने के लिए ईरान भेजे गए थे।

खानखोजे और उनके साथी अमेरिका से एक ग्रीक जहाज द्वारा ग्रीस के बंदरगाह पिरेउस तक पहुँचे। वहाँ से उन्हें दो दलों में रवाना होना था। सिनेमा यंत्र तथा कुछ अन्य वस्तुओं के साथ विशनदास कोछा पृथक् रास्ते से भारत भेजे गए; पर भारत पहुँचते ही वे गिरफ्तार कर लिये गए। खानखोजे और आगाशे (मोहम्मद अली) तुर्की के कुस्तुनतुनिया स्थान पर पहुँचे। वहाँ दाऊद अली नाम से भारत के क्रांतिकारी प्रमथनाथ दत्त पहले से ही कार्य कर रहे थे। ये लोग तुर्की के अनवर पाशा व तलात पाशा से मिले और उन्हें बताया कि हम लोग महामारा या बसरा में सैन्य संगठन खड़ा करके भारत पर आक्रमण करना चाहते हैं। पाशाद्वय ने इनकी

योजना स्वीकार कर ली।

कुस्तुनतुनिया से ये लोग एलेक्जेंड्रिया होते हुए बगदाद पहुँचे और सैनिकों की एक टुकड़ी तैयार कर ली। ईरान के बुहारा नगर के पास अंग्रेजी सेना ने इन लोगों को पकड़ना चाहा; पर ये लोग सीराज भाग गए। ईरानियों और भारतीयों को भरती करके खानखोजे ने अपने सैनिक दल में और अधिक वृद्धि कर ली। एक स्थान पर अंग्रेजी सेना के साथ उनके दल की दिन-भर लड़ाई चलती रही। उस युद्ध में खानखोजे घायल हुए और अंग्रेजी फौज द्वारा गिरफ्तार कर लिये गए। अपनी सूझबूझ से खानखोजे अंग्रेजी फौज के चंगुल से निकल भागे।

अपने दल को छिन्न-भिन्न हुआ देख खानखोजे स्वयं ईरानी फौज में सम्मिलित होकर अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध करते रहे। जब ईरानी सेना ने १९१९ में आत्मसमर्पण कर दिया तो खानखोजे फिर भी भाग निकलने में सफल हो गए। सन् १९१९ में ही खानखोजे गुप्त रूप से बंबई पहुँचे और पूना में उन्होंने लोकमान्य तिलक से भेंट की। तिलक का परामर्श था कि भारत में तो उनके लिए कार्य करना संभव नहीं था, अत: यदि वे रूस पहुँच जाएँ तो शायद कोई रास्ता निकले।

खानखोजे भारत से फिर यूरोप के लिए रवाना हो गए और जर्मनी से १९१९ में ही वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय और भूपेंद्रनाथ दत्त को लेकर रूस के मास्को नगर में पहुँच गए। रूस में कोई काम बनते न देखकर ये लोग बर्लिन लौट गए और वहाँ भारतीय छात्रों की एक संस्था स्थापित कर डाली। इस समय तक अमेरिका भी युद्ध में कूद पड़ा था, इस कारण भारतीय क्रांतिकारियों के लिए मैक्सिको ही एक सुरक्षित स्थान रह गया था। अब मैक्सिको भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा बन गया। खानखोजे को मिनीसोटा विश्वविद्यालय से कृषि विषय में डॉक्टरेट मिल चुकी थी। वे मैक्सिको में कृषि विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हो गए। वहीं उन्होंने शादी की।

एक बार भारत में अपने पिता की बीमारी का समाचार पाकर डॉ. खानखोजे ने भारत सरकार के पास आवेदन पत्र भी प्रस्तुत किया कि उन्हें भारत लौटने की अनुमति प्रदान की जाए; पर उन्हें अनुमति नहीं मिली।

भारत को स्वाधीनता मिल जाने के पश्चात् सन् १९४९ में डॉ. खानखोजे अपनी पत्नी तथा दो बच्चों के साथ भारत पहुँच सके। भारत सरकार ने कृषि पंडित के रूप में उनका सम्मान किया।

सन् १९६७ में नागपुर में डॉ. पांडुरंग सदाशिव खानखोजे का निधन हुआ। वे भारत के उन महान् सपूतों में से एक थे, जिनका संपूर्ण जीवन देश के लिए समर्पित था।

□

★ बाबा पृथ्वीसिंह आजाद

'प्रिंसेज कोरिया' जहाज जब कलकत्ता के बंदरगाह पर आकर लगा तो उसमें से उतरनेवाले गदर पार्टी के क्रांतिकारियों ने देखा कि जेटी के दोनों किनारों पर बंदूकधारी सिपाही उनके स्वागत के लिए तैयार हैं। इन सिपाहियों में कुछ गोरे थे और कुछ गोरखे। अफसर लोग सभी गोरे थे। मशीनगनें भी किनारे पर लगी हुई थीं। क्रांतिकारियों ने अपने भाग्य का अनुमान लगा लिया। उन्होंने सुन रखा था कि किस प्रकार 'कामागाटामारू' जहाज के निहत्थे यात्रियों पर अंग्रेजी फौज ने गोलियाँ बरसाई थीं और जो मरने से बच गए थे, उन्हें एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा पंजाब भेजकर जेलों में ठूँस दिया गया था। 'प्रिंसेज कोरिया' जहाज के यात्री तो अपने आपको खुल्लमखुल्ला क्रांतिकारी घोषित करके भारत में गदर फैलाने और अंग्रेजों को मार भगाने का ऐलान करके अमेरिका से चले थे। फिर भला वे किसी अच्छे व्यवहार की आशा कर ही कैसे सकते थे!

बाबा पृथ्वीसिंह आजाद

जहाज के यात्रियों पर गोलियाँ तो नहीं चलाई गईं, पर बलपूर्वक उन्हें गोरखे फौजियों की निगरानी में पंजाब जानेवाली गाड़ी में बैठाकर रवाना कर दिया गया। ज़ब यह गाड़ी विंडसर स्टेशन पर पहुँची तो फौजी अफसर एक सूची हाथ में लेकर प्लेटफॉर्म पर खड़ा हो गया और उन लोगों के नाम लेकर उन्हें नीचे उतारने लगा, जो क्रांतिकारी न होकर जहाज के सामान्य यात्री थे। जब एक नाम पुकारा गया तो उसके स्थान पर चालाकी से एक क्रांतिकारी उतरकर प्लेटफॉर्म की भीड़ में खो गया। चालाकी से उतरनेवाले इस क्रांतिकारी का नाम था पृथ्वीसिंह।

पृथ्वीसिंह किसी अन्य साधन से पंजाब पहुँचकर अंबाला के अपने साथी क्रांतिकारियों से जा मिला। गदर पार्टी के कुछ लोग पंजाब में पहले ही पहुँच चुके थे और गदर की पूरी योजना बन चुकी थी। जो काम पृथ्वीसिंह को करना था, वह उसने समझ लिया था। अंबाला के राजपूत छात्रावास में जाकर वह टिक गया था। 'लालडू' उसका गाँव था। यद्यपि उसका जन्म १५ सितंबर, १८९२ को 'सर्कपुर

टाबर' नाम के गाँव में हुआ था, पर बचपन से ही वह अपने पिता के साथ बर्मा पहुँच गया था। बचपन से ही उसके दिल में देशभक्ति की भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं। कई देशों में घूमता-घामता वह अमेरिका पहुँच गया और गदर पार्टी के संस्थापकों में से एक होने का गौरव प्राप्त किया। भारत में गदर फैलाने के इरादे से ही वह अपने कई साथियों के साथ लौटा था और पुलिस को चकमा देकर, स्वतंत्र रूप से पंजाब पहुँचकर क्रांतिकारियों से जा मिला था।

अंबाला के राजपूत छात्रावास में टिककर पृथ्वीसिंह ने सोचा कि वह सुरक्षित है; पर बात ऐसी नहीं थी। जासूस लोग निरंतर उसके पीछे लगे हुए थे। एक दिन वह कुरसी पर बैठकर अखबार पढ़ रहा था तभी एक तगड़ा सरदार उसके सामने जा खड़ा हुआ और पूछने लगा—

''क्या खालसा छात्रावास यही है ?''

''नहीं, यह खालसा छात्रावास नहीं है।'' पृथ्वीसिंह ने अखबार पर से नजर हटाए बिना ही उत्तर दे दिया। आगंतुक ने फिर कहना प्रारंभ किया—

''मेरा भाई खालसा छात्रावास में रहता है। मैं नया आदमी हूँ। क्या आप मुझे खालसा छात्रावास तक पहुँचा देंगे ?''

पृथ्वीसिंह ने अब अपने चेहरे के सामने से अखबार हटाया और उस व्यक्ति को देखा। उस व्यक्ति ने भी अभी तक पृथ्वीसिंह का चेहरा नहीं देखा था। अखबार सामने से हटते ही उसने चेहरा देखा और अपने शिकार को पहचान लिया। वह पृथ्वीसिंह पर झपट पड़ा और जेब में हाथ डाल पिस्तौल निकाल ली। बड़ी फुरती से पृथ्वीसिंह ने उसके पिस्तौलवाले हाथ को पकड़कर नीचे कर दिया और झटके के साथ उसकी पिस्तौल छीनकर दूर फेंक दी। उसने अपने प्रतिद्वंद्वी के केश पकड़ लिये। इसी बीच जासूस ने जेब से चाकू निकाला और उसे पृथ्वीसिंह के पेट में घुसेड़ देना चाहा। पृथ्वीसिंह ने परिस्थिति को भाँपकर प्रतिद्वंद्वी के केश छोड़ दिए और स्वयं को बचाने के लिए दूर जा खड़ा हुआ। जासूस खुला चाकू लिये हुए पृथ्वीसिंह के ऊपर झपटा और चाकू के वार करने लगा। चाकू के वार पृथ्वीसिंह की गरदन के आसपास पड़े और खून के फव्वारे छूट पड़े। आखिर हाथ में एक जख्म खाकर पृथ्वीसिंह ने अपने प्रतिद्वंद्वी के हाथ से चाकू भी छीन लिया और उसे भी दूर फेंक दिया। घायल शेर की तरह पृथ्वीसिंह अपने शत्रु पर टूट पड़ा और उसे उठाकर एक बार दीवार पर और दूसरी बार जमीन पर जोर से दे मारा। दुश्मन को जमीन पर गिरा हुआ देखकर पृथ्वीसिंह उसकी छाती पर चढ़ बैठा और अपने नाखूनों से उसके गाल की चमड़ी इस तरह खींच डाली जैसे वृक्ष से छाल उतार ली जाती है। गरदन की नसें कट जाने से काफी खून बह चुका था और दुश्मन की छाती

पर बैठे हुए ही पृथ्वीसिंह बेहोश हो गया।

वह ८ दिसंबर, १९१४ का अपराह्न चार बजे का समय था। पृथ्वीसिंह को जब होश आया तो पुलिस की निगरानी में उसने स्वयं को अस्पताल में पाया। उसका प्रतिद्वंद्वी जासूस दूसरी टेबल पर पड़ा था। लोगों ने बताया कि दोनों को बेहोशी की हालत में ही पुलिस अस्पताल तक लाई है।

कुछ दिन अंबाला जेल में डाले रखने के पश्चात् पृथ्वीसिंह को लाहौर सेंट्रल जेल में स्थानांतरित करके मुख्य लाहौर षड्यंत्र केस के अभियुक्तों में शामिल कर दिया गया। गदर के इरादे से जो लोग अमेरिका से अन्य जहाजों में भी चले थे, उनमें से अधिकांश व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया था। जिनपर मुकदमा चलना था, उनकी संख्या तो सैकड़ों में थी; पर उनमें से केवल पैंसठ क्रांतिकारी ही गिरफ्तार हो सके थे। शेष को फरार घोषित कर दिया गया। इन पैंसठ क्रांतिकारियों ने मिलकर यह तय किया कि सात व्यक्ति गदर की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर शेष सभी साथियों को फाँसी के फंदों से बचा लें। फाँसी पर झूलने के लिए जिन सात व्यक्तियों ने स्वेच्छा से स्वयं को प्रस्तुत किया, वे थे— सोहनसिंह भकना, पं. जगतराम भारद्वाज, करतारसिंह सराबा, विष्णु गणेश पिंगले, जगतसिंह, हरनामसिंह और पृथ्वीसिंह। वैसे फाँसी के लिए स्वयं को प्रस्तुत करनेवाले तो कई लोग थे, पर इन सात नामों के प्रति सभी की सहमति प्राप्त हो गई।

लाहौर में विशेष ट्रिब्यूनल की नियुक्ति हुई और मुकदमा चला। इन सातों व्यक्तियों ने बयान इस प्रकार दिए कि गदर की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। फिर भी अदालत ने फैसला अपने ढंग से दिया। उसके निर्णय के अनुसार चौबीस व्यक्तियों को फाँसी की सजा सुना दी गई।

जिन चौबीस व्यक्तियों को सजा सुनाई गई थी, उनमें पृथ्वीसिंह भी एक थे। उनकी कोठरी के सामने प्रतिदिन पानी की बालटी रख दी जाती थी। वे नहाकर फाँसी के लिए तैयार हो जाते थे, पर कोई फाँसी के लिए उन्हें लेने नहीं आता था। यह नाटक चौदह दिन तक चला। फाँसी की सजावाले अभियुक्त को नहलाने की प्रथा इसलिए चल पड़ी थी क्योंकि हिंदुओं में शव को नहलाने की प्रथा है। कभी-कभी जेल के अधिकारी ही शवदाह का कार्य करते थे और वे शव को नहलाते नहीं थे। इसपर फाँसी पानेवाले कैदियों ने माँग की कि जिस दिन हमको फाँसी दी जाने वाली हो, उस दिन सुबह हमारी कोठरी के सामने पानी रख दिया जाए, हम लोग जीवित अवस्था में ही शवस्नान कर लिया करेंगे। तब से पानी की भरी बालटी कोठरी के सामने रख देने की प्रथा चल पड़ी। जब चौदह दिन लगातार पृथ्वीसिंह के कमरे के सामने पानी की बालटी रखकर भी उन्हें फाँसी के लिए नहीं ले जाया

गया तो उन्होंने भेद जानने का प्रयत्न किया। भेद यह निकला कि जिन चौबीस व्यक्तियों को फाँसी दी जाने वाली थी, उनमें से कुछ निरपराध व्यक्तियों को भी सम्मिलित कर लिया गया था, जिनका गदर से दूर का भी संबंध नहीं था। जनता ने हाय-तौबा मचाई और वाइसराय महोदय को हस्तक्षेप करने के लिए विवश होना पड़ा। पुनर्विचार के पश्चात् चौबीस में से सत्रह व्यक्तियों की फाँसी की सजा आजीवन कालापानी की सजा में परिवर्तित की जाकर सात व्यक्तियों को फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी पानेवाले सात क्रांतिकारी थे—बख्शीशसिंह, विष्णु गणेश पिंगले, सुरेंद्रसिंह (आत्मज ईश्वरसिंह), सुरेंद्रसिंह (आत्मज भूरासिंह), हरनामसिंह, जगतसिंह और करतारसिंह सराबा। इन सातों क्रांतिकारियों को लाहौर की सेंट्रल जेल में १६ नवंबर, १९१५ को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

पृथ्वीसिंह के गले में फाँसी का फंदा तो नहीं पड़ सका, पर उनकी गरदन से एक तख्ती लटका दी गई, जिसपर १९५१ के अंक अंकित थे। इसका मतलब था कि उन्हें १९५१ में मुक्ति मिलेगी। यह तख्ती लटकाकर सोलह साथियों के साथ उन्हें कालापानी की काल कोठरियों में भेज दिया गया।

□

जनवरी का महीना और हड्डियाँ कँपा देनेवाली शीत लहर। अंडमान जेल की एक कोठरी में एक कैदी केवल लँगोट पहने हुए पत्थर के फर्श पर चित पड़ा हुआ था। कोठरी का दरवाजा खोलक लगभग आठ व्यक्तियों ने उसमें प्रवेश किया। दो व्यक्तियों ने कैदी के पैरों को एवं दो व्यक्तियों ने उसके हाथों को जकड़ा तथा एक व्यक्ति उसकी छाती पर बैठ गया और एक यंत्र की सहायता से उसका मुँह खोल दिया। डॉक्टर ने कैदी के गले में एक रबर की नली डाली और उसकी सहायता से कैदी के पेट में दूध पहुँचाने लगा। दो व्यक्ति आसपास खड़े रहे कि यदि कैदी कुछ गड़बड़ करे तो वे भी उसे दबाने में मदद करें। यों बलात्पान कराके वे आठों व्यक्ति चले गए। जिस कैदी को बलात्पान कराया गया, वह महान् क्रांतिकारी पृथ्वीसिंह ही था।

अंडमान पहुँचे हुए क्रांतिकारियों से अमानुषिक कार्य लिये गए। उनमें से प्रत्येक से किसी दिन बीस सेर अनाज पिसवाया जाता था, किसी दिन नारियल की जटाओं को कूटकर उसके रेशे निकलवाए जाते थे और किसी दिन तेल निकलवाने के लिए कोल्हू में जोत दिया जाता था। यदि काम में शिथिलता पाई गई तो बेरहमी से कोड़े लगाए जाते थे। एक दिन एक बुजुर्ग क्रांतिकारी बाबा भानसिंह को जेल के गुंडों ने इतना पीटा कि पिटते-पिटते वे बेहोश हो गए और उनकी कई हड्डियाँ टूट गईं। इसी मार के परिणामस्वरूप बाद में उनकी मृत्यु हो गई। ऐसे ही अमानवीय

व्यवहार के विरुद्ध क्रांतिकारियों ने जेल में भूख हड़ताल कर दी और पृथ्वीसिंह तो सबसे दो कदम आगे बढ़ गए। उन्होंने पानी भी छोड़ दिया और अपने कपड़े भी उतार फेंके। एक हफ्ते के पश्चात् बलपूर्वक उनके पेट में दूध पहुँचाया जाने लगा। एक निर्णय के अनुसार शेष व्यक्तियों ने तो अपनी हड़ताल समाप्त कर दी, पर पृथ्वीसिंह अपनी जिद पर अड़े रहे और उन्होंने भूख हड़ताल समाप्त नहीं की। लगभग एक सौ पच्चीस दिन तक उनकी भूख हड़ताल चली। उनका वजन पचास पौंड कम हो गया। अपने कुछ साथियों को मरणासन्न अवस्था में पहुँचा देखकर पृथ्वीसिंह ने अपनी भूख हड़ताल समाप्त की।

इधर अंडमान में क्रांतिकारियों की भूख हड़ताल चल रही थी और उधर सारे भारत में उनकी सहानुभूति में तूफानी प्रदर्शन हो रहे थे। आखिर जन आंदोलन से पराजित होकर सरकार को यह निर्णय लेना पड़ा कि अंडमान से हटाकर राजबंदियों को भारत की ही जेलों में रखा जाए। १ नवंबर, १९१५ से जुलाई १९२१ तक कालापानी की काल कोठरियों में रहकर पृथ्वीसिंह ने फिर मातृभूमि के दर्शन किए। उन्हें मद्रास की राजमहेंद्री जेल में रखा गया।

□

पृथ्वीसिंह को हथकड़ी-बेड़ियों सहित राजमहेंद्री जेल से कलकत्ता की जेल में स्थानांतरित किया जा रहा था। उनके साथ दो और क्रांतिकारी थे। वे थे केहरसिंह और खुशालसिंह। तीन बंदूकधारी सिपाही इनके साथ थे। रात के लगभग दस बजे होंगे। उस डिब्बे के अन्य यात्री या तो खा-पीकर सो गए थे या ऊँघ रहे थे। पहरेवाले सिपाही भी सो गए थे। पृथ्वीसिंह ने संडास जाने का बहाना किया। एक सिपाही ने उनकी हथकड़ियाँ खोल दीं। जब पृथ्वीसिंह संडास से लौटे तो देखा कि जिस सिपाही ने हथकड़ियाँ खोली थीं, वह भी सो गया था। खिड़की में से छलाँग लगाने का विचार मन में आ गया। गाड़ी तीस मील प्रति घंटे की गति से दौड़ रही थी। पैरों में बेड़ियाँ थीं। बाहर वर्षा हो रही थी। यह सब होते हुए भी पृथ्वीसिंह उस खिड़की के पास पहुँचे, जहाँ साथी क्रांतिकारी सो रहा था। उसको लाँघकर खिड़की के नीचे छलाँग लगा दी। छलाँग लगाते समय उनकी बेड़ी साथी से टकराई और वह चिल्लाया। सिपाहियों की नींद खुल गई। गाड़ी की जंजीर खींच दी गई। घटनास्थल से लगभग दो सौ गज आगे जाकर गाड़ी रुकी। बहुत खोजा गया, पर पृथ्वीसिंह हाथ नहीं लग सके।

पृथ्वीसिंह का इरादा था कि पैरों के बल कूदें, पर गिरे वे घुटनों के बल। घुटने बुरी तरह जख्मी हो गए। बेड़ियों को ऊपर खिसकाकर आगे बढ़े तो कँटीली थूहर में फँस गए। सारा शरीर काँटों से छिलकर लहूलुहान हो गया। वर्षा हो रही

थी। भीगते हुए, कीचड़ में लथपथ होते हुए, लहूलुहान शरीर से एक जलते हुए दीपक का सहारा लेते हुए वे एक घर की तरफ बढ़े। कैदियोंवाले अपने कपड़े उतार फेंके थे, केवल लँगोट में उनकी रक्त-रंजित देह ऐसी लग रही थी जैसे बजरंगबली को चोला चढ़ाया गया हो। आहट पाकर एक महिला ने दरवाजा खोला तो वह इतनी घबरा गई कि उसके मुँह से चीख भी न निकल सकी। उसने अपने पति को जगाया तो वह भी इतना घबरा गया जैसे अपने सामने भूत को देख लिया हो। पृथ्वीसिंह ने हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और अपनी ओर संकेत करके 'स्वराज्य' और 'गांधी' शब्दों का उच्चारण किया। उस दंपती को यह समझते देर नहीं लगी कि कोई स्वराज्य सैनिक मुसीबत में फँस गया है। न तो पृथ्वीसिंह उनकी भाषा समझते थे और न वे पृथ्वीसिंह की। पृथ्वीसिंह को लोहे की एक छड़ एक कोने में दिखाई दी। उसकी सहायता से पूरी ताकत लगाकर उन्होंने अपनी बेड़ियाँ तोड़ डालीं। इशारे से उन्होंने कुछ खाने को माँगा। उन लोगों ने अपना पूरा घर पृथ्वीसिंह को दिखा दिया। वहाँ बना हुआ भोजन तो क्या, अनाज भी नहीं था। वे लोग मजदूर थे और हर रोज कमाकर खाते थे। फिर भी प्रश्रय देने के लिए पृथ्वीसिंह ने उनका आभार माना और चल दिए। वे रात-भर चले। अँधेरे के कारण दिशाबोध हो ही कैसे सकता था। सुबह हुआ तो उन्होंने स्वयं को एक छोटे से स्टेशन पर पाया। हुलिया तो अजीब था ही, नंगे बदन और लहूलुहान। सभी स्टेशनों पर यह खबर हो चुकी थी कि रात की गाड़ी से एक क्रांतिकारी कूदकर भाग गया है। हर स्टेशन पर कुछ सिपाही तैनात हो गए थे। जिस स्टेशन पर ये सुबह पहुँचे, वहाँ भी सिपाही थे। गिरफ्तार कर लिये गए। जगह-जगह दर्शनार्थी भीड़ से सामना हुआ। आदर-सत्कार भी खूब हुआ। ले जाकर फिर राजमहेंद्री जेल में डाल दिया गया।

पृथ्वीसिंह को सरकार ने ट्रेन से दूसरी छलाँग लगाने का अवसर भी दिया; पहले के अनुभव से पृथ्वीसिंह ने काफी बातें सीख ली थीं। इस बार आठ सिपाहियों के पहरे में उन्हें ट्रेन में बैठाया गया। वही अर्द्धरात्रि का समय और संडास जाने का बहाना। इस बार पैरों में बेड़ियाँ नहीं थीं। वे संडास में गए और संडास की खिड़की का सरिया निकालकर खिड़की के सहारे लटक गए और बहुत होशियारी के साथ जमीन पर जा कूदे। गाड़ी मीलों आगे निकल गई, तब कहीं सिपाहियों को खयाल आया कि कैदी संडास में काफी देर से है। दरवाजा खटखटाया गया, कोई उत्तर नहीं। दरवाजा तोड़ा गया। पंछी उड़ चुका था।

इस बार पृथ्वीसिंह सड़क के सहारे भागे और सुबह होते-होते अमरावती जा पहुँचे। एक कांग्रेसी देशभक्त के यहाँ पहुँचकर उन्हें अपनी पूरी गाथा कह सुनाई। आदमी सज्जन थे। उन्होंने पृथ्वीसिंह को एक पत्र के साथ बंबई भेज दिया।

बंबई, बड़ौदा, अहमदाबाद आदि स्थानों पर घूमते-घूमते वे भावनगर जा पहुँचे। एक विद्यालय में 'स्वामीराव' नाम से वे व्यायाम शिक्षक हो गए। लगभग छह वर्षों तक सौराष्ट्र क्षेत्र में रहकर पृथ्वीसिंह ने अपने शिष्यों की कतारें खड़ी कर दीं। अपने कार्यों से वे संपूर्ण सौराष्ट्र क्षेत्र में जनप्रिय हो गए। राजप्रासाद से कुटिया तक के लोग उनका आदर करने लगे। यदि खोज न लिये जाते तो संभवत: संपूर्ण जीवन उन्हें वहीं बिताना पड़ता। पुलिस ती उनकी खोज करते-करते थक गई, पर जेल में बंद एक क्रांतिकारी ने उन्हें खोज निकाला।

सरदार भगतसिंह दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करने के पश्चात् लाहौर जेल में बंद थे। जेल की कोठरी में बंद रहते हुए भी उनकी क्रांति योजनाएँ क्रियान्वित हो रही थीं। उन्होंने अपने साथी क्रांतिकारी धनवंतरी को पृथ्वीसिंह को खोज निकालने के लिए नियुक्त किया। गुजरात का एक पता देकर उनसे कहा गया कि इस पते पर पृथ्वीसिंह की खोज करना। न मिलने पर उस स्थान से तुम्हें ठीक पते मिलते जाएँगे और तुम पृथ्वीसिंह को खोज निकालोगे। धनवंतरी को यह निर्देश दिया गया कि पृथ्वीसिंह का पता लग जाने के पश्चात् उन्हें चंद्रशेखर आजाद से मिला देना।

□

सरदार भगतसिंह द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करते हुए धनवंतरी ने पृथ्वीसिंह को खोज निकाला और उन्हें इलाहाबाद में चंद्रशेखर आजाद से मिला दिया। दो महान् क्रांतिकारियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान होने लगा—

"पृथ्वीसिंहजी! सबसे पहले तो मैं इस बात के लिए आपको बधाई दूँ कि ब्रिटिश शासन के गाल पर दो बार आपने तमाचे जड़े। शासन की आँखों में धूल झोंककर आप अपनी छाया भी उसे नहीं छूने दे रहे, यह भी कम तारीफ की बात नहीं है।"

"इस प्रशंसा और हौसला अफजाई के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया, आजादजी। सच बात तो यह है कि हम लोग एक ही पथ के पथिक हैं। कहिए, आपने किस उद्देश्य से मुझे याद किया है?"

"आप तो जानते ही हैं, पृथ्वीसिंहजी, कि साथी भगतसिंह तो जेल के अंदर हैं। कुछ साथी कमजोरियों के शिकार होकर सरकार से मिलते जा रहे हैं। हमारा आंदोलन सफलतापूर्वक आगे चल सकेगा, इसमें मुझे विश्वास कम रह गया है।"

"तो अब आपकी योजना क्या है और आप मुझसे क्या सेवा लेना चाहते हैं?"

"साथी भगतसिंह चाहते हैं कि हम लोग आपको रूस भेजें। रूस की

बोल्शेविक क्रांति का अध्ययन करके आप भारत लौटें और उसी प्रकार की क्रांति संरचना यहाँ करें। इस कार्य के लिए हमें एक पूरी नई पीढ़ी तैयार करनी होगी।''

''मैं आपके विचारों से सहमत हूँ, आजादजी। सच बात तो यह है कि आप और भगतसिंह जैसे क्रांति के कुशल खिलाड़ियों के साथ मौत के खेल खेलने में मजा आएगा।''

''तो आज से हम इस कार्य के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमारी प्रथम भेंट के उपलक्ष्य में ग्यारह गोलियों का यह ऑटोमैटिक पिस्टल दल की ओर से मैं आपको भेंट करता हूँ। रूस आप कैसे पहुँचेंगे, इसकी व्यवस्था भी स्वयं आपको ही करनी है।''

''इस अमूल्य भेंट के लिए आप मेरा धन्यवाद स्वीकार करें, आजादजी। मैं इस बात की इजाजत चाहता हूँ कि भारत छोड़ने के पहले ब्रिटिश हुकूमत के गाल पर मैं एक तमाचा और जड़ना चाहता हूँ। मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा यह कदम मेरे लिए किसी प्रकार रुकावट नहीं बनेगा।''

अपने मन में भावी कार्यक्रम की कुछ रूपरेखा बनाकर पृथ्वीसिंह ने चंद्रशेखर आजाद से बिदा ली। वे बंबई पहुँचे। उनके साथ शहीद भगवतीचरण बोहरा की पत्नी दुर्गा देवी थीं, जिन्हें साथी लोग 'दुर्गा भाभी' के नाम से पुकारते थे। बम विस्फोट में अपने पति की शहादत के पश्चात् दुर्गा भाभी उग्र रूप धारण करके खुल्लमखुल्ला क्रांति के अखाड़े में कूद पड़ी थीं। पृथ्वीसिंह और दुर्गा भाभी ने अपने साथ सुखदेव तथा गणेश रघुनाथ वैशंपायन को लिया। एक मित्र की कार माँगी गई। कार को क्रांतिकारी साथी जे. वापट चला रहे थे। रात के ग्यारह बजे का समय था। बंबई के भीड़-भरे स्थान लेमिंग्टन रोड पर स्थित पुलिस थाने पर पहुँचकर क्रांतिकारी दल ने धुआँधार गोलीवर्षा की। पुलिस पक्ष की ओर से ज्यादातर गोरे सारजेंट और सिपाही इनका मुकाबला कर रहे थे। पुलिस पक्ष की ओर से एक महिला के घायल होने के कारण क्रांतिकारी दल ने गोली चलाना बंद कर दिया और वापस लौट पड़े। कार के मालिक को कार सौंपकर सब लोग यथास्थान पहुँच गए। एक असावधानी क्रांतिकारियों से हो गई और वह यह कि वे कार की नंबर प्लेट नहीं बदल पाए थे। पुलिसवालों ने कार का नंबर नोट कर लिया था और अगली सुबह खोज करने पर कार पकड़ ली तथा उसके आधार पर वैशंपायन पुलिस के हाथों पड़ गए। बहुत यातनाएँ सहकर भी उन्होंने अपने किसी साथी का नाम नहीं बताया।

पृथ्वीसिंह ने ब्रिटिश हुकूमत के गाल पर एक तमाचा और जड़ देने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई। अब उनके सामने रूस की मंजिल थी। सीमांत

गांधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ की विशेष सहायता और प्रबंध के फलस्वरूप वे कई कठिनाइयों के बाद अफगानिस्तान की सीमा पार करके रूस की सीमा में प्रविष्ट हो गए।

रूस की भूमि पर पृथ्वीसिंह का पहला स्वागत तो अच्छा हुआ, पर वह स्वागत अस्थायी था। उन्होंने स्वयं को एक रूसी अधिकारी को सौंपते हुए अपनी कहानी कह सुनाई। उन्हें आराम के साथ एक कुरसी पर बैठाया गया। उनके जख्मी पैरों से बूट चिपककर रह गए थे। एक टब में उन्हें गरम पानी दिया गया। कुछ देर तक गरम पानी में जूतों सहित पैर डुबोए रखने के पश्चात् जब उन्होंने जूतों के बाहर पैर निकाले तो तलवों की चमड़ी जूतों के साथ चिपकी रह गई थी। उनके जख्मी पैरों पर पट्टियाँ बाँधी गईं। उन्हें कुछ खाने-पीने को भी दिया गया। थोड़ी देर वे उसी स्थान पर बैठे रहे। कुछ समय पश्चात् एक अफसर के साथ कुछ सिपाही आए और पृथ्वीसिंह के हाथ पकड़कर उन्हें घसीटते हुए वे एक कोठरी तक ले गए। वह जेल की कोठरी थी, जिसमें कैदी ठूँस-ठूँसकर भरे हुए थे। उसी कोठरी में पृथ्वीसिंह को ठूँसकर ताला बंद कर दिया गया।

सुबह जब कोठरी का ताला खोला गया तो कुछ कैदी मरणासन्न स्थिति में थे। पृथ्वीसिंह की हालत फिर भी कुछ ठीक थी। आए हुए अफसर को अंग्रेजी में एक भाषण पिलाते हुए उन्होंने कहा—

''दलित वर्ग का हिमायती देश समझकर ही मैं रूस आया था और सोचा था कि अपने पराधीन देश की स्वाधीनता के लिए कोई आशा की किरण मुझे यहाँ मिलेगी; पर मुझे क्या पता था कि मैं जल्लादों के देश में आ गया हूँ, जहाँ न्याय और व्यवस्था नाम की कोई चीज ही मुझे दिखाई नहीं देती।''

पृथ्वीसिंह के भाषण का अच्छा असर हुआ। उन्हें एक बड़े अधिकारी के पास पहुँचाया गया, जिसने उनकी बात ध्यान से सुनी। उन्हें मास्को पहुँचाया गया। एक महीने में उनके संबंध में सारी सूचनाएँ मँगा ली गईं और उनके कथन को सत्य पाकर उन्हें नागरिक सुविधाएँ प्रदान की गईं। लगभग तीन वर्ष रूस में रहकर पृथ्वीसिंह ने बोल्शेविक क्रांति का प्रशिक्षण प्राप्त किया। अब अफगानिस्तान के रास्ते ही उनका भारत लौटने का विचार हुआ।

रूस में गुरुमुखसिंह नाम के एक और भारतीय क्रांतिकारी रह रहे थे। अफगानिस्तान के रास्ते भारत लौटने के लिए वे भी पृथ्वीसिंह के सहयात्री बने। अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश करने पर इन दोनों क्रांतिकारियों को अफगान पुलिस ने गिरफ्तार करके काबुल भेज दिया, जहाँ उन्हें एक जेल में डाल दिया गया। इस जेल से जीवित निकलने की उन्हें कोई आशा नहीं रही। अत्यधिक सर्दी

के कारण हर दिन उस जेल के दो-तीन कैदी मर जाते थे और उन्हें घसीटकर बाहर पटक दिया जाता था। पृथ्वीसिंह और उनके साथी सूती कपड़े ही पहने हुए थे। जब कुछ कैदी मरे तो उनकी रजाइयाँ खींचकर इन्हें दे दी गईं। जेल के अधिकारी जब हर सुबह इनकी कोठरी के पास पहुँचते तो सोचते थे कि भारतीय कैदी आज जरूर मरे मिलेंगे; पर वे जीवित और तरोताजा ही मिलते थे। पूरी जेल में हवा फैल गई कि भारतीय कैदी बहुत बड़े जादूगर हैं।

एक दिन जेलर का साला इनकी कोठरी के सामने आ खड़ा हुआ। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और शरीर सूख गया था। इन लोगों को उसने बताया कि मुझपर किसीने जादू कर दिया है और मैं कुछ दिन का ही मेहमान हूँ।

पृथ्वीसिंह ने समाधि लगाने का नाटक किया और उसे बताया, ''तुमपर अवश्य ही किसी बहुत बड़े जादूगर ने जादू किया है और अफगानिस्तान में उसके साथ टक्कर लेने की हिम्मत किसीमें भी नहीं है। हम हिंदुस्तानी जादूगर ही उसके पंजे से तुम्हें छुड़ा सकते हैं। हम तुम्हें बचाकर उस जादूगर को मार देंगे। तुम दो दिन बाद, सूर्य निकलने के पहले कुछ ताजा हरी दूब तोड़कर, एक कोरे कागज में लपेटकर हमारे पास ले आना।''

जेलर का साला आश्वस्त होकर चला गया। दो दिन बाद वह बताए हुए तरीके से दूब लेकर इन क्रांतिकारियों के पास आ पहुँचा। पृथ्वीसिंह ने दूब लेकर उसपर कुछ मंत्र पढ़ने का नाटक किया और उसे लौटाते हुए कहा—

''इस दूब को एक तावीज में बंद करके गले में डाल लेना। दिन-प्रतिदिन तुम स्वस्थ होते जाओगे और तुम्हारा दुश्मन जादूगर घुलते-घुलते समाप्त हो जाएगा।''

जेलर का साला चला गया। उसने वैसा ही किया। कुछ दिन बाद वह इन लोगों की कोठरी के सामने फिर पहुँचा। अब वह प्रसन्न और स्वस्थ दिखाई दे रहा था। सच बात तो यह थी कि उसपर इन लोगों ने मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया था। उसने इन लोगों को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। पृथ्वीसिंह ने उससे कहा—

''यदि तुम दिल से धन्यवाद देना चाहते हो तो तुम भी हमारा एक कार्य कर दो। हम जो पत्र तुम्हें देते हैं, उसे यथास्थान पहुँचा दो।''

पत्र पृथ्वीसिंह ने पहले ही लिखकर रख लिया था। वह काबुल स्थित रूस के राजदूत के नाम था। रूस के साथ अपने संबंधों का खुलासा करते हुए उन्होंने अपनी मुसीबत की कहानी लिख डाली थी। जेलर के साले ने वह पत्र रूस के राजदूत को दे दिया। रूस के राजदूत ने तुरंत हस्तक्षेप करके उन दोनों को अफगानिस्तान की जेल से निकलवाया और विशेष वायुयान की व्यवस्था करके उन्हें वापस रूस भिजवा दिया। यदि दो-तीन दिन की देर और हो जाती तो उन लोगों को गोलियों से

उड़ा दिया जाता। इसकी सूचना उन्हें भी दे दी गई थी।

दोबारा रूस पहुँच जाने पर पृथ्वीसिंह ने भारत पहुँचने के लिए रूसी अधिकारियों से सहायता माँगी। जाली नाम से एक पासपोर्ट बनवाया गया और उन्हें समुद्री मार्ग से भारत भेजने की योजना बनी। एक जहाज फ्रांस के बंदरगाह मार्सेलिस से रवाना होकर कोलंबो, मद्रास और पांडिचेरी होता हुआ शंघाई जाने वाला था। इसी जहाज में पृथ्वीसिंह ने पांडिचेरी तक यात्रा करने का निश्चय किया। सारे प्रबंध करके रूसी अधिकारी उन्हें मार्सेलिस बंदरगाह में जहाज में सवार करा आए।

अपनी निश्चित गति से जहाज पांडिचेरी पहुँचा और पृथ्वीसिंह वहाँ एक होटल में ठहर गए। कुछ ब्रिटिश जासूस यहाँ उनके पीछे पड़ गए। उन्हें चकमा देते हुए पृथ्वीसिंह स्थान-स्थान पर भागते फिरे। अंततोगत्वा वर्धा पहुँचकर उन्होंने स्वयं को महात्मा गांधी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। गांधीजी ने उनकी पूरी कहानी सुनी और उन्हें परामर्श दिया कि वे स्वयं को पुलिस को समर्पित करके अनिश्चित जीवन का ढंग समाप्त करें।

गांधीजी के परामर्श के अनुसार पृथ्वीसिंह ने स्वयं को पुलिस के हवाले कर दिया। इस बीच भारत में बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। पुलिस के साथ मुकाबला करते हुए चंद्रशेखर आजाद ने वीरगति प्राप्त की थी और भगतसिंह को फाँसी लग चुकी थी। चंद्रशेखर आजाद से हुई भेंट की स्मृतिस्वरूप पृथ्वीसिंह ने अपने नाम के साथ 'आजाद' शब्द जोड़ लिया। अब वे पृथ्वीसिंह आजाद थे। भारत में पृथ्वीसिंह को रावलपिंडी की जेल में रखा गया। उन्हें मुक्त कराने के लिए महात्मा गांधी ने वाइसराय के साथ पत्र-व्यवहार जारी रखा। अंत में सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने पर सद्भावनास्वरूप ब्रिटिश शासन ने पृथ्वीसिंह आजाद को जेल जीवन से आजाद कर दिया।

कई प्रकार के मिले-जुले प्रयत्नों और शहीदों के बलिदानों के परिणाम स्वरूप १९४७ में भारत आजाद हुआ और एक बहुत बड़ी मंजिल पाकर पृथ्वीसिंह आजाद 'बाबा पृथ्वीसिंह आजाद' के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

□

★ प्रतापसिंह

पुलिस का एक अफसर और कुछ सिपाही बरेली जेल के अहाते में एक तेजस्वी युवक को घेरे हुए हैं। हथकड़ियों और बेड़ियों के स्वर का आनंद लेता

प्रतापसिंह

हुआ वह युवक अफसर की बातों को अनसुनी कर रहा है। युवक का नाम प्रतापसिंह है। प्रताप का प्रताप कई मास के कारावास से भी धूमिल नहीं हुआ है। उसके तेजवंत मुखमंडल पर चरित्र की दृढ़ता और हृदय की आग से अनुपम सौंदर्य की सृष्टि हो रही है। वार्त्ता के स्वर प्रस्फुटित हो उठे हैं—

''कुँवर साहब! हमने आपको बहुत समय दे दिया। मेरा खयाल है कि अब आपके खयालात बदल गए होंगे और आपने सरकार की मदद करने का फैसला कर लिया होगा। क्या आप अपने क्रांतिकारी साथियों के पते-ठिकाने बताकर अपना और सरकार का भला करेंगे?''

''मौत भी राजपूत के फैसले को नहीं पलट सकती, फिर आप तो नौकरशाही की मशीन में ढले हुए एक मामूली पुरजे हैं। क्या आप मुझसे यह उम्मीद करते हैं कि मैं अपने गले का फंदा निकालकर अपने साथियों के गले में फँसा दूँगा? सरकार का गुलाम होने के नाते आप उसकी भलाई की बातें सोचें तो सोचें, हम क्रांतिकारी लोग तो उस सरकार की जड़ें उखाड़कर ही दम लेंगे।''

''मैं फिर कहता हूँ, कुँवर साहब, कि आप अपनी जिद छोड़ दीजिए और अपने साथियों के पते बताकर मुक्त हो जाइए।''

''वीर की मुक्ति समरभूमि में होती है। यदि आपको मेरी मुक्ति की चिंता है तो आप एक तलवार मुझे दे दीजिए और चाहे जितने साथियों के साथ आप मुझपर टूट पड़िए। फिर देखिए, मेरी तलवार किस प्रकार नौकरशाही की काई को फाड़ती है।''

''हम आपकी वीरता की कद्र करते हैं और साथ ही आपको यह नेक सलाह भी देते हैं कि आप अपने साथियों के पते-ठिकाने बताकर अपने पिता को आजन्म कालापानी की सजा से छुटकारा दिलाइए। हम आपको भरोसा देते हैं कि सरकार आपके चाचा के ऊपर से भी मुकदमा उठा लेगी।''

''सच्चा क्रांतिकारी माता-पिता, भाई-बहन और चाचा-ताऊ आदि के बंधनों से मुक्त रहता है। वह मौत के आतंक या ऐश्वर्य के प्रलोभन से डिग नहीं सकता। मैं अपनी तथा अपने पिता की मुक्ति के लिए अपने साथियों के गलों में

फंदे नहीं डलवाना चाहता।''

''हम आखिरी मौका देकर आपसे कह रहे हैं कि आप अपनी माँ का तो खयाल कीजिए, जो गरीबी की गठरी सिर पर रखे दर-दर की ठोकरें खाती फिर रही हैं। आपको क्या पता है कि वह बेसहारा होकर कितने कष्ट पा रही हैं।''

''अभी तो केवल मेरी माता ही कष्ट पा रही हैं; किंतु यदि मैं अपने साथियों के पते बता दूँ तो और भी कितने लोगों की माताएँ कष्ट पाने लगेंगी! क्या एक माता को कष्ट से बचाने के लिए अनेक माताओं को कष्ट देने का अपराध मैं कर सकता हूँ?''

''तो फिर आप मरिए अपनी मौत और जलिए अंग्रेजी शासन की क्रोध की आग में।''

''राजपूत के खून में वह आग होती है, जिसे और किसी आग की आँच नहीं लगती। आपको और आपकी सरकार को प्रतापसिंह की चुनौती है, आप जितनी भी यातनाएँ मुझे दे सकते हों, देकर देख लीजिए। यदि मैं टस-से-मस हो जाऊँ तो कहिए कि राजपूत नहीं, दोगला था।''

और प्रतापी प्रताप सचमुच ही दमन की चक्की में पिसता रहा। उसे बर्फ की सिल्ली पर लिटाया गया, मिर्चों की धूनी दी गई, कोड़ों के प्रहार किए गए, खाल को जलाकर जख्मों में नींबू का रस और नमक भरा गया; पर आन का वह हठी टस-से-मस नहीं हुआ। उसका कोमल शरीर कारावास की कठोर यातनाओं को कब तक सहता! देह के पिंजड़े से उसकी आत्मा मुक्त हो गई और बरेली की जेल में पड़ा रह गया उसका पार्थिव शरीर।

प्रतापसिंह को लॉर्ड हॉर्डिंग्ज बम केस में गिरफ्तार किया गया था। पहले उसे आजन्म कालापानी की सजा दी गई थी, बाद में वह सजा बढ़ाकर फाँसी की सजा में परिवर्तित कर दी गई। फाँसी के पूर्व ही जेल की यातनाओं ने उस किशोर क्रांतिकारी के प्राण ले लिये।

□

★ बलराज ★ लाला हनुमंत सहाय

लाला हनुमंत सहाय

दिल्ली के चाँदनी चौक इलाके के पुलिस स्टेशन के प्रभारी रामपालसिंह ने जब लाला हनुमंत सहाय को हाथ में एक भारी-सा थैला लटकाए हुए और नंगे पाँव जाते हुए देखा तो उसे कुछ आश्चर्य हुआ। वह लालाजी और उनके वैभव से परिचित था और उनकी विशाल हवेली में कई बार अतिथि बनकर वह पार्टियों में सम्मिलित हो चुका था। थाने के सामने से इस प्रकार लालाजी को जाते हुए देखकर उसने एक जोरदार 'राम-राम' दागी और छेड़ने के लहजे में बोल उठा—

"कहिए लालाजी! आज आपको क्या हुआ, जो इतना वजनदार थैला लटकाए हुए पैदल चले जा रहे हैं? क्या थैले में सोना-चाँदी भर रखा है?"

लाला हनुमंत सहाय के साथ उनका एक साथी भी अपने हाथ में एक थैला लटकाए हुए था। वे दोनों रुक गए और लालाजी ने थानेदार के सवाल का उत्तर देते हुए कहा—

"बात यह है, दारोगाजी, कि हमारे घर सत्यनारायण की कथा होने वाली है। श्रीमतीजी का आदेश हुआ कि प्रसाद में एक-एक नारियल सबको दिया जाए। हम लोग थैलों में नारियल लेकर ही जा रहे हैं और चूँकि मामला पूजा का है, इसलिए शास्त्रों के विधान के अनुसार पूजा की वस्तु नंगे पाँव ले जाने में पुण्य अधिक मिलता है, इसलिए हम लोग नंगे पाँव ही जा रहे हैं।"

"अच्छा लालाजी! थोड़ी देर ठहरकर पानी-वानी तो पीते जाइए, कभी-

कभी हम जैसे लोगों को भी कृतार्थ कर दिया कीजिए।''

लालाजी का वहाँ रुकना खतरे से खाली नहीं था। उनके और उनके साथी के थैलों के बीच में दो-दो बम रखे हुए थे और बमों के ऊपर-नीचे उन्होंने नारियल रख छोड़े थे। ये बम उन्हें उनके क्रांतिकारी साथी अवधबिहारी ने सुरक्षित स्थान पर रखने के लिए दिए थे। उन्होंने सोचा कि यदि इस समय नहीं रुके तो थानेदार को कुछ शक हो सकता है। अत: थानेदार के आग्रह पर अपने साथी के साथ वे रुक गए। थानेदार ने उन दोनों की ओर कुरसियाँ खिसकाते हुए प्रश्नवाचक दृष्टि से लालाजी के साथी की ओर देखा। लालाजी उसका आशय समझ गए और अपने साथी का परिचय देते हुए बोले—

''ये हैं श्री बलराज। इनके पिता महात्मा हंसराज को तो आप जानते ही होंगे?''

''भला दिल्ली में रहकर महात्मा हंसराज को हम न जानें, यह कैसे हो सकता है! आपकी मार्फत आज इनसे परिचय प्राप्त कर बहुत खुशी हुई। कहिए, आप लोगों के लिए चाय मँगवाऊँ या शरबत?''

''दारोगाजी! इस समय तो चांय और शरबत कुछ भी नहीं चलेगा। पूजा का प्रसाद लेने के पहले हम लोग कुछ भी नहीं ले सकते। यदि आप खातिर करना ही चाहते हैं तो अलबत्ता कल हम आपकी सेवा में हाजिर हो जाएँगे। तब हम चाय के साथ नाश्ते का आनंद भी ले सकते हैं।''

''अच्छा, बात पक्की रही। कल सुबह इसी समय मैं आपका इंतजार करूँगा। जरूर आइए और श्री बलराज को भी लाइए।''

दारोगाजी को आश्वासन देकर और उनसे पिंड छुड़ाकर लालाजी चले गए। जब वे थाने से कुछ दूर निकल गए तो उन्होंने बलराज से कहा—

''कहो भाई! अगर थानेदार एकाध नारियल हथिया लेने की गरज से हमारे थैलों के नारियलों को परखने लगता तो क्या होता?''

''होता क्या, हम लोग उछलकर दूर खड़े हो जाते और एक 'बड़ा नारियल' खुद ही उसके सामने दे मारते और भाग खड़े होते।''

''खैर भाई, ईश्वर को धन्यवाद कि हम लोग बिना शक-सुब्हा पैदा हुए निकल आए। अब तो आज घर पर सत्यनारायण की कथा अवश्य करानी पड़ेगी और प्रसाद लेने के लिए उस दारोगा के बच्चे को अवश्य निमंत्रित करना पड़ेगा।''

और इस प्रकार बातें करते हुए लालाजी अपने घर पहुँच गए।

लाला हनुमंत सहाय सचमुच ही दिल्ली के बहुत बड़े व्यापारी थे और धर्म-कर्म में उनकी बहुत रुचि थी। वे समाज-सुधार के कार्यों में भी अगुआ थे। पहले

उनके घर की महिलाएँ परदा करती थीं; पर अवधबिहारी के आग्रह पर लालाजी ने अपने परिवार से परदे की प्रथा उठा दी थी और वे अपने समाज में भी परदा प्रथा दूर करने की मुहिम चला रहे थे। अपने इस अभियान में उन्हें समाज का विरोध भी सहन करना पड़ रहा था।

मास्टर अमीरचंद और अवधबिहारी के संपर्क में आकर लाला हनुमंत सहाय पक्के क्रांतिकारी भी बन गए थे। उनकी थैलियाँ क्रांति कार्य के लिए सदैव खुली रहती थीं। एक बार अवधबिहारी ने उनके मन की थाह लेने की गरज से कहा था—

''लालाजी! आप क्रांति कार्य में खर्च करते समय यह भी तो सोचा कीजिए कि आपके साथ आपका भरा-पूरा परिवार है और आपके ऊपर और भी तो बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं।''

इस बात का उत्तर देते हुए लालाजी ने कहा था—

''देखो भाई, पैसा कमाया इसीलिए जाता है कि वह खर्च किया जाए और अगर पैसा देश की भलाई एवं आजादी के प्रयत्नों में खर्च किया जाए तो धन की इससे अच्छी सार्थकता और क्या होगी! और भाई, हम लोगों के प्रेरणास्रोत तो हमारे पूर्वज भामाशाह हैं, जिन्होंने अपनी कई पीढ़ियों का जोड़ा हुआ धन चित्तौड़ की आजादी के लिए महाराणा प्रताप के चरणों में रख दिया था। हम लोग तो उनके मुकाबले में कर ही क्या सकते हैं!''

इस प्रकार के दरियादिल और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को पाकर दिल्ली के क्रांतिकारियों का काम अच्छा चल निकला था। लालाजी का पैसा उनका पैसा था और लालाजी का भवन बमों का भंडारगृह बन गया था।

रासबिहारी बोस ने भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर बम प्रहार की जो योजना बनाई, उसमें लाला हनुमंत सहाय और बलराज भी सम्मिलित थे। लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर बम प्रहार हुआ और उसका अंगरक्षक मारा गया। कुछ दिन पश्चात् जब दीनानाथ नाम का व्यक्ति पकड़ा गया तो उसने सबकुछ कबूल कर लिया और सभी क्रांतिकारियों के नाम उसने बता दिए। लाला हनुमंत सहाय को भी उनकी हवेली से गिरफ्तार कर लिया गया। संयोग की बात यह भी रही कि थानेदार रामपालसिंह ही उनकी गिरफ्तारी के लिए तैनात हुआ। जब वह दल-बल के साथ उनकी हवेली पर पहुँचा तो लालाजी को सुनाकर उसने कहा—

''लालाजी! उस दिन तो मेरा दुर्भाग्य था कि कथा के प्रसाद के नारियल लेने मैं आपके यहाँ नहीं पहुँच सका। आज मैं खुद ही आपकी सेवा में हाजिर हो गया हूँ। हमने सुना है कि आपके यहाँ कुछ बहुत बड़े-बड़े नारियल भी मिलते हैं।''

''अच्छा-अच्छा! तो आप लोग उन नारियलों की तलाश में आए हैं। उस दिन तो हम लोग नारियल लेकर खुद ही आपके थाने पर पहुँचे थे, पर आपने कोई फरमाइश की ही नहीं, और आज अब आप आए हैं तो हमारे पास नारियल नहीं हैं।''

थानेदार रामपालसिंह ने लाला हनुमंत सहाय की हवेली की अच्छी तरह से तलाशी ली। बम तो वहाँ कोई नहीं मिला, पर 'लिबर्टी' परचे की कुछ प्रतियाँ अवश्य मिल गईं।

'दिल्ली षड्यंत्र कांड' के अंतर्गत लाला हनुमंत सहाय और बलराज को भी सम्मिलित किया गया। सेशन जज ने ५ अक्तूबर, १९१४ को जो फैसला सुनाया उसके अनुसार मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी एवं भाई बालमुकुंद को फाँसी तथा वसंतकुमार विश्वास, लाला हनुमंत सहाय और बलराज को आजन्म कालापानी का दंड सुनाया गया। फैसले के विरुद्ध अपील करने पर वसंतकुमार विश्वास की सजा बढ़ाकर फाँसी की सजा कर दी गई और लाला हनुमंत सहाय एवं बलराज की आजन्म कालापानी की सजाएँ घटाकर सात-सात वर्ष के कारावास की कर दी गईं।

क्या हमारे देशवासी और विशेष रूप से धन-संपन्न लोग लाला हनुमंत सहाय से कुछ प्रेरणा लेंगे!

□

★ भाई बालमुकुंद

जोधपुर के महाराज को अपने राजकुमारों को पढ़ाने के लिए एक गृह शिक्षक की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिए एक विज्ञापन उन्होंने समाचार-पत्र में छपवाया और ढेर सारे आवेदन-पत्र उनके पास पहुँच गए। आए हुए आवेदन-पत्रों में से कुछ छाँटकर उन्होंने उनके आवेदकों को साक्षात्कार के लिए बुलवा लिया। उन सबमें से उन्होंने जिसको चुना, वह एक सौम्य प्रकृति का नौजवान था, जो अंग्रेजी परिधान के स्थान पर देशी ढंग के कपड़े पहने हुए था और उसने अपने सिर पर एक साफा बाँध रखा था। वह केवल बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण था। उसकी अपेक्षा और कई आवेदक उससे अधिक शिक्षा प्राप्त तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के थे। इतना होने पर भी वही युवक जोधपुर के राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए चुना गया।

साक्षात्कार के समय जब उस युवक से उसका नाम पूछा गया तो उसने

भाई बालमुकुंद

अपना नाम 'भाई बालमुकुंद' बताया। जोधपुर महाराज की जिज्ञासा बढ़ी और उन्होंने पूछ डाला—

"आप अपने नाम के साथ 'भाई' शब्द क्यों लगाते हैं?"

युवक बालमुकुंद ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया—

"हमारे पुरखों में एक श्री मतिरामजी हुए थे। सम्राट् औरंगजेब ने उन्हें गिरफ्तार किया और इसलाम धर्म स्वीकार करने के लिए कहा। वे इससे सहमत नहीं हुए। परिणाम यह हुआ कि सम्राट् के आदेश से उन्हें आरे से चीरकर मार डाला गया। उनकी दृढ़ता और उनके बलिदान को सम्मानित करने के लिए उन्हें 'भाई मतिराम' कहा जाने लगा। उनके वंश में पैदा होनेवाले सभी लोगों के नाम के साथ सम्मानसूचक शब्द 'भाई' तभी से जोड़ा जाने लगा है। मुझे गर्व है कि मैं भी भाई मतिराम का वंशज हूँ और इसीलिए लोग मुझे भाई बालमुकुंद कहकर पुकारते हैं।"

इस उत्तर को सुनकर जोधपुर महाराज भी प्रभावित हुए और उन्होंने भाई बालमुकुंद को अपने राजकुमारों के गृह शिक्षक के रूप में नियुक्त कर दिया।

भाई बालमुकुंद ने लाहौर में रहकर बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। लाहौर में रहते हुए वे क्रांतिकारियों के संपर्क में आ चुके थे और श्री रासबिहारी बोस तथा दिल्ली के क्रांतिकारी मास्टर अमीरचंद एवं अवधबिहारी से उनका परिचय ही नहीं हुआ, अपितु वे उनके दल के सक्रिय सदस्य बन गए।

भाई बालमुकुंद ने अपने प्रभाव से ही रासबिहारी बोस के भेजे हुए क्रांतिकारी वसंतकुमार विश्वास को एक प्राइवेट अस्पताल में कंपाउंडर की नौकरी दिलवाई थी। वे स्वयं भी बम बनाने और उसके विस्फोट करने की कला में निष्णात हो चुके थे।

जब रासबिहारी बोस ने दिल्ली में वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर बम प्रहार करने की योजना बनाई तो उसके आयोजकों में भाई बालमुकुंद भी एक थे। लाहौर के लारेंस गार्डन में जो बम विस्फोट हुआ, उसकी योजना के प्रमुख सूत्रधार भाई बालमुकुंद ही थे। राजद्रोही साहित्य के लेखन, प्रकाशन और प्रसारण में भी वे आगे-आगे रहते थे।

इन सभी कांडों के पश्चात् सरकार की नजरों से बचने के लिए ही भाई बालमुकुंद जोधपुर गए, जहाँ वे जोधपुर के राजकुमारों के शिक्षक नियुक्त हुए। एक बार अपनी इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयत्न भी उन्होंने किया। वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज एक बार जोधपुर पहुँचे। वाइसराय के जोधपुर आगमन पर वहाँ के महाराजा द्वारा एक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। उस सम्मान समारोह' में भाई बालमुकुंद को भी जाने की अनुमति मिली और वे अपने साथ एक बम भी ले गए; पर उसका प्रहार करने की सुविधा उन्हें नहीं मिली। वाइसराय महोदय के पास ही जोधपुर नरेश बैठे थे। इसी कारण भाई बालमुकुंद ने बम प्रहार नहीं किया।

जब ब्रिटिश सरकार ने क्रांतिकारियों की धर-पकड़ प्रारंभ की तो दीनानाथ नाम के एक सदस्य ने कमजोरी का शिकार होकर दल के सभी सदस्यों के नाम-धाम बता दिए। उसीके द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर भाई बालमुकुंद को जोधपुर से गिरफ्तार किया गया। गिरफ्तारी के समय उनके मकान से दो जीविंत बम बरामद किए गए और कुछ शासम विरोधी साहित्य भी पाया गया।

शेष कहानी वही है, जो मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी और वसंतकुमार बिश्वास की है। उन सभी के साथ अंबाला जेल में ११ मई, १९१५ को भाई बालमुकुंद को भी फाँसी पर झुला दिया गया। उन्हें इस बात का गर्व था कि उनके पूर्वज मतिरामजी धर्म पर बलिदान हुए थे तो उन्हें देश पर बलिदान होने का सौभाग्य मिला।

भाई बालमुकुंद के बलिदान का महत्त्व तब और भी बढ़ गया, जब उनकी नव परिणीता वधू लज्जावती ने भी आत्मबलिदान का गौरव प्राप्त कर लिया। फाँसी से लगभग एक वर्ष पूर्व ही तो उनका विवाह हुआ था। उनकी पत्नी अत्यंत रूपवती, विनयशीला और पतिव्रता थीं। विवाह के पश्चात् उनका गौना नहीं हुआ था और इस प्रकार दोनों ही ब्रह्मचर्य की स्थिति में थे। उनकी पत्नी का मायके का नाम 'रामरखी' था। ससुराल में उनका नाम 'लज्जावती' रख दिया गया था।

लज्जावती को जब यह मालूम हुआ कि उनके पति को फाँसी होगी तो उन्होंने सती होने का विचार प्रकट किया। उन्हें इसकी अनुमति नहीं मिली। एक दिन वे अपने पति से मिलने जेल में गईं तो पति से उनका हाल-चाल पूछने लगीं। उन्होंने यह भी पूछा कि आपको कैसा खाना मिलता है। उनके पति ने कह दिया कि बालू-रेत मिले हुए आटे की रोटियाँ उन्हें खाने को मिलती हैं। अपनी शयन व्यवस्था के विषय में उन्होंने बताया कि इसी तंग कोठरी में एक कंबल बिछाकर सोना पड़ता है और मच्छरों से बचने के लिए गरमी में भी कंबल ओढ़ना पड़ता है।

जेल में अपने पति से भेंट करने के पश्चात् जब लज्जावती घर पहुँचीं तो वे

स्वयं के लिए बालू-रेत मिली रोटियाँ बनाकर खाने लगीं। एक अँधेरी कोठरी में वे भी कंबल बिछाकर और कंबल ओढ़कर सोने लगीं। अपने पति के फाँसी के कुछ दिन पूर्व से तो उन्होंने भोजन और जल का भी त्याग कर दिया। कहते हैं कि जिस दिन उनके पति को फाँसी होने वाली थी, उस दिन लज्जावती ने शादी के कपड़े एवं आभूषण पहने और तुलसीचौरा पर ध्यानमग्न होकर बैठ गईं। उन्होंने आत्मबल से अपने प्राण त्याग दिए और वे दूसरे लोक में अपने पति से जा मिलीं।

सचमुच ही लज्जावती का त्याग अनुपम है।

□

★ भगवानसिंह

उस दिन अमेरिका में रहनेवाले भारतीय क्रांतिकारियों की उमंग और उत्साह का ठिकाना नहीं था। वह २९ अगस्त, १९१४ का दिन था। भारतीय गदर वीरों का पहला जत्था 'प्रिंसेज कोरिया' जहाज से देशमुक्ति के लिए प्रस्थान करने वाला था। सारी व्यवस्थाएँ कर ली गई थीं। पूरे समूह को टोलियों में बाँट दिया गया था और टोली नायक नियुक्त कर दिए गए थे। जहाज प्रस्थान करे, उसके पूर्व क्रांतिकारी साथी भगवानसिंह डैक पर पहुँचे और उन्होंने जानेवाले गदर वीरों को संबोधित करते हुए कहा—

"तुम्हारा कर्तव्य स्पष्ट है। स्वदेश लौट जाओ और भारत के कोने-कोने में गदर की चिनगारी सुलगा दो। भारत पहुँचने पर तुम्हें हथियार दिए जाएँगे। अगर हथियार जुटाने में हम सफल नहीं होते हैं तो पुलिस स्टेशनों पर धावा बोलकर हथियार लूट लो। अपने नेताओं के आदेशों पर चलो।"

भगवानसिंह के इन शब्दों का क्रांतिकारियों पर जादू जैसा असर हुआ। उनकी हुंकार ने अपने नेता को आश्वस्त किया। उधर जहाज ने भी हुंकार भरी और चल दिया। भगवानसिंह का कार्य यही था कि वे जापान, कनाडा और अमेरिका में घूम-घूमकर प्रचार कर रहे थे कि बलिदानों के बल पर भारत की आजादी हासिल करने का समय आ गया है।

भगवानसिंह पीनांग और हांगकांग में ग्रंथी रह चुके थे। उन्हें अंत:प्रेरणा हुई कि देश का काम भी धर्म का ही काम है। तभी से धार्मिक प्रवचन के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी प्रसार करने लगे। वाणी के धनी थे। जो उनका भाषण सुनता, वह कुछ कर गुजरने के लिए बेचैन हो उठता था। इसी क्रम में वे जापान भी गए।

जापान में उस समय भारत के एक और महान् क्रांतिकारी मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला भी थे। उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें टोकियो विश्वविद्यालय

में हिंदुस्तानी का प्रोफेसर नियुक्त किया गया था। अंग्रेजों के निरंतर दबाव के कारण मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला को जापान सरकार ने नौकरी से और अपने देश से निकाल दिया। भगवानसिंह इस क्रांतिकारी को लेकर सन् १९१२ के आसपास सानफ्रांसिस्को पहुँच गए।

सानफ्रांसिस्को पहुँचने पर गदर पार्टी का पुनर्गठन किया गया; क्योंकि लाला हरदयाल को अमेरिका से निष्कासित कर दिया गया था। अब गदर पार्टी का प्रधान भगवानसिंह को तथा उपप्रधान मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला को बनाया गया।

भगवानसिंह कनाडा भी पहुँचे और वहाँ भी ब्रिटिश विरोधी प्रचार के सूत्र उन्होंने अपने हाथ में ले लिये। उनके वैंकोवर पहुँचने पर गुरुद्वारे में साप्ताहिक बैठकों का आयोजन होने लगा। इन्हीं बैठकों में निश्चित किया गया कि एक भारतीय जब दूसरे से मिले तो 'वंदेमातरम्' कहकर अभिवादन किया करे। भगवानसिंह की विचारधारा बड़ी उग्र थी और उनमें लोगों को प्रभावित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हथियारों के बल पर ही अंग्रेजों को भारत से खदेड़ा जा सकता है। भारत की मुक्ति के लिए उन्होंने वाणी और अपनी क्षमताओं का पूरा-पूरा उपयोग किया।

□

★ भाई भागसिंह
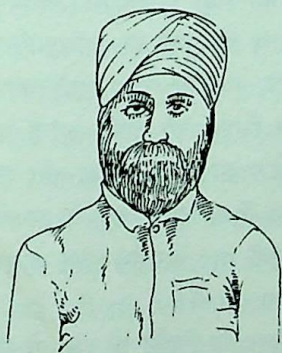
भाई भागसिंह

भाई भागसिंह ने विद्याध्ययन के नाम पर भले ही गुरुमुखी का काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त किया हो; पर अपने देश और देशवासियों की सेवा के कई बड़े-बड़े ग्रंथ उन्होंने केवल पढ़े ही नहीं थे, बल्कि उन्हें घोटकर पी गए थे। उनका जन्म ही इसीलिए हुआ कि वे अपनी प्रत्येक साँस से देश की जय बोलते रहें।

देश की जय बोलते हुए जिन भागसिंह ने कनाडा की भूमि पर अपने

प्राणों का उत्सर्ग किया, उनका जन्म लाहौर जिले के 'भिक्खोविंड' नामक गाँव में सन् १८७८ में हुआ था। उनके पिता का नाम सरदार नारायणसिंह तथा माताजी का नाम मानकुँअर था।

अपनी मातृभाषा पंजाबी और गुरुमुखी की थोड़ी-सी पूँजी लेकर जब ज्ञान के बाजार में भागसिंह टुटपुँजिए सिद्ध हुए तो वे बल व पौरुष के भरोसे धरती की गोद मोतियों से भरने लगे। अपनी फसलों को पसीने से सींचकर वे खलिहानों के मस्तक ऊँचे उठाने लगे। लोग कहने लगे कि भागसिंह एक सफल किसान है।

सिंह तो शिकार करना जानता है, वह खेती क्या करेगा! भागसिंह भी खेती छोड़कर फौज में भरती हो गए; पर रखी वहाँ भी वही सिंह की वृत्ति। जहाँ मरने-मारने का काम हो, भागसिंह को आगे कर दो। बड़ा मजा आता था उन्हें जोखिम के कामों में। जिस दिन किसीसे झगड़ा न हो, वह दिन ही कैसा! उन्हें झगड़ने में यदि विशेष आनंद आता था तो अपने अफसरों से झगड़ने में।

जब देखा कि सिपाही के पद ने उन्हें जकड़कर रख लिया है तो वे उसे झटककर भाग खड़े हुए। एक ही छलाँग में भागसिंह भारत से चीन पहुँच गए। हांगकांग की पुलिस में भरती हो गए। उन दिनों भारत के सिंहों का चीन में बड़ा दबदबा था और चीनी लोग सरदारों की मार से चीं बोलते थे। कई दिनों तक भागसिंह चीनियों को चीं बुलाते रहे; पर एक दिन जब उन्हींके बेड़े के जमादार ने चीं-चपड़ की तो नौकरी को धता बताकर शंघाई पुलिस की नौकरी कर ली।

शेर एक जगह टिककर नहीं रहता। भागसिंह शंघाई में कैसे टिकते! शंघाई से छलाँग मारी तो कनाडा जा पहुँचे। वहाँ उन्हें अपने जैसे कई दीवाने मिल गए। कनाडा में वतन के दीवाने भाई वतनसिंह, भाई बलवंतसिंह, भाई सुंदरसिंह और अर्जुनसिंह से आपका दिल ऐसा मिला कि जीते-जी अलग नहीं हो सका।

उन दिनों कनाडा में प्रवासी भारतीयों की बड़ी दुर्दशा थी। जीविका के लिए तो उन्हें संघर्ष करना ही पड़ता था, साथ ही वहाँ के अधिकारियों का कोपभाजन भी होना पड़ता था। कहीं भी मंदिर, मसजिद या गुरुद्वारे बनाने की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि हिंदुओं और सिखों को अपने मुरदों को भी जलाने की अनुमति नहीं थी। उन्हें दफनाना पड़ता था। एक कुचक्र और रचा जा रहा था कि इन सिखों को ब्रिटिश हंडोरास भेज दिया जाए, जहाँ वे अपनी मौत खुद मरें। हंडोरास नरक से क़िसी प्रकार कम नहीं था। भारतीय लोग कनाडा की भूमि पर न उतर पाएँ, इस प्रकार के नियम बनाए गए थे।

वतन के दीवानों के दल ने निश्चय किया कि जिएँगे तो शान से जिएँगे। प्रवासी भारतीयों का संगठन बनाया गया और जगह-जगह गुरुद्वारे स्थापित किए

गए। उस समय ये लोग कनाडा के वैंकोवर नगर में रह रहे थे। वैंकोवर में भूमि खरीदकर एक बड़ा गुरुद्वारा बनाया गया। एक श्मशान का निर्माण भी वहाँ हुआ। कानून से संघर्ष किया गया और उसमें से वह पाबंदी हटा दी गई कि भारतीय लोग अपने परिवार कनाडा नहीं ला सकते। अब वे अपने परिवार भी वहाँ ले जाने लगे। शामसिंह और नागरसिंह नाम के दो प्रतिनिधियों को १५ अक्तूबर, १९०८ को हंडोरास इसलिए भेजा गया कि वे वहाँ की स्थिति देखकर बताएँ कि वह स्थान रहने के लिए कैसा है। उन्होंने आकर बताया कि हंडोरास नरक का ही दूसरा नाम है। वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया गया।

प्रवासी संस्थापन विभाग द्वारा परिवार लाने की अनुमति मिल जाने का लाभ उठाने की दृष्टि से भाई भागसिंह भारत की ओर चल दिए। भारत पहुँचने पर उनकी तंद्रा भंग हुई कि परिवार कहाँ से ले जाएँगे! पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था और बाल-बच्चे पैदा ही नहीं हुए थे। उन्होंने राह खोज निकाली। पेशावर की एक महिला के साथ उन्होंने विवाह कर लिया और उसको साथ लेकर चीन के रास्ते कनाडा के लिए प्रस्थित हो गए। हांगकांग पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि कनाडा पहुँचने के लिए भारतीयों को कोई जहाज न मिल सकेगा। कमाडा में उतरने की अनुमति प्राप्त करने के लिए भागसिंह को कई महीनों तक हांगकांग में रुकना पड़ा। उनके प्रयत्न सफल हुए। कनाडा में उतरने की अनुमति मिल गई। पत्नी की समस्या तो हल हो गई थी, बच्चे की समस्या भी हल हो गई। इतने दिनों तक हांगकांग ठहरने की अवधि में उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति भी हो गई। पुत्र का नाम रखा गया जोगिंदरसिंह। जब कनाडा पहुँचे तो भागसिंह बाल-बच्चेदार थे।

कनाडा में रहते हुए भाई भागसिंह ने अनुभव किया कि जो देश स्वाधीन नहीं है, उसका संसार में कहीं भी सम्मान नहीं है। ठोकरों-पर-ठोकरें लगने पर उन्हें भारत की पराधीनता खलने लगी और धार्मिक जोश का स्थान अब राजनीतिक जोश ने ले लिया। इस बात के प्रयत्न किए जाने लगे कि किसी भी तरह भारत को विदेशी पंजे से मुक्त किया जाए। सभा-समितियाँ बन गईं। धन एकत्रित किया जाने लगा और भारत-मुक्ति की योजनाएँ बनने लगीं। अमेरिका में गदर पार्टी की स्थापना हो गई और 'गदर' अखबार निकलने लगा।

इसी बीच एक अवसर और भी उपस्थित हो गया, जब भाई भागसिंह के सामर्थ्य का परिचय कनाडा सरकार को मिला। भारतीय यात्रियों के जहाज 'कामागाटामारू' को वैंकोवर के तट से लगने की अनुमति नहीं मिली तो भाई भागसिंह ने जमीन-आसमान एक कर दिया और अपने देशवासियों की सहायता के

लिए तन-मन से जुट गए। जब कहीं भी जहाज को लगने की अनुमति नहीं मिली तो भाई भागसिंह ने प्रयत्न करके एक घाट ही खरीद लिया। इसपर जहाज के मालिक को भड़काया गया कि वह जहाज का किराया किस्तों में न लेकर पूरी धनराशि एक साथ माँग ले। अब तो कोई चारा नहीं था; पर भाई भागसिंह ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। जोड़-तोड़कर पूरी राशि जुटाई गई और जहाज का चार्टर खरीद लिया गया। इसी प्रयत्न में उन्हें ब्रिटिश कोलंबिया तक जाना पड़ा और वहाँ वे गिरफ्तार कर लिये गए। बाद में वे छूट गए।

अपनी राजनीतिक गतिविधियों के कारण भागसिंह कनाडा सरकार की आँखों में खटकने लगे। प्रवासी संस्थापन विभाग के अधिकारियों ने तो भागसिंह को खत्म करवा देने की धमकी भी दी; पर वे निश्चिंत होकर घूमते रहे। वे समझते थे कि धमकियों में कोई सार थोड़े ही होता है। उन्हें क्या पता था कि देशसेवा के व्रत में एक दिन उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

कनाडा की सरकार ने भेदनीति से काम लिया। सरदार बेलासिंह नाम के एक अन्य सिख को अपनी ओर मिलाकर भागसिंह की जान लेने का कुचक्र रचा गया। एक दिन वैंकोवर के गुरुद्वारे में जब सिख समाज अपने दिवंगत साथी के श्राद्ध के उपलक्ष्य में गुरुग्रंथ साहिब का पाठ कर रहे थे तो बेलासिंह भी वहीं घात लगाए बैठा था। पाठ शांतिपूर्वक समाप्त हो गया। ज्यों ही लोग अरदास के पश्चात् मत्था टेकने के लिए झुके, त्यों ही बेलासिंह ने अपना रिवॉल्वर निकालकर भागसिंह के ऊपर गोली चला दी। गोली पीठ फोड़कर फेफड़ों तक जा पहुँची। आक्रमणकारी को पकड़ने के प्रयत्न में भागसिंह के एक अन्य साथी वतनसिंह को भी अपने प्राण देने पड़े। बेलासिंह भाग निकला।

घायल अवस्था में भाई भागसिंह को अस्पताल पहुँचाया गया। घायलावस्था में भी वे होश और जोश में रहे तथा अपने साथियों को देश का कार्य करते रहने का निर्देश देते रहे। जब उनके पुत्र जोगिंदरसिंह को उनके सामने लाया गया तो उन्होंने कहा—"यह लड़का अब मेरा नहीं, कौम का है। इसे दरबार में ले जाओ, मेरे पास क्यों लाए हो?"

यह था एक क्रांतिकारी का जीवन-दर्शन, जो मौत को खेल और परिवार को राष्ट्र की संपत्ति समझता था।

अंत में भाई भागसिंह ने प्राण-विसर्जन करते हुए कहा—

"मेरी तो इच्छा थी कि देश के लिए दुश्मन से दो-दो हाथ करके मरता; पर इस तरह मरना पड़ रहा है। ईश्वर की यही इच्छा थी।"

□

★ भानसिंह

अंडमान की एक ढाई फीट चौड़ी, ढाई फीट लंबी काल कोठरी में एक सवा छह फीट कद्दावर विद्रोही सरदार भानसिंह को विशेष दंड देकर डाल दिया गया। अपराध यही था कि भानसिंह देशभक्तिपूर्ण गाने गाते रहते थे और उन्हें रोका जाता था तो किसीकी मानते नहीं थे।

भानसिंह पंजाब के लुधियाना जिले के 'सुनेत' गाँव के रहनेवाले थे। पहले सेना में नौकरी की और फिर छोड़-छाड़कर अमेरिका चले गए। गदर पार्टी की लहर ने भानसिंह को खींच लिया और गदर पार्टी के पहले जत्थे के साथ 'प्रिंसेज कोरिया' जहाज द्वारा वे देश की आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए भारत चल दिए। भानसिंह रास्ते-भर मस्ती से राष्ट्रीय गीत गाते थे और जहाँ भी जहाज रुकता, बड़े जोर से ऐलान करते जाते थे कि हम लोग देश की आजादी की लड़ाई लड़ने जा रहे हैं। २९ अक्तूबर, १९१४ को कलकत्ता पहुँचते ही भानसिंह गिरफ्तार कर लिये गए। कुछ दिन तक मांटगुमरी जेल में रखकर उन्हें छोड़ दिया गया। वे सक्रिय रूप से गदर के कार्यों में हिस्सा लेने लगे। फिर पकड़े गए, मुकदमा चला और आजीवन कारावास का दंड देकर कालापानी की काल कोठरी में डाल दिया गया।

पहले भानसिंह को एक बड़ी कोठरी में सबसे नीचे की मंजिल में रखा गया था। जेल के अधिकारियों के साथ झगड़ा करने के अपराध में उन्हें छह महीने की डंडा-बेड़ी की सजा देकर दूसरी मंजिल की कोठरी में डाल दिया गया। झगड़ा करने से वे फिर भी बाज नहीं आए। खून विद्रोही था, अन्याय बरदाश्त नहीं होता था, झगड़ बैठते थे। अब जो दंड दिया गया, वह यह कि प्रतिदिन की खुराक भी आधी कर दी गई और पानी भी आधा कर दिया गया। भानसिंह तो उन व्यक्तियों में से थे कि जो भोजन उन्हें पहले दिया जाता था, वह भी कम पड़ता था। जब भोजन आधा कर दिया गया तो बहुत कष्ट होने लगा। भोजन की मात्रा आधी कर देने से ज्यादा कष्टप्रद दंड था पानी की मात्रा आधी कर देने का। अंडमान जैसे गरम स्थान में हर घंटे पानी पीना पड़ता था।

भानसिंह अपनी हेकड़ी फिर भी नहीं भूले और वे पहले से अधिक ऊँचे स्वर में कौमी तराने अलापने लगे। जेल के अधिकारी तो उन्हें झुकाने पर तुले हुए थे। भानसिंह का संकल्प था कि टूट जाऊँगा, पर झुकूँगा नहीं। चिढ़कर जेल के अधिकारियों ने उन्हें तीसरी मंजिल पर ढाई फीट लंबी और ढाई फीट चौड़ी कोठरी में डाल दिया। कहाँ भानसिंह की लंबाई सवा छह फीट और कहाँ कोठरी

की लंबाई केवल ढाई फीट। गुड़ी-मुड़ी होकर पड़े रहते थे; जब शरीर अकड़ने लगता था तो खड़े हो जाते थे। कभी-कभी कोने में खड़े होकर ही नींद निकालनी पड़ती थी।

एक दिन जेल का अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट निरीक्षण के लिए ऊपर पहुँचा। भानसिंह से कहा-सुनी हो गई। अंग्रेज अधिकारी भानसिंह को गाली दे बैठा। भानसिंह शेर की तरह गरज उठे और अधिकारी को काफी भला-बुरा कहा। उस अंग्रेज अधिकारी को यह अनुभव पहला ही था। क्रोध में आकर उसने दस-पंद्रह अपराधी भानसिंह पर छोड़ दिए। कोठरी से बाहर घसीटकर वे भानसिंह पर पिल पड़े। भानसिंह का अंग-अंग तोड़कर रख दिया। मुँह से भी खून की उलटियाँ होने लगीं। उठाकर कैदियों के अस्पताल में डाल दिया गया।

लगभग दो महीने तक भानसिंह को खून की उलटियाँ होती रहीं और एक दिन वह स्वतंत्रता-प्रेमी अपने नश्वर शरीर को छोड़कर इस संसार से बिदा हो गया।

□

★ भोलानाथ चटर्जी
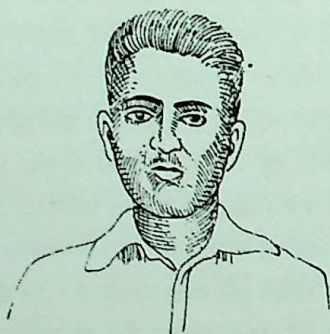
भोलानाथ चटर्जी

महान् क्रांतिकारी ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन) इस उधेड़बुन में लगे हुए थे कि किसी प्रकार भारत के क्रांतिकारियों के लिए जर्मनी से हथियार प्राप्त किए जाएँ। वे प्रथम विश्वयुद्ध के दिन थे और उस समय जर्मनी इंग्लैंड का शत्रु देश था। ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने अपने साथी नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (बाद में मानवेंद्रनाथ राय के नाम से प्रसिद्ध) को इस कार्य के लिए जर्मनी भेजा। नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य ने सी. मार्टिन नाम धारण किया और वे अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए निकल पड़े। हथियार कहाँ प्राप्त किए जाएँगे और उन्हें कहाँ रखा जाएगा, इसका प्रबंध करने का दायित्व एक क्रांतिकारी युवक भोलानाथ चटर्जी को दिया गया। कुछ दिन भोलानाथ चटर्जी नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य के साथ

रहे और फिर वे गोआ पहुँच गए।

यह स्वाभाविक ही था कि भोलानाथ चटर्जी को अपने साथी नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य के विषय में यह जानने की इच्छा होती कि वे कुशल से हैं या नहीं। उन्होंने गोआ से उनके नाम एक तार भेजा। वह तार संदेश किसी प्रकार ब्रिटिश गुप्तचरों के हाथ पड़ गया। अंग्रेजी सरकार ने गोआ की पुर्तगाल सरकार पर यह जोर डाला कि वह भोलानाथ चटर्जी को गिरफ्तार करके उसके सुपुर्द कर दे। पुर्तगाल सरकार ने भोलानाथ को गिरफ्तार तो नहीं किया, लेकिन उसे अपने राज्य से निकाल दिया। ब्रिटिश शासन ने उसे फ्रंटियर से गिरफ्तार करके पूना की जेल में डाल दिया।

पुलिस ने भेद मालूम करने के लिए भोलानाथ चटर्जी को वे सभी यातनाएँ दीं, जो पुलिस दिया करती है। भोलानाथ चटर्जी भी बड़ी बहादुरी के साथ उन यातनाओं को झेलता चला गया और उसने एक भी भेद पुलिस को नहीं दिया। जब पुलिस अपनी निम्नतम सीमा पर उतर आई तो भोलानाथ चटर्जी भी एक क्रांतिकारी के उच्चतम त्याग को अपनाने के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने टूट जाना स्वीकार किया, पर झुक जाना स्वीकार नहीं किया। २७ जनवरी, १९१६ की रात को जेल की कोठरी में उसने अपनी धोती के द्वारा स्वयं को फाँसी लगा ली और पुलिस को धता बताकर चला गया।

□

★ मणींद्रनाथ सेठ

जब सन् १९१६ में मणींद्रनाथ सेठ दौलतपुर अकादमी के वाइस प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त होकर पहुँचा तो वहाँ के लोगों ने उसका हार्दिक स्वागत किया। मणींद्रनाथ सेठ ने एम.ए. की परीक्षा में स्वर्णपदक प्राप्त किया था। गणित उसका प्रिय विषय था।

दौलतपुर अकादमी में मणींद्रनाथ सेठ शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गया। वह बहुत ही मृदुभाषी और मिलनसार था। निर्धन छात्रों की सहायता के लिए तो वह अपने वेतन का अधिकांश भाग दे दिया करता था। सादा जीवन व्यतीत करने के कारण उसका खर्च भी कम था। उसने अभी तक शादी नहीं की थी। उसपर अपने तीन भाइयों की जिम्मेदारी अवश्य थी। माता-पिता का देहावसान हो जाने के पश्चात् अपने भाइयों के प्रति वह स्वयं पिता के दायित्व को पूरा कर रहा था।

सन् १९१७ में रंगपुर में एक कॉलेज खोला गया और उस कॉलेज में गणित के वरिष्ठ प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष के पद पर मणींद्रनाथ सेठ की नियुक्ति हो गई। यहीं से उसके जीवन ने एक नया मोड़ लिया।

दौलतपुर अकादमी छोड़कर जब मणींद्रनाथ सेठ रंगपुर जाने लगा तो शासन के अधिकारियों ने उसपर आरोप लगाया कि उसका संबंध क्रांतिकारियों से है। एक नौकरी उसने छोड़ दी और दूसरी पर उसे उपस्थित नहीं होने दिया गया।

जुलाई १९१७ में मणींद्रनाथ सेठ ने बंगाल के पॉलिटिकल सेक्रेटरी से भेंट की। इस भेंट का प्रधान उद्देश्य तो यह था कि वह अपने उस भाई को छुड़ाने का प्रयत्न करे, जिसे पुलिस ने क्रांतिकारियों से संबंध रखने के संदेह में गिरफ्तार कर लिया था। मणींद्रनाथ सेठ ने पॉलिटिकल सेक्रेटरी के सामने अपने ऊपर आई मुसीबत का बखान भी किया। उसका प्रश्न था—"अपने नाबालिग भाइयों का भरण-पोषण करने और स्वयं अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे समय मुझे क्या करना चाहिए?"

पॉलिटिकल सेक्रेटरी ने उसके घावों पर नमक छिड़कते हुए उसको उत्तर

दिया—''एक नदी के किनारे पर खड़े होकर मैं यह कैसे बता सकता हूँ कि नदी की धारा किस तरफ जाएगी। तुम तो यह खैर मनाओ, बाबू, कि इस समय तुम स्वयं सीखचों के अंदर नहीं हो।''

पता नहीं कि यह पॉलिटिकल सेक्रेटरी की भविष्यवाणी थी या उसकी योजना। वह समय भी शीघ्र ही आ गया, जब २८ अगस्त, १९१७ को मणींद्रनाथ सेठ को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उसे कलकत्ता की प्रेसीडेंसी जेल में जघन्य अपराध किए हुए कैदियों के साथ रखा गया। उसके साथ रहनेवाले कैदियों में लुटेरे, हत्यारे, व्यभिचारी और पागल लोग भी थे। उनके साथ रहना मणींद्रनाथ के लिए स्वयं ही एक सजा थी। कहाँ वह सांस्कृतिक सुरुचि-संपन्न एक विद्वान् एवं भद्र पुरुष और कहाँ वे जघन्य अपराधी! उसे अपने भाइयों की चिंता भी सता रही थी। वह अपने छोटे भाई शचीन को जेल से नहीं छुड़ा पाया था कि वह स्वयं बंद हो गया। घर पर उसके दो भाई बिलकुल अकेले रह गए, जिनमें से एक की उम्र बारह वर्ष और दूसरे की केवल दस वर्ष थी।

इन सब चिंताओं और मानसिक यंत्रणाओं का परिणाम यह निकला कि मणींद्रनाथ में पागलपन के लक्षण दिखाई देने लगे। जब अस्पताल में उसके स्वास्थ्य का परीक्षण कराया गया तो पता चला कि उसको तो क्षयरोग भी है और वह भी काफी विकसित अवस्था में। सरकार अपने ऊपर कोई दोष नहीं लेना चाहती थी, इस कारण ४ नवंबर, १९१७ को अनिच्छापूर्वक उसको कलकत्ता में उसके एक रिश्तेदार के घर ले जाकर पटक दिया गया। उसकी हालत तो गंभीर थी ही, अत: ६ नवंबर को उसको मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में भरती कर दिया गया।

मणींद्रनाथ सेठ की बीमारी उस स्थिति तक जा पहुँची थी, जहाँ कोई इलाज संभव नहीं था। वह दिन-प्रतिदिन घुलता गया और १६ जनवरी, १९१८ को अपने छोटे भाइयों की चिंता करता हुआ इस दुनिया से चल बसा। उसकी मृत्यु तथा उसके भाइयों की बरबादी का कारण केवल शासन ही था।

□

★ डॉ. मथुरासिंह

भारत का एक क्रांतिकारी अफगानिस्तान गया तो इसलिए था कि कुछ दिन वह अंग्रेजी जासूसों की दृष्टि से ओझल रहकर शांति से दिन बिता सकेगा; पर काबुल पहुँचते ही उसे वहाँ का चीफ मेडिकल ऑफिसर बना दिया गया। क्रांतिकारी

डॉ. मथुरासिंह

का नाम डॉ. मथुरासिंह था और कुछ दिन उसने पंजाब में अपना प्राइवेट चिकित्सालय खोला था, जो खूब अच्छा चलने लगा था। सभी देशों से चिकित्सा संबंधी पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाकर उसने अपना ज्ञानवर्द्धन किया था। वही ज्ञान उसके काम आया और वह काबुल पहुँचकर चिकित्सा का सर्वोच्च अधिकारी बन बैठा।

डॉ. मथुरासिंह अफगानिस्तान नौकरी करने के इरादे से नहीं गए थे। यह ठीक है कि उन्होंने नौकरी कर ली, पर भारत की आजादी की योजनाएँ उनके दिमाग से निकलीं नहीं। उन्हीं दिनों अफगानिस्तान में भारत के महान् क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप तथा मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला पहुँच चुके थे और उन्होंने वहाँ 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' की स्थापना कर ली थी। इस सरकार ने जर्मनी की 'बर्लिन कमेटी' के सहयोग से रूस के 'जार' के पास दो सदस्यों का एक शिष्टमंडल भेजा, जिसके एक सदस्य डॉ. मथुरासिंह और दूसरे खुशी मोहम्मद थे। डॉ. मथुरासिंह कई ऊँटों पर अपना सामान लदवाकर चले और रूस के जार के लिए भारतीय क्रांतिकारियों की ओर से सोने की एक ठोस चद्दर पर खुदा हुआ पत्र ले गए।

ब्रिटिश जासूस डॉ. मथुरासिंह के पीछे पड़े हुए थे और उनकी गतिविधियों की सूचनाएँ ब्रिटिश सरकार को दे रहे थे। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी दबाव के कारण रूस के जार ने डॉ. मथुरासिंह और उनके साथी क्रांतिकारी को ताशकंद पहुँचते-पहुँचते गिरफ्तार करवा लिया। ईरान में ले जाकर शिनाख्त की गई और यह प्रमाणित हो गया कि वे भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी डॉ. मथुरासिंह ही थे। इस बात का बहुत प्रयत्न किया गया कि डॉ. मथुरासिंह को ब्रिटिश सरकार को न सौंपा जाए; पर सभी प्रयत्न निष्फल गए।

डॉ. मथुरासिंह को लाहौर पहुँचाया गया और उनपर लगे अभियोग के लिए एक विशेष ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि किन परिस्थितियों में से होकर डॉ. मथुरासिंह अफगानिस्तान पहुँचे थे। डॉ. मथुरासिंह का जन्म सन् १८८३ में जिला झेलम के अंतर्गत 'ढुढ़िचाल' नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। गाँव की पाठशाला में प्रारंभिक अध्ययन समाप्त करके मथुरासिंह

चकवाल के हाई स्कूल में पढ़ने लगे। मैट्रिक पास करके वे रावलपिंडी में 'मैसर्स जगतसिंह एंड ब्रदर्स' की फर्म में डॉक्टरी का काम सीखने लगे। काम सीखकर उन्होंने अपना दवाखाना अलग खोल लिया और वह खूब चलने लगा।

डॉक्टरी के क्षेत्र में और अधिक अध्ययन के लिए डॉ. मथुरासिंह का विचार अमेरिका जाने का हुआ; पर अर्थाभाव के कारण आपको शंघाई में ही रुक जाना पड़ा। शंघाई में डॉक्टरी द्वारा अच्छा पैसा कमाने के बाद वे कनाडा जा पहुँचे। कनाडा में उस समय गदर की लहर जोरों से चल रही थी। डॉ. मथुरासिंह भी गदर पार्टी में सम्मिलित होकर भारत आ पहुँचे। जिस समय 'कामागाटामारू' ज़हाज हुगली में खड़ा था, उस समय डॉ. मथुरासिंह का जहाज कलकत्ता पहुँच गया। सरकार की निगरानी से वे भी नहीं बच सके। एक विशेष गाड़ी में बैठाकर उन्हें पंजाब के लिए रवाना कर दिया गया।

डॉ. मथुरासिंह यह भलीभाँति जानते थे कि वे पंजाब पहुँचते ही जेल में डाल दिए जाएँगे और जिस उद्देश्य से वे चले थे, वह पूरा नहीं हो पाएगा। बीच के किसी स्टेशन से डॉ. मथुरासिंह ऐसे गायब हुए कि पुलिस उन्हें ढूँढ़ती ही रही।

कई कठिनाइयों का सामना करते हुए डॉ. मथुरासिंह स्वतंत्र रूप से पंजाब पहुँच गए और वहाँ गदर पार्टी के उन लोगों से जा मिले, जो गिरफ्तारी से बचकर गदर योजना को कार्यान्वित करने में संलग्न थे। डॉ. मथुरासिंह अच्छे बम बनाना जानते थे। उनके बनाए हुए बमों को दो बार काम में लाया गया और वे अत्यंत सफल रहे।

डॉ. मथुरासिंह बहुत भयंकर क्रांतिकारी माने जाते थे। उनपर हाथ डालने का पुलिस को साहस नहीं होता था। कभी-कभी तो जासूस लोग उनसे बातचीत करके भी चले जाते थे; लेकिन उनके आगे उनका साहस नहीं होता था। एक बार डॉ. मथुरासिंह को यह प्रलोभन भी दिया गया कि यदि वे मुखबिर बन जाएँ तो उन्हें क्षमादान के साथ भारी पुरस्कार भी दिया जा सकता है। डॉक्टर साहब जैसा क्रांतिकारी देशद्रोह का यह कार्य कैसे कर सकता था!

इधर एक देशद्रोही कृपालसिंह की नीचता के कारण गदर योजना विफल हो गई और क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ होने लगीं। कुछ दिन के लिए डॉ. मथुरासिंह ने अफगानिस्तान जाने का फैसला किया। वे चल दिए। वजीरांबाद स्टेशन पर उन्हें पकड़ लिया गया। सिपाही को कुछ चटा दिया गया तो उसने छोड़ दिया। वहाँ से कोहाट की ओर चले तो कोहाट में उनके स्वागत की बड़ी जोरदार तैयारियाँ हुईं। गुप्तचरों ने उनके पहुँचने की सूचना कोहाट पहुँचा दी। उन्हें गिरफ्तार

करने के लिए वहाँ पुलिस दल पहले ही तैनात हो गया। यह तो सचमुच ही बहुत बड़ा आश्चर्य था कि कोहाट पहुँचकर वे बिना गिरफ्तार हुए अफगानिस्तान पहुँच गए।

अफगानिस्तान की कहानी वही है कि वहाँ पहुँचकर डॉ. मथुरासिंह चीफ मेडिकल ऑफिसर बना दिए गए और शिष्टमंडल के सदस्य के रूप में गए तो रूस के जार ने उन्हें गिरफ्तार कराकर अंग्रेजों को सौंप दिया और फिर वापस पंजाब पहुँच गए।

लाहौर में विशेष ट्रिब्यूनल ने डॉ. मथुरासिंह को सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने के अपराध में मृत्युदंड सुना दिया।

मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए डॉ. मथुरासिंह जेल में बंद थे। छोटा भाई मिलने पहुँचा तो उससे पूछ बैठे कि मेरे मृत्युदंड के निर्णय से तुम दुःखी तो नहीं हो। वह बेचारा रो पड़ा। वे उसको समझाने लगे—''अरे भाई, यह तो आनंद मनाने की बात है। क्या सिख लोग देश के लिए मरनेवालों के लिए रोते हैं ? मैं तो बहुत खुश हूँ कि भारतवर्ष की आजादी को सफल बनाने के लिए, जो मुझसे हो सका, वह कर चुका हूँ। मैं बड़ी शांति के साथ फाँसी के तख्ते पर प्राण-त्याग करूँगा।''

और फिर वह दिन आ ही पहुँचा, जब फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर उन्होंने उसी हौसले का परिचय दिया, जिसकी बात उन्होंने कही थी। वह २७ मार्च, १९१७ का दिन था। डॉ. मथुरासिंह को फाँसी के तख्ते पर खड़ा किया गया और गले में फंदा डाला गया। 'वंदेमातरम्' कहते हुए वे उसपर झूल गए।

□

★ रणवीर

प्रसिद्ध उर्दू पत्रकार रणवीर (संपादक 'मलाप') भी लाहौर में अनेक वर्षों तक क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न रहे। अंग्रेजों की हत्या के आरोप में उन्हें फाँसी का दंड तक दिया गया था।

रणवीरजी लाहौर जेल में बंद थे कि उनके पिता प्रसिद्ध पत्रकार महाशय खुशहालचंद्र खुरसंद ने उनसे भेंट कर कहा—"चाहे फाँसी हो जाए, पर क्षमा न माँगना।" पिता की इस सीख को सुनकर अंग्रेज जेलर दाँतों तले उँगली दबा उठा था।

श्री रणवीरजी ने एक निर्भीक व वरिष्ठ पत्रकार के रूप में ख्याति प्राप्त की।

□

★ रवींद्रनाथ सान्याल

बंगाल की 'अनुशीलन समिति' की एक शाखा उत्तर प्रदेश के बनारस नगर में भी स्थापित की गई। ऊपरी तौर पर यह शाखा अपने सदस्यों में नैतिकता का ही प्रसार करती थी; लेकिन आंतरिक रूप से यह लोगों को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध क्रांति के लिए तैयार कर रही थी।

काली पूजा के समय वहाँ एक सफेद कुम्हड़ा (पेठा) काटने की प्रथा डाली गई। सफेद कुम्हड़ा गोरी चमड़ीवाले अंग्रेजों का प्रतीक था। उसको काटने का अर्थ था कि हम लोग जब अंग्रेजों को मार-काटकर यहाँ से भगाएँगे, तभी भारत आजाद हो सकेगा।

रासबिहारी बोस के लेफ्टिनेंट शचींद्रनाथ सान्याल ने बनारस में क्रांति के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम किया। बनारस की सैनिक छावनियों को भी क्रांति के

लिए तैयार कर लिया गया।

शचींद्रनाथ सान्याल चार भाई थे और वे चारों ही क्रांतिकारी थे। शचींद्रनाथ से छोटे भाई का नाम रवींद्रनाथ सान्याल था। रवींद्रनाथ भी अपने बड़े भाई शचींद्रनाथ के पदचिह्नों पर चलकर क्रांति के क्षेत्र में कूद पड़े। उन्होंने अपने सम वयस्क साथियों के साथ छावनियों में घूमना प्रारंभ कर दिया और सैनिकों को क्रांति के लिए उकसाने लगे। अखिल भारतीय स्तर पर क्रांति की तैयारी कर ली गई। यह देश का दुर्भाग्य था कि एक गद्दार ने पुलिस को इसकी सूचना दे दी और विस्फोट के पहले ही क्रांति का दमन कर दिया गया।

'बनारस षड्यंत्र कांड' के नाम से एक मुकदमा चला, जिसके अंतर्गत क्रांतिकारियों को लंबी-लंबी सजाएँ दी गईं। रवींद्रनाथ सान्याल ने डेढ़ वर्ष तक कच्ची जेल भुगती और इसके पश्चात् उन्हें छोड़ दिया गया। तुरंत ही उन्हें 'भारत रक्षा कानून' के अंतर्गत गिरफ्तार करके फिर जेल में डाल दिया गया और कई वर्ष उनको नजरबंद रखा गया। जेल से छूटने के बाद रवींद्रनाथ सान्याल ने जन-जागृति को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

रवींद्रनाथ से छोटे भाई जितेंद्रनाथ सान्याल ने सरदार भगतसिंह एवं चंद्रशेखर आजाद के साथ काम किया और सबसे छोटे भाई भूपेंद्रनाथ सान्याल काकोरी कांड में सम्मिलित रहे। इस प्रकार एक पूरे परिवार ने क्रांति के क्षेत्र में अपना भरपूर योगदान दिया।

□

★ राधाचरण प्रमानिक

उन दिनों बंगाल के क्रांतिकारियों में ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन) की विशेष ख्याति थी। लोग उसके दल में सम्मिलित होने के लिए लालायित रहते थे। राधाचरण प्रमानिक भी ज्योतींद्रनाथ की पार्टी में सम्मिलित होने में सफल हो गया। वह एक ब्रिटिश फर्म 'मैसर्स बर्ड एंड कंपनी' में डाली गई डकैती में भी हिस्सा ले चुका था और पुलिस को उसकी तलाश थी।

राधाचरण प्रमानिक बहुत दिन तक तो पुलिस के हाथों में पड़ने से बचता रहा; लेकिन अंततोगत्वा वह पकड़ ही लिया गया। उसपर जो मुकदमा चलाया गया, उसमें दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया। पुलिस को इससे संतोष नहीं हुआ। उसपर एक अन्य मुकदमा भी चलाया गया और इस मुकदमे के अंतर्गत

उसे सात वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया।

जेल में रहते हुए राधाचरण प्रमानिक पर अंधत्व कीं बीमारी ने आक्रमण कर दिया। उसने जेल के अधिकारियों से कई बार प्रार्थना की कि उसकी आँखों का अच्छा इलाज किया जाए; पर हर बार ही उसकी प्रार्थनाओं की उपेक्षा की गई। जेल के अधिकारियों ने तंग आकर उससे यहाँ तक कह दिया—

''तुम जैसे अपराधी का अंधा हो जाना ही अच्छा है।''

यह बात राधाचरण प्रमानिक को छू गई। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जेल में रहते हुए मैं शासन के खर्चे से अपना इलाज नहीं करवाऊँगा।

कुछ दिन पश्चात् राधाचरण प्रमानिक को खूनी पेचिश की बीमारी भी हो गई। जब उसको अस्पताल ले जाया गया तो उसने कोई भी दवा लेने से इनकार कर दिया; क्योंकि वह दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसकी हालत बिगड़ती गई और आखिर वह फरवरी सन् १९१७ में इस दुनिया से कूच कर गया।

□
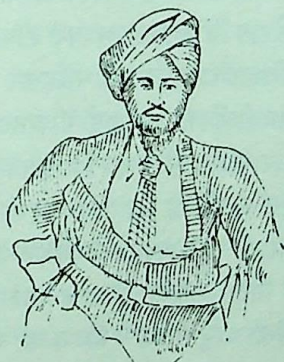
★ भाई रामसिंह

एक जूता कागज में लपेटकर गदर पार्टी के एक सदस्य पं. रामचंद्र ने गदर पार्टी के ही दूसरे सदस्य भाई रामसिंह को देते हुए कहा—

भाई रामसिंह

''इसे भारत ले जाकर अमुक व्यक्ति को दे दो। इस जूते के तले में एक कागज छिपा दिया गया है, जिसमें एक बहुत महत्त्वपूर्ण संदेश है, जिसके अनुसार भारत के विप्लवी कार्य करेंगे। आपके अतिरिक्त और किसीको यह दिया नहीं जा सकता।''

भाई रामसिंह अमेरिका की गदर पार्टी के एक समर्पित नेता थे और भारत की आजादी के कार्य के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। अपने ही खर्च से वे सानफ्रांसिस्को से भारत के लिए रवाना हो गए। सोचा कि मनीला के लोगों में भी क्रांति की लहर फैला दी जाए, वे वहाँ उतर पड़े और अपने कुछ पुराने

साथियों से मिले।

जूतेवाली बात चली तो साथी लोग चौंके। उन्होंने पं. रामचंद्र के असली रूप को उजागर करते हुए भाई रामसिंह से कहा कि रामचंद्र इस प्रकार के चमत्कार दिखाने का आदी है और वह अपने मतलब के लिए दूसरों को मूर्ख बनाने की कला अच्छी तरह से जानता है। जूते का तला खोला गया तो उसमें छपे हुए एक अखबार के टुकड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकला। भाई रामसिंह को उसकी धूर्तता का प्रमाण मिल गया। भारत न जाकर चीन व जापान होते हुए अमेरिका वापस जा पहुँचे। पं. रामचंद्र की पोल खुल गई और वह सोचने लगा कि गदर पार्टी के संगठन से भाई रामसिंह को कैसे हटाया जाए।

भाई रामसिंह जिला जालंधर के 'तुलेताँ' गाँव के रहनेवाले थे। उनके पिता श्री जीवनसिंह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। रामसिंह अपनी छोटी-सी उम्र में ही सन् १९०७ में कनाडा के वैंकोवर नगर पहुँच गए और वहाँ पहुँचकर व्यापार करने लगे। व्यापार से उन्होंने बहुत धन कमाया और प्रवासी भारतीयों में वे सबसे अधिक धनवान व्यक्ति माने जाने लगे। उनके पास धन भी था और मन भी था। कार्य, चाहे धार्मिक हो या सामाजिक, वे जी खोलकर पैसा देते थे। जब गदर की लहर चली तो आप राष्ट्रीय कार्यों के लिए भी काफी पैसा देने लगे। केवल पैसा ही नहीं, आप राष्ट्रीय कार्यों के लिए समर्पित हो गए।

कनाडा में जब इमीग्रेशन विभागवाले भारतीयों को तंग करने लगे तो भाई रामसिंह भी खुलकर अखाड़े में उतर आए। इमीग्रेशन विभाग का अध्यक्ष हॉपकिंसन इस मामले में जल्लाद व्यक्ति था। उसने एक सिख बेलासिंह को फोड़कर अपनी ओर मिला लिया और उसके माध्यम से अन्य भारतीयों की सूचनाएँ भी प्राप्त करने लगा तथा उन्हें तंग करने लगा। लोगों ने भाई रामसिंह से कहा कि इसका कुछ इलाज तो होना ही चाहिए। एक दिन सुना गया कि बेलासिंह का एक आदमी गायब हो गया है। लोगों को उसके विषय में कुछ पता ही नहीं चला। बेलासिंह के एक दूसरे आदमी अर्जुनसिंह को भाई रामसिंह ने गोली मारकर समाप्त कर दिया। मुकदमे में वे इस आधार पर बरी हो गए कि हमला अर्जुनसिंह ने किया था, मैंने तो आत्मरक्षा में गोली चलाई थी।

बेलासिंह ने इसका बदला दूसरी प्रकार से लिया। उसने एक दिन गुरुद्वारे में भाई भागसिंह और भाई वतनसिंह को गोलियों से उड़ा दिया। उसे हॉपकिंसन ने बचा लिया। हॉपकिंसन को एक दूसरे देशभक्त सरदार सेवासिंह ने भरी अदालत में गोली से उड़ा दिया।

गदर पार्टी के कार्य से भाई रामसिंह अमेरिका के सानफ्रांसिस्को नगर गए

तो वहाँ के लोगों ने भाई रामसिंह को आने नहीं दिया। वे अमेरिका में ही बस गए। गदर पार्टी के दफ्तर 'युगांतर आश्रम' का काफी काम भाई रामसिंह सँभालने लगे। वहाँ गदर पार्टी के एक अन्य प्रभावशाली सदस्य पं. रामचंद्र थे, जो अपने आगे किसीकी नहीं चलने देते थे।

जब गदर पार्टी के बहुत से लोग गदर आंदोलन में भाग लेने के लिए भारत चले गए तो एक प्रकार से पं. रामचंद्र ने गदर पार्टी की संपत्ति पर अपना अधिकार कर लिया। भाई रामसिंह ने अपने साथी पं. रामचंद्र को बहुत समझाया; पर वह एक नहीं माना। भाई रामसिंह को अपने रास्ते से हटाने के लिए ही उसने वह चाल चली थी कि एक जूते के अंदर संदेशवाली बात कहकर उन्हें भारत भेज दिया गया था। वह जानता था कि भारत पहुँचकर वे गदर में भाग लेंगे और फाँसी के फंदे पर लटका दिए जाएँगे। यह तो अच्छा हुआ कि मनीला में भाई रामसिंह के कुछ अच्छे मित्र मिल गए और उन्होंने पं. रामचंद्र के विषय में सबकुछ बता दिया।

जब भाई रामसिंह भारत न जाकर अमेरिका लौट गए तो पं. रामचंद्र उन्हें और अधिक तंग करने लगा। भाई रामसिंह ने एक समानांतर संगठन खड़ा करके युगांतर आश्रम के प्रेस और अन्य संपत्ति देने के लिए कहा। ज्यादातर लोग भाई रामसिंह के साथ थे। दी हुई अवधि समाप्त होने पर भाई रामसिंह ने पुलिस बुलवा ली। भाई रामसिंह ने जब पुलिसवालों को सही स्थिति बताई तो उन्होंने स्वयं भाई रामसिंह को प्रेस पर अधिकार दिला दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध चल ही रहा था। अब अमेरिका भी उसमें कूद पड़ा। वह ब्रिटेन के पक्ष में था। अब वह कैसे सहन कर सकता था कि भारतीय और जर्मन लोग ब्रिटेन के विरुद्ध कार्य करें। उसने कुछ जर्मन अधिकारियों को भी गिरफ्तार कर लिया और गदर पार्टी के लोगों को भी। पं. रामचंद्र व भाई रामसिंह दोनों ही गिरफ्तार हो गए और एक ही जेल में इन्हें रखा गया। उधर बाहर दोनों के समर्थकों के बीच अखबारों के माध्यम से युद्ध चल रहा था।

जेल में भी भाई रामसिंह ने पं. रामचंद्र को बहुत समझाया कि हमारे आपसी विवाद से भारत की बदनामी हो रही है और अमेरिकावालों को हँसने का अवसर मिल रहा है। पं. रामचंद्र ने भाई रामसिंह को दो-टूक उत्तर दे दिया कि मैं तुम्हारी कोई बात मानने के लिए तैयार नहीं हूँ और हम लोगों में किसी भी प्रकार का समझौता संभव नहीं है।

अदालत में मुकदमा चल ही रहा था। सेशन जज महोदय मध्यांतर के समय भोजनकक्ष में चले गए। अन्य लोग भी बाहर जाने लगे। इसी समय 'धाँय! धाँय!' करके दो गोलियाँ चलीं और पं. रामचंद्र का शरीर भूमि पर लुढ़क गया। गोलियाँ

भाई रामसिंह ने चलाई थीं। गोलियाँ चलाकर उन्होंने अपना हाथ नीचे कर लिया। किसी अन्य व्यक्ति को मारने का उनका कोई इरादा नहीं था। गोलियाँ चलाकर जैसे ही उन्होंने अपना हाथ नीचे किया, अदालत में उपस्थित सशस्त्र सारजेंट ने अकारण ही भाई रामसिंह को निशाना बनाकर तीन गोलियाँ दाग दीं। तत्काल ही उनकी मृत्यु हो गई। लोगों का मत था कि गदर पार्टी के हित में ही भाई रामसिंह ने पं. रामचंद्र को मारा था; पर सारजेंट द्वारा उनपर गोली चलाना तो किसी प्रकार भी न्यायोचित नहीं था।

अमेरिकन सरकार का काम हलका हो गया। गदर पार्टी के इन दो प्रभावशाली नेताओं के हट जाने के बाद अन्य के विरुद्ध निर्णय देने में कोई कठिनाई नहीं हुई। एक सौ छप्पन दिन के पश्चात् १ मई, १९१८ को अदालत ने निर्णय दे दिया। बत्तीस अपराधियों को विभिन्न अवधि की सजाएँ सुना दी गईं, जिसमें कुछ बड़े-बड़े जर्मन अफसर भी थे।

गदर पार्टी का काम लगभग बंद हो गया।

□

★ बाबू रामावतार

मुरादाबाद जिले की हसनपुर तहसील के ग्राम 'उझारी' के रामावतार अग्रवाल ने भी अपने अनेक कारनामों द्वारा स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े। उन्होंने पोस्टमैन से डाक छीनकर उसे जला दिया था, बम बनाए तथा अन्य अनेक साहसिक कार्यों से सरकार को हिला दिया था।

उन्होंने कई-कई दिन जंगल में ढाक के वृक्षों में छिपकर योजनाएँ बनाईं। अंग्रेजों ने उनके घर की कुर्की कर पराँठे तक जब्त कर लिये थे।

□

★ रासबिहारी बोस

''मैं तुमसे बहुत तंग आ गया हूँ, रासू! तुम बताओ तो कि आखिर तुम करना क्या चाहते हो?''

''पिताजी! आपको मेरे लिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो

आपको चिंतामुक्त करने की दिशा में ही प्रयत्न कर रहा हूँ।''

''तुम दो बार घर से भागकर हम लोगों को गहन चिंता में डाल चुके हो। तुम्हारा भागने का यह क्रम कब तक चलेगा?''

''तब तक, जब तक कि मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता। मैं ब्रिटिश फौज में भरती होने के लिए ही तो घर से भागा था; पर यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं वहाँ नौकरी न पा सका।''

रासबिहारी बोस

''मैं यह जानना चाहता हूँ, रासू, कि तुम फौज की नौकरी के पीछे क्यों पड़े हो? क्या तुम्हें दूसरी नौकरियाँ या दूसरे धंधे नहीं मिल सकते?''

''पिताजी! आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं सही-सही दूँ या आपके समाधान के लिए गलत उत्तर दूँ?''

''तो क्या तुम गलत उत्तर देकर अपने पिता को धोखा भी देना चाहते हो?''

''यही तो मैं नहीं चाहता, पिताजी! पर सत्य हमेशा कटु होता है। क्या आप कटु सत्य सुनना पसंद करेंगे?''

''मैं केवल सत्य ही सुनना चाहता हूँ, वह कैसा भी क्यों न हो!''

''तो सुनिए पिताजी! मैं ब्रिटिश फौज में इसलिए भरती होना चाहता हूँ कि मुझे ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेना है। यदि भारी संख्या में हम नौजवान आधुनिक युद्ध कला सीख जाएँ तो हम भारत माता की आजादी की दिशा में कुछ कर सकते हैं।''

''तो यह है तुम्हारा चिंतन! क्या तुमने अपना भविष्य भी सोचा है? तुम्हारे जैसे मुट्ठी-भर सिरफिरे इतने विशाल और दृढ़ साम्राज्य को उखाड़ेंगे तो क्या, उसे हिला भी नहीं सकते।''

''यदि सभी का यही चिंतन हो जाए, पिताजी, तो भारत हमेशा पराधीनता की बेड़ियों में ही जकड़ा रहे। किसी-न-किसीको तो यत्न करना ही पड़ेगा। रही बात परिणाम की, तो वह अच्छा होगा ही। अच्छा परिणाम हमेशा बलिदान चाहता है।''

''तो क्या तुम्हारा यही आखिरी फैसला है कि तुम अपने परिवार को दुःखी ही रखोगे?''

''दुःखी भारत को सुखी करने के लिए यदि कुछ परिवारों को दुःख भी

झेलने पड़ें तो कोई हानि नहीं। एक के अस्तित्व की सार्थकता अनेक के हित के लिए है।''

''ठीक है, जो रास्ता तुम अपने लिए चुनना चाहो, चुनो। पिता के नाते मैं तो हमेशा ही तुम्हारे मंगल की कामना करता रहूँगा।''

अपने पिता का यह आश्वासन पाकर वह युवक रासबिहारी बोस किसी काम की तलाश में फिर घर से निकल गया। शिमला के एक छापेखाने में उसे नौकरी मिली भी; पर शीघ्र ही मालिकों से झगड़ा हो जाने के कारण उसे वह नौकरी छोड़नी पड़ी। आखिर देहरादून में उसे एक ऐसी नौकरी मिल गई, जहाँ उसका मन लग गया। वह सन् १९०६ में देहरादून पहुँचा और बहुत समय तक वह नगर ही उसके क्रियाकलापों का केंद्र रहा।

देहरादून के वन विभाग के शोध संस्थान में सरदार पूरनसिंह रसायन विभाग के प्रभारी थे। उन्हींके सहायक के रूप में रासबिहारी बोस ने काम करना पसंद किया था। वह पेट भरने के लिए नौकरी नहीं कर रहा था। नौकरी के पीछे उसका एक महत् उद्देश्य था, जिसकी पूर्ति की दिशा में ही वह निरंतर बढ़ता जा रहा था। शोध संस्थान के रसायन विभाग में काम करने से उसे ऐसे रासायनिक पदार्थ मिल सकते थे, जिनका उपयोग वह बम निर्माण में कर सकता था। देहरादून में रहने के लिए रासबिहारी बोस ने 'टैगोर विला' नाम का स्थान पसंद किया था। यह स्थान बिलकुल एकांत में था और इसमें बहुत बड़ा बगीचा एवं कई भवन थे। अपने रहने के स्थान पर एक प्रकोष्ठ में रासबिहारी बोस ने बम निर्माण का कार्य प्रारंभ कर दिया। चंद्रनगर में रहकर बम निर्माण का प्रशिक्षण वह ले चुका था। रासबिहारी बोस का उन युवकों से संपर्क हो गया, जो क्रांतिकारी विचारों के थे। एक प्रकार से टैगोर विला का रासबिहारी आवास क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया था। जो क्रांतिकारी वहाँ रासबिहारी बोस के साथ काम करते थे उनमें अतुल घोष, हरिपद बोस और शैलेंद्र बनर्जी प्रमुख थे।

एक दिन देहरादून में एक बंगाली परिवार में शादी हुई, जिसमें रासबिहारी बोस आमंत्रित हुए। बारात सहारनपुर से आई थी। दूल्हे के मामा जितेंद्र मोहन चटर्जी से रासबिहारी बोस का परिचय हुआ। दो दिन के अंदर ही यह परिचय प्रगाढ़ मित्रता में परिणत हो गया। एक-दूसरे के क्रांतिकारी विचारों से परिचित होने में किसीको देर नहीं लगी। जितेंद्र मोहन चटर्जी अपने समय के एक बड़े क्रांतिकारी थे। वे सहारनपुर में एक क्रांतिकारी समिति के संगठक थे। पंजाब के क्रांतिकारियों से भी उनके संबंध थे। यह कहना चाहिए कि पंजाब के क्रांतिकारियों से संबंध स्थापित करनेवाले पहले व्यक्ति जितेंद्र मोहन चटर्जी ही थे। लाहौर के लालचंद

फलक, सूफी अंबाप्रसाद, सरदार अजीतसिंह और सरदार किशनसिंह (सरदार भगतसिंह के पिता) से जितेंद्र मोहन चटर्जी के घनिष्ठ संबंध थे। बाद में, प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल से भी जितेंद्र मोहन चटर्जी के घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गए। जितेंद्र मोहन चटर्जी जब बैरिस्टरी पढ़ने इंग्लैंड चले गए तो रासबिहारी बोस ने पंजाब को क्रांति का क्षेत्र बनाकर कार्य को और आगे बढ़ाया। उत्तर प्रदेश के क्रांतिकारियों से भी रासबिहारी बोस के संबंध स्थापित हो गए। उस समय उत्तर प्रदेश में बनारस नगर क्रांतिकारियों का गढ़ था।

जिन दिनों रासबिहारी बोस देहरादून में रह रहे थे, उनका परिवार फ्रांसीसियों द्वारा अधिकृत चंद्रनगर में रह रहा था। रासबिहारी बोस को अपनी माताजी की गंभीर बीमारी का समाचार मिला। वे चंद्रनगर जा पहुँचे। यह घटना सन् १९११ के प्रारंभ की है। उनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया और कुछ समय तक उन्हें वहीं रहना पड़ा। चंद्रनगर उस समय क्रांतिकारियों का गढ़ था। बंगाल के कई क्रांतिकारी पुलिस का दबाव पड़ने पर चंद्रनगर जा पहुँचे थे। चंद्रनगर में बम बनाने के कई कारखाने और भंडारगृह थे। आवश्यकता पड़ने पर भारतीय क्रांतिकारी चंद्रनगर से ही बम और अन्य हथियार मँगाते थे।

चंद्रनगर में प्रसिद्ध क्रांतिकारी शिरीषचंद्र घोष से रासबिहारी बोस का परिचय था। शिरीषचंद्र के द्वारा उनका परिचय चंद्रनगर के क्रांतिकारी दल के नेता मोहनलाल राय से हो गया। एक दिन ये लोग बैठे हुए आपस में चर्चा कर रहे थे। 'गीता' में प्रतिपादित आत्मसमर्पित भाव पर विशेष रूप से चर्चा छिड़ गई। अचानक ही भावावेश में आकर रासबिहारी बोस कह उठे—

''मुझे प्रेरणा मिली है कि मैं 'गीता' के संदेश को जीवन में उतारूँ। आज से मेरा जीवन देश के लिए समर्पित जीवन रहेगा। अब मुझे अपनी हथेली पर सिर रखकर कार्य करते रहना होगा।''

अपने चंद्रनगर प्रवास में ही रासबिहारी बोस को यह प्रेरणा मिली कि भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज को अच्छा सबक सिखाना चाहिए, जो दिल्ली में दरबार का आयोजन करने वाले थे।

रासबिहारी बोस अपनी नौकरी से जितने दिन का अवकाश लेकर आए थे, वह अवधि समाप्त हो चुकी थी। वे मन में कई संकल्प और योजनाएँ लेकर देहरादून जा पहुँचे।

छुट्टी समाप्त हो जाने के पश्चात् रासबिहारी बोस अपनी नौकरी पर उपस्थित तो हो गए, पर उनका मन नहीं लग रहा था। उनके मन में वे ही विचार उठ रहे थे कि दिल्ली में लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर किस प्रकार बम प्रहार किया जाए। इस बार

वे अपने साथ चंद्रनगर से वसंतकुमार विश्वास नाम के एक नौजवान को लेते आए थे। वसंतकुमार विश्वास बम बनाने और चलाने की कला में निपुण था। देहरादून में रासबिहारी बोस ने वसंतकुमार का उपयोग अपने रसोइए और घरेलू नौकर के रूप में किया। वसंतकुमार किस प्रकार का खाना बनाता है, इसका परिचय देने के लिए कभी-कभी वे अपने मित्रों और अफसरों को भोजन के लिए आमंत्रित भी करने लगे। कुछ दिन यह चलता रहा। आखिर एक दिन उन्होंने घोषित कर दिया कि उनका नौकर वसंतकुमार विश्वास नौकरी छोड़कर भाग गया है।

सही बात तो यह थी कि वाइसराय पर बम प्रहार की योजना को कार्यान्वित करने के लिए रासबिहारी बोस ने स्वयं ही वसंतकुमार विश्वास को लाहौर भेज दिया था। लाहौर में क्रांतिकारी भाई बालमुकुंद के प्रयत्नों से वसंतकुमार विश्वास को एक दवाखाने में कंपाउंडर की नौकरी मिल गई। वसंतकुमार विश्वास वहाँ नौकरी भी करता रहा और वहाँ के क्रांतिकारियों से उन सारी स्थितियों की जानकारी प्राप्त करता रहा, जिनके अंतर्गत उसे दिल्ली में वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर बम फेंकना था। रासबिहारी बोस ने स्वयं लाहौर पहुँचकर बम प्रहार की योजना को अंतिम रूप प्रदान किया। उनकी इस योजना में लाहौर के क्रांतिकारी भाई बालमुकुंद, अवधबिहारी और दीनानाथ सम्मिलित थे। लाहौर से रासबिहारी एक बार फिर चंद्रनगर गए और वहाँ से कुछ बम लाहौर तथा दिल्ली भिजवाए। उसके बाद वे देहरादून पहुँच गए। वहाँ उन्होंने घोषित किया कि वे अपने भागे हुए नौकर वसंतकुमार विश्वास को खोजने गए थे।

योजना के अनुसार वसंतकुमार विश्वास २१ दिसंबर, १९१२ को लाहौर से दिल्ली पहुँच गया और उसे वहाँ के क्रांतिकारी अमीरचंद के घर ठहराया गया। अवधबिहारी भी पहुँच गए। इधर रासबिहारी बोस भी २२ दिसंबर को देहरादून से दिल्ली जा पहुँचे। वे सारी योजना को अपनी देखरेख में कार्यान्वित करना चाहते थे। सभी संबंधित क्रांतिकारियों से मिलकर उन्होंने बम प्रहार की पूरी तैयारी कर डाली।

२३ दिसंबर, १९१२ को दिल्ली में बहुत शान-शौकत और धूमधाम के साथ भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज महोदय की सवारी निकली। कलकत्ता के स्थान पर उन्होंने दिल्ली को भारत की राजधानी के रूप में चुना था, इसीलिए वहाँ वे इतनी धूमधाम के साथ प्रवेश करना चाहते थे। भारतवर्ष के सभी राजे-महाराजे एवं राजकुमार आदि उस समारोह में सम्मिलित हुए थे और वे जुलूस की शोभा बढ़ा रहे थे। इस समारोह को देखने के लिए आसपास के नगरों एवं गाँवों से लाखों लोग दिल्ली पहुँचे थे और सड़कों, मकानों की छतों तथा खिड़कियों एवं गवाक्षों में से

अपार जनसमूह जुलूस को देख रहा था।

शाही जुलूस में सबसे आगे सुसज्जित सैनिकों का भव्य बैंड बजता चल रहा था। बैंड के पीछे बंदूकधारी पैदल सिपाहियों का दल और उसके पीछे सशस्त्र घुड़सवारों का दल था। घुड़सवारों के पीछे एक सजा हुआ विशालकाय हाथी चल रहा था, जिसपर वाइसराय महोदय आसीन थे। हाथी पर सबसे आगे महावत था, जो हाथी को चला रहा था। महावत के पीछे वाइसराय के अंगरक्षक के रूप में कर्नल मैक्सवेल हौदे के बाहर बैठे थे। हौदे के अंदर आगे वाइसराय महोदय की पत्नी आसीन थीं और उनके पीछे स्वयं वाइसराय महोदय। हौदे के पीछे बलरामपुर का रहनेवाला जमादार महावीरसिंह था, जो वाइसराय महोदय पर छाता ताने हुए बैठा था।

ज्यों ही यह जुलूस चाँदनी चौक के मध्य में घंटाघर से कुछ आगे पंजाब नेशनल बैंक की इमारत के ठीक सामने पहुँचा, अचानक ही चमक के साथ भयंकर विस्फोट की ध्वनि सुनाई दी। पास की इमारत के ऊपर से एक बम का प्रहार वाइसराय महोदय पर किया गया था और वह ध्वनि बम विस्फोट की ही थी। जुलूस अचानक रुक गया और कुछ पल तो लोगों की समझ में ही नहीं आया कि क्या हुआ। पर जब जमादार को हाथी से नीचे लटकते देखा गया तो लोगों को भान हुआ जैसे वह बम प्रहार के कारण निर्जीव होकर लटक गया है। यह वाइसराय का सौभाग्य था कि बम ठीक उनके ऊपर नहीं गिरा। वह हौदे के बाहर जमादार के सामने गिरा था। हौदे का पिछला भाग बम प्रहार के कारण उड़ गया। उसकी एक खपच्ची से वाइसराय की पीठ में चार इंच लंबा घाव हो गया और उनके कंधे की हड्डी कुछ बाहर निकल आई। छोटे-मोटे और कई घाव वाइसराय की पीठ में हुए। आगे के व्यक्ति, अर्थात् श्रीमती हॉर्डिंग्ज, कर्नल मैक्सवेल और महावत साफ बच गए; पर भयंकर विस्फोट के कारण कुछ समय के लिए वे बहरे हो गए। वाइसराय ने अपने आपको सँभालने का प्रयत्न किया; पर मूर्च्छित होकर वे भी हौदे के अंदर लुढ़क गए। हाथी को रोककर वाइसराय महोदय को नीचे उतारा गया और पुलिस ने तत्परता से नाकाबंदी प्रारंभ कर दी। इस विस्फोट के कारण चीख-पुकार मच गई और अपनी सुरक्षा के लिए लोग इधर-उधर भागने लगे। मकानों की छतों पर से भी स्त्री-पुरुष उतर-उतरकर इधर-उधर भागने लगे।

वाइसराय महोदय पर बम का प्रहार किया था वसंतकुमार विश्वास ने। वसंतकुमार विश्वास छरहरे बदन, छोटे कद और गोरे रंग का खूबसूरत नौजवान था; जो एक लड़की के रूप में अलंकृत होकर पंजाब नेशनल बैंक की इमारत पर से अन्य महिलाओं के साथ जुलूस देख रहा था। वह महिलाओं की पंक्ति के पीछे बैठा था और इसी कारण उसे बम फेंकने में सुविधा हुई। बम सिगरेट के डिब्बे के

अंदर बनाया गया था और छोटे आकार का होने के कारण उसे साड़ी के अंदर छिपाने में वसंतकुमार विश्वास को कोई असुविधा नहीं हुई। मकान के नीचे गली के पास से एक सेठ के लिबास में रासबिहारी बोस भी जुलूस देखने का अभिनय कर रहे थे। बम विस्फोट के पश्चात् महिला वेशधारी वसंतकुमार विश्वास नीचे उतरे और अपने अभिभावक सेठ के साथ गली में विलीन हो गए।

यद्यपि रासबिहारी बोस वाइसराय को समाप्त करने के अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए, पर बम विस्फोट ने देश-विदेश में तहलका मचा दिया। ब्रिटिश शासन को आतंकित करने और उसकी नीतियों में परिवर्तन लाने के उद्देश्य की दृष्टि से बम विस्फोट अत्यंत सफल रहा।

बम विस्फोट के पश्चात् रासबिहारी बोस तत्काल देहरादून चले गए और वसंतकुमार विश्वास ने लाहौर का रास्ता पकड़ा। पुलिस किसी अधिकृत अपराधी को नहीं पकड़ सकी। अपराधी को पकड़ने के लिए पुलिस ने एक लाख रुपए से अधिक के पुरस्कार घोषित किए। वाइसराय महोदय की खैरख्वाही में राजा-महाराजाओं ने अलग से पुरस्कारों की घोषणाएँ कीं।

देहरादून पहुँचकर रासबिहारी बोस ने वन विभाग के शोध संस्थान में एक सभा का आयोजन किया और इस सभा में उन्होंने वाइसराय महोदय पर किए गए बम प्रहार की भर्त्सना की। नगर में भी उन्होंने इस प्रकार की सभाओं का आयोजन कराया और वाइसराय पर किए गए घातक हमले की निंदा करते हुए उनके शीघ्र स्वस्थ होने की कामना की। इस प्रकार के आयोजनों के समाचार जब फैले तो पंजाब और उत्तर प्रदेश पुलिस क्षेत्रों में रासबिहारी बोस बहुत राजभक्त व्यक्ति माने जाने लगे। देहरादून की पुलिस भी उनका बहुत सम्मान करने लगी।

हुआ यह कि दिल्ली में बम प्रहार द्वारा घायल होने के पश्चात् वाइसराय महोदय अपने इलाज के लिए देहरादून ही पहुँचे। एक बार जब वे कार में बैठकर अपने निवास-स्थान की ओर जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति फुटपाथ पर खड़ा हुआ झुक-झुककर उन्हें सलाम कर रहा है। वाइसराय के साथ बैठे हुए कलेक्टर ने उन्हें रासबिहारी बोस का परिचय देते हुए कहा कि बहुत राजभक्त व्यक्ति है। इसने कई सभाओं में आपके ऊपर किए गए हमले की निंदा की है तथा आपके शीघ्र स्वस्थ होने की ईश्वर से प्रार्थना की है। यह वृत्तांत सुनकर वाइसराय महोदय बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें क्या पता था कि जिस व्यक्ति का वे आभार मान रहे हैं, वही उनकी जान लेने के नाटक का सूत्रधार है।

देहरादून में खामोशी के साथ बैठे रहना रासबिहारी को अच्छा नहीं लगा। अवसर मिलते ही कुछ दिन बाद वे लाहौर का एक चक्कर लगा आए और एक नए

बम कांड की संरचना का मंत्र अपने साथियों को दे आए।

लाहौर का कमिश्नर लॉरेंस गार्डन बहुत कुख्यात अफसर था। वह अपनी क्रूरता और दमन नीति के लिए बंगाल में बहुत बदनाम हो चुका था। उसके आदेश से ही जगतसी आश्रम पर अत्याचार किए गए थे और उसे बरबाद किया गया था। सिलहट के मौलवी बाजार में बंगाल के क्रांतिकारियों ने बम प्रहार द्वारा लॉरेंस गार्डन की हत्या का प्रयत्न भी किया था; पर वह बाल-बाल बच गया था। अब, जब वह स्थानांतरित होकर लाहौर पहुँच गया तो रासबिहारी बोस के नेतृत्व में पंजाब के क्रांतिकारियों ने उसका शिकार करना चाहा। देहरादून पहुँचकर भी रासबिहारी बोस सांकेतिक भाषा में पत्र लिखकर लॉरेंस गार्डन के ऊपर बम फेंकने के निर्देश देते रहे। बम प्रहार का काम अवधबिहारी के नेतृत्व में वसंतकुमार विश्वास को ही करना था।

१७ मई, १९१३ को लाहौर के मांटगुमरी भवन में लॉरेंस गार्डन के सम्मान में एक जलसा हो रहा था, जिसमें कई अंग्रेज और देशी अफसर सम्मिलित हुए थे। क्रांतिकारियों ने मुख्य फाटक के पास बम को एक डोरी से बाँधकर इस प्रकार छिपा रखा था कि जैसे ही लॉरेंस गार्डन बाहर निकले, डोरी को झटके के साथ खींच लिया जाए और वह गड्ढे के अंदर पत्थर से टकराकर फूट जाए। क्लब भवन के अंदर समारोह समाप्त हुआ और लॉरेंस गार्डन बाहर निकलने ही वाला था कि उसके पहले एक चपरासी उस ओर निकला, जिधर डोरी पड़ी हुई थी। उसका पैर डोरी में उलझ गया और वह खिंच गई। डोरी के खिंचते ही भयंकर गर्जना के साथ बम का विस्फोट हो गया। चपरासी के दोनों पैर उड़ गए और उसके शरीर में स्थान-स्थान पर कीलें चुभ गईं। पास में ही बिजली का एक खंभा था, उसके भी टुकड़े-टुकड़े हो गए। यहाँ भी साहब बच गया और चपरासी की जान चली गई।

बहुत प्रयत्न करने पर भी पुलिस अपराधी का पता नहीं लगा सकी। बम के अवशेषों को रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया। रासायनिक जाँच के द्वारा यह सिद्ध हो गया कि दिल्ली एवं लाहौर में फोड़े गए बम बिलकुल एक ही प्रकार के थे और बंगाल में जिन बमों का विस्फोट हुआ था, वे भी इसी प्रकार के थे। पुलिस इस नतीजे पर तो पहुँच गई कि कोई एक ऐसा गिरोह है जो बंगाल, उत्तर प्रदेश और पंजाब में समान रूप से सक्रिय है।

लाहौर बम कांड के पश्चात् रासबिहारी बोस यद्यपि देहरादून लौट गए, पर वे निष्क्रिय नहीं रहे। 'लिबर्टी' शीर्षक से उन्होंने कुछ परचे छपवाए और संपूर्ण भारतवर्ष में उनका वितरण कराया। ये परचे छपवाने और उनका वितरण कराने के पीछे उनका उद्देश्य था कि सार्वजनिक रूप से लोगों के मन में ब्रिटिश शासन के

प्रति घृणा उत्पन्न हो और अवसर मिलने पर वे उसे उखाड़ने के यत्न करें। सरकार का ध्यान अब दिल्ली और लाहौर के बम कांड के अपराधियों की ओर से हटकर विद्रोही साहित्य की ओर गया। स्थान-स्थान पर छापे मारे जाने लगे और तलाशियाँ होने लगीं। किसी अंत:प्रेरणा के फलस्वरूप रासबिहारी बोस देहरादून की अपनी नौकरी से बीमारी का बहाना बनाकर, लंबी छुट्टी लेकर चंद्रनगर जा पहुँचे।

चंद्रनगर के क्रांतिकारियों से रासबिहारी बोस का परिचय पहले ही था। इसी समय बनारस के क्रांतिकारी दल के नेता शचींद्रनाथ सान्याल भी चंद्रनगर जा पहुँचे। संयोग से बंगाल के क्रांतिकारी दल के एक बहुत सुयोग्य नेता ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी भी उस समय चंद्रनगर में ही थे। इन तीन बड़े क्रांतिकारियों के मिलन ने क्रांतिकारी आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की। यह निश्चय किया गया कि सन् १८५७ के स्वाधीनता प्रयत्न जैसा ही व्यवस्थित रूप से एक नया प्रयत्न फिर से किया जाए। ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी को बंगाल में विप्लव का आयोजन कराने के अलावा यह कार्य भी दिया गया कि वे जर्मनी से साँठ-गाँठ करके भारी मात्रा में वहाँ से हथियार प्राप्त करें। शचींद्रनाथ सान्याल को दायित्व दिया गया कि उत्तर प्रदेश की अंग्रेजी छावनियों में फौजियों को विप्लव के लिए तैयार करें। रासबिहारी बोस ने पंजाब में यह काम करने का दायित्व स्वयं लिया।

रासबिहारी बोस अभी चंद्रनगर में ही थे कि एक दुर्घटना हो गई। अपने क्रांतिकारी साथी शिरीषचंद्र घोष के साथ वे कुछ हथियारों का निरीक्षण कर रहे थे कि गलती से उनके हाथ से एक भरे हुए रिवॉल्वर का घोड़ा दब गया और उनके बाएँ हाथ की बीच की उँगली का अग्र भाग बुरी तरह से जख्मी हो गया। उनकी पहचान के लिए वह एक निशान हो गया।

ब्रिटिश हुकूमत आपत्तिजनक साहित्य और अपरा[illegible] की खोज कर रही थी। इसी क्रम में १९ फरवरी, १९१४ को अवधबिहारी, अमीरचंद, अमीरचंद का भतीजा दीनानाथ और भाई बालमुकुंद गिरफ्तार हो गए। उनके पास आपत्तिजनक साहित्य भी पाया गया और कुछ हथियार भी। वसंतकुमार विश्वास बंगाल के नदिया जिले में अपने गाँव 'परागाचा' चला गया था। वह वहाँ से गिरफ्तार कर लिया गया। स्पष्ट रूप से रासबिहारी बोस के लिए खतरे की घंटियाँ बज चुकी थीं। ब्रिटिश हुकूमत भी अब बुद्धू बनने वाली नहीं थी। उसने रासबिहारी बोस की गिरफ्तारी के लिए वारंट निकाल दिया और भारी इनाम घोषित किया। रासबिहारी बोस भी बुद्धू नहीं थे, जो नौकरी पर उपस्थित होने के लिए देहरादून जाते। गिरफ्तारियों का पता उन्हें समाचार-पत्रों से लग ही रहा था। उन्होंने अपने पिता को एक मार्मिक पत्र लिखा और भूमिगत होकर कार्य करने लगे।

रासबिहारी बोस का विप्लव-उर्वर मस्तिष्क निष्क्रिय रहनेवाला नहीं था। उसमें भविष्य की योजनाओं ने स्वरूप ग्रहण कर लिया। सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम जैसा ही एक और संग्राम लड़ने की उनकी इच्छा बलवती हो उठी। वे बनारस पहुँच गए और वहाँ के क्रांतिकारियों से मिलकर अपनी योजना को कार्यान्वित करने का भरसक यत्न करने लगे। पुलिस बहुत तत्परता से रासबिहारी बोस की खोज कर रही थी और रासबिहारी बोस बहुत चतुराई से पुलिस को चकमा दे रहे थे। वे लगभग एक वर्ष तक बनारस में रहकर, क्रांति सूत्रों को जोड़कर विप्लव की अपनी योजना को आगे बढ़ाते रहे; पर पुलिस उनकी छाया तक नहीं छू सकी। वे अकसर ही अपना निवास-स्थान बदलते रहते थे और उस समय तो वे उसे अवश्य ही बदल डालते थे, जब किसी संदिग्ध व्यक्ति से अपने घर पर उनकी मुलाकात होती थी। दिन के समय वे बाहर नहीं निकलते थे। संध्या होने पर वे सभी जगह घूमकर, साथी क्रांतिकारियों से मिलकर तैयारी को गति प्रदान करते थे।

बनारस में शचींद्रनाथ सान्याल रासबिहारी बोस के दाहिने हाथ के रूप में कार्य कर रहे थे। काम करने की अपनी उतावली प्रवृत्ति और निरंतर कुछ-न-कुछ करते रहने के स्वभाव के कारण रासबिहारी बोस ने शचींद्रनाथ सान्याल को 'लट्टू' नाम दे रखा था। शचींद्रनाथ सान्याल के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से रासबिहारी बोस के संबंध स्थापित हुए और इस व्यक्ति का नाम विष्णु गणेश पिंगले था। विष्णु गणेश पिंगले उच्च शिक्षा प्राप्त करने अमेरिका गए थे; पर वहाँ वे गदर पार्टी के सदस्य बन बैठे। जब गदर पार्टी के हजारों सदस्य भारत को स्वाधीन कराने के उद्देश्य से अमेरिका और कनाडा से भारत आए, तो पिंगले भी भारत वापस आ गए। उन्होंने रासबिहारी बोस को बताया कि भारत की आजादी की लड़ाई के लिए गदर पार्टी के लगभग छह हजार सदस्य अमेरिका एवं कनाडा से भारत पहुँच चुके हैं और अन्य कई हजार शीघ्र ही भारत पहुँचने वाले हैं। सच बात तो यह है कि गदर पार्टी की ओर से विष्णु गणेश पिंगले रासबिहारी बोस को पंजाब आमंत्रित करने के लिए ही उनके पास पहुँचे थे; क्योंकि पंजाब के क्रांतिकारियों ने उनकी बहुत ख्याति सुनी थी और वे अपनी विप्लव योजना के नेतृत्व के लिए रासबिहारी बोस की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे।

रासबिहारी बोस विष्णु गणेश पिंगले से मिलकर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने पंजाब पहुँचना स्वीकार भी किया; पर निश्चित यह हुआ कि पहले विष्णु गणेश पिंगले के साथ शचींद्रनाथ सान्याल पंजाब जाएँगे और जब वे पंजाब की स्थिति उन्हें बता देंगे, तब वे पंजाब पहुँचकर नेतृत्व अपने हाथ में लेंगे।

विष्णु गणेश पिंगले के साथ शचींद्रनाथ सान्याल पंजाब पहुँच गए।

३१ दिसंबर, १९१४ को पीरपाली धर्मशाला (अमृतसर) में क्रांतिकारियों की गुप्त बैठक हुई, जिसमें विष्णु गणेश पिंगले के अतिरिक्त पंजाब के क्रांतिकारी करतारसिंह सराबा, पं. परमानंद, बलवंतसिंह, हरनामसिंह (प्रथम), निधानसिंह, मूलासिंह और कुछ अन्य लोग सम्मिलित हुए। यद्यपि पंजाब के क्रांतिकारी रासबिहारी बोस की ही माँग करते रहे; पर वे शचींद्रनाथ सान्याल से मिलकर भी प्रभावित हुए। रासबिहारी बोस के पंजाब पहुँचने तक की अवधि के लिए शचींद्रनाथ सान्याल पंजाब के क्रांतिकारियों के लिए कुछ कार्य योजना दे आए, जिसकी पूर्ति वे करते रहे।

बनारस लौटकर शचींद्रनाथ सान्याल ने पंजाब की अच्छी रिपोर्ट रासबिहारी बोस को दी। कुछ समय पश्चात् अर्थात् जनवरी १९१५ में रासबिहारी बोस पंजाब के अमृतसर स्थान पर पहुँच गए। अमृतसर में वे श्रीमती अत्री के मकान में ठहरे; पर क्रांतिकारियों से वे संत गुलाबसिंह की धर्मशाला में भेंट करते थे।

अमृतसरं पहुँचने पर रासबिहारी बोस विप्लव यज्ञ के आयोजन में पूरी तरह से डूब गए। उनका गतिशील व्यक्तित्व कई कार्यों का संचालन एक साथ कर रहा था। कभी वे बनारस के माध्यम से चंद्रनगर से बम मँगवाते थे तो कभी बम के कारखाने पंजाब में ही स्थापित करते थे। पंजाब के झब्बेवाल और लौहाटवाड़ी स्थानों पर उन्होंने बम के कारखाने स्थापित किए। कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने अपना मुख्यालय लाहौर स्थानांतरित कर दिया। कई दूत उन्होंने विभिन्न छावनियों में इस आशय से भेजे कि वहाँ के फौजी विप्लव के लिए तैयार रहें। उन्होंने जालंधर, बन्नू, पेशावर, रावलपिंडी, फिरोजपुर, कपूरथला, झेलम, मेरठ और अंबाला छावनियों में अपने दूत भेजकर विप्लव की तैयारी कर डाली। बंगाल में उन्होंने ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी को बुलवाकर उन्हें यह दायित्व सौंपा कि वे बंगाल की छावनियों को विप्लव के लिए तैयार रखें।

बंगाल से लेकर उत्तर प्रदेश और पंजाब तक एक साथ विप्लव प्रारंभ करने के लिए रासबिहारी बोस ने २१ फरवरी, १९१५ की तारीख तय की। संकेत यह था कि जैसे ही मियाँमीर की छावनी में विद्रोह भड़के, सभी छावनियों को एक साथ विप्लव यज्ञ में कूद पड़ना चाहिए। सभी छावनियों से स्वीकृति के संदेश भी उनके पास पहुँच गए। बीच के समय का उपयोग उन्होंने तैयारियों की पूर्णता के लिए किया। तिरंगे झंडे भी तैयार करा लिये गए। उन्होंने कार्यकर्ताओं को इस बात का प्रशिक्षण भी दिया कि रेल की पटरियाँ किस प्रकार उखाड़ी जाएँ, टेलीग्राफ के तार किस प्रकार काटे जाएँ और पुलों को किस प्रकार उड़ाया जाए। भारी मात्रा में हथियार और प्रचार साहित्य भी एकत्रित कर लिये गए।

धड़कते हुए दिलों से लोग २१ फरवरी की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच

भारत का दुर्भाग्य प्रबल हुआ और क्रांतिकारी दल के ही एक गद्दार सदस्य कृपालसिंह ने सारी योजना पर पानी फेर दिया। वह पुलिस से मिला हुआ था। २१ फरवरी, १९१५ को एक साथ विप्लव होगा, यह सूचना उसने पुलिस को दे दी। यह सूचना देने पर भी वह क्रांतिकारियों के साथ उठता-बैठता रहा। किसीको यह मालूम नहीं था कि गद्दार कौन है। रासबिहारी बोस को यह मालूम हो जाने पर कि २१ तारीख के विप्लव की सूचना पुलिस को मिल चुकी है, उन्होंने शीघ्रता में २१ फरवरी के स्थान पर विप्लव की तारीख १९ फरवरी कर दी। कृपालसिंह ने इस तारीख की सूचना भी पुलिस को दे दी और यह प्रयत्न किया कि रासबिहारी बोस और उनका पूरा दल एक साथ गिरफ्तार हो जाए।

यह रासबिहारी बोस की क्रांतिकारी सूझबूझ ही समझी जाएगी कि वे गिरफ्तारी से बच गए। विप्लव योजना के उनके बहुत से सहयोगी तत्काल गिरफ्तार कर लिये गए और शेष निरंतर गिरफ्तार होते गए। वह दृश्य मार्मिक था, जब योजना के विफल हो जाने पर अपने कमरे में एक चारपाई पर रासबिहारी बोस लेटे हुए थे और दूसरी पर तरुण एवं तेजवंत क्रांतिकारी करतारसिंह सराबा। दोनों में से कोई किसीसे नहीं बोल रहा था। योजना की विफलता का अवसाद दोनों के मन पर छाया हुआ था। करतारसिंह सराबा सोच रहा था कि मैंने व्यक्तिगत आग्रह करके इतने बड़े क्रांतिकारी को बंगाल से पंजाब बुलवाया और एक गद्दार की नीचता के कारण उसे हम लोगों ने विफलता का उपहार दिया। रासबिहारी बोस सोच रहे थे कि क्रांतिकारियों में यह तरुण तपस्वी करतारसिंह अपने भावी जीवन के मीठे सपनों में आग लगाकर अमेरिका से गदर दल के साथ भारत आया और इसका पहला अनुभव ही असफलता के साथ हुआ। कुछ देर तक दोनों में से कोई किसीसे नहीं बोला। संयोग ऐसा हुआ कि दोनों ने ही एक साथ करवट बदली और वे एक-दूसरे से मुखातिब हो गए। रासबिहारी बोस ने बातचीत प्रारंभ की—

''करतार! अब भविष्य के लिए तुम्हारा चिंतन क्या है?''

''चिंतन क्या होगा, रासू दा! सबकुछ तो चौपट हो गया। इस समय तो मेरा चिंतन यह है कि किस प्रकार आपको सुरक्षित पंजाब से बाहर किया जाए; क्योंकि जिस तेजी के साथ हम क्रांतिकारियों की धर-पकड़ हो रही है, उसे देखते हुए यदि आप गिरफ्तार हो गए तो इस कलंक को हम किसी प्रकार धो नहीं पाएँगे।''

''ऐसा क्यों सोचते हो, करतारसिंह! मैं तुम्हारे व्यक्तिगत काम से तो पंजाब नहीं आया था। मैं तो भारत माता की आजादी की योजना को सफल बनाने के उद्देश्य से यहाँ आया था। यदि वह योजना पूरी नहीं हो सकी तो इसमें हमें दुःखी

होने की आवश्यकता नहीं। दु:खी होने की स्थिति तो वह होती, जब हम मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कोई यत्न ही नहीं करते।''

''यह तो आप ठीक कह रहे हैं, रासू दा, पर आपको सुरक्षित बंगाल भेजने की जिम्मेदारी भी तो हमारी है। मैं तो चाहता हूँ कि गिरफ्तारी से बचने के लिए आप आज ही लाहौर से बाहर निकल जाएँ।''

''इतनी जल्दी मत करो, करतारसिंह, गिरफ्तारी से बचने के लिए हम यह भी तो कर सकते हैं कि अपना यह मकान छोड़ दें और किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाएँ। अभी तो लाहौर से बाहर जानेवाली हर ट्रेन और बस पर कड़ी निगरानी रखी जा रही होगी। सरकार को कुछ दिन अपनी मुस्तैदी दिखा लेने दो। जब वह असावधान हो जाएगी तो मैं खिसक जाऊँगा।''

''आप कहते हैं तो मैं आपकी बात माने लेता हूँ; पर मुझे तो यह आशंका लगी ही रहेगी कि कहीं आप गिरफ्तार न हो जाएँ।''

''तो सुनो, करतारसिंह, ब्रिटिश हुकूमत के कारखानों में अभी तक वह हथकड़ी नहीं बनी है, जो रासबिहारी बोस के हाथों में पड़ सके। यह सरकार मुझे जीवित तो क्या पकड़ेगी, मेरी छाया तक नहीं छू सकेगी।''

और सचमुच ही ब्रिटिश हुकूमत उस महान् क्रांतिकारी की छाया नहीं छू सकी। उनको वह मकान छोड़े हुए केवल पंद्रह मिनट ही हुए थे कि पुलिस वहाँ जा धमकी और सूनी कोठरी ही उसके हाथ लगी। और वह दिन भी आया, जब बाहर जाने के लिए रासबिहारी बोस लाहौर स्टेशन जा पहुँचे।

लाहौर स्टेशन पर सहायक स्टेशन मास्टर के कार्यालय के सामने एक भीड़ दीवार पर चिपके हुए एक कागज को पढ़ रही थी। उसी समय अपना सामान लिये हुए रासबिहारी बोस वहाँ पहुँचे। वे ठेठ पंजाबी लिबास में थे और सिर पर एक भारी पगड़ी बाँधे हुए थे। भीड़ को देखकर वे भी वहाँ यह जानने के लिए रुक गए कि दीवार पर क्या चीज चिपकी हुई है, जिसे लोग इतने ध्यान से देख रहे हैं। भीड़ में से दो-एक लोगों को हटाकर उन्होंने दीवार के बिलकुल पास जाने की कोशिश की और कुछ लोगों ने उनके इस व्यवहार के प्रति आपत्ति भी की। उन्होंने ठेठ पंजाबी भाषा और पंजाबी लहजे में उन लोगों से कहा—

''ओय बादशाहो! आप लोग इतनी देर से जिस चीज को देख रहे हैं, उसे दूसरों को भी तो देखने दीजिए।''

रासबिहारी बोस के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि दीवार पर उन्हींके फोटो के साथ एक पोस्टर चिपका हुआ था, जिसके द्वारा उन्हें पकड़ने या पकड़वानेवाले को बारह हजार रुपए इनाम देने की बात कही गई थी।

पोस्टर में उनके फोटो के नीचे उनका हुलिया इस प्रकार अंकित था—

'काफी ऊँचे कद का व्यक्ति, शरीर से तगड़ा, बड़ी-बड़ी आँखें, मूँछें साफ, हाथ की तीसरी उँगली कुछ सख्त और उसपर जख्म के निशान, उम्र लगभग तीस वर्ष। अपराधी कभी-कभी पंजाबी और कभी-कभी बंगाली लिबास में रहता है। यह भी हो सकता है कि वह संन्यासी के लिबास में पाया जाए। उसके आने-जाने के स्थान हैं—रावलपिंडी, मुलतान, अंबाला, शिमला, अमृतसर, गुरदासपुर, फिरोजपुर, झेलम और लाहौर। विशेष रूप से उसकी तलाश काली मंदिरों में, बंगाली बस्तियों में या हिंदुओं के शिवालयों में की जाए। सभी प्रकार की धर्मशालाओं, सरायों और रेलवे स्टेशनों पर भी उसकी खोज की जाए।'

भीड़ से घिरे हुए लोगों के बीच अपना ही फोटो देखकर और अपने ही हुलिया का बयान पढ़कर रासबिहारी बोस न तो चौंके और न उन्होंने आँख बचाकर खिसकने का यत्न किया। सहज प्रसन्नता अपने चेहरे पर लाते हुए पंजाबी भाषा में बोल उठे—

"बादशाहो! यह आदमी अगर अपने हाथ लग जाए तो मजा आ जाए। फिर तो दूर की नौकरी को ठोकर मारकर बंदा अपने वतन लाहौर में ही बारह हजार की पूँजी से कोई धंधा शुरू कर दे। क्यों बादशाहो, ठीक है न!"

इस कथन पर मिश्रित प्रतिक्रिया हुई—

"इतना आसान नहीं है उस आदमी का हाथ लग जाना। वह अपने पास हमेशा बम और पिस्तौलें रखता है।"

"जिस आदमी को इतनी बड़ी सरकार की पुलिस नहीं पकड़ पा रही है, उसे हम निहत्थे लोग क्या पकड़ पाएँगे!"

"वह आदमी बहुत ही चालाक और सतर्क रहनेवाला है। वह जो भी लिबास पहन लेता है, उसमें फबकर रह जाता है। वह कई भाषाएँ भी बखूबी बोल लेता है।"

पंजाबी वेशधारी रासबिहारी बोस ने फिर अपनी राय जाहिर की—

"ओय बादशाहो! तकदीर आजमाने में क्या बुराई है! जिस आदमी की तकदीर बननी होगी, उसके पास तो यह आदमी जाकर खुद ही कह उठेगा कि लो, मुझे पुलिस में पेश करके अपना इनाम ले लो।"

इस बात को सुनकर कई लोग हँस पड़े। रासबिहारी बोस ने अपनी जेब से डायरी और पेंसिल निकालकर पोस्टर पर लिखे हुए हुलिया को उर्दू लिपि में लिख डाला। दूसरे लोग भी देखा-देखी अपनी-अपनी डायरियों में हुलिया लिखने लगे। इस बीच रासबिहारी बोस वहाँ से चल दिए।

लाहौर से चलकर रासबिहारी बोस सुरक्षित बनारस पहुँच गए। बनारस के क्रांतिकारियों के साथ बैठकर उन्होंने स्थिति की समीक्षा की। यही तय हुआ कि उन्हें बंगाल पहुँचकर वहाँ के क्रांतिकारियों के परामर्श से कोई नई योजना हाथ में लेनी चाहिए। इस परामर्श को मानकर वे बंगाल जा पहुँचे। वहाँ लोगों ने उन्हें परामर्श दिया कि गिरफ्तारी से बचने के लिए शीघ्र ही भारत से बाहर चले जाना चाहिए। उनके एक शुभचिंतक तो एक दिन उनके पास पहुँचकर उन्हें रूस जाने के लिए बहुत प्रेरित करने लगे और कहने लगे कि पैसे का प्रबंध हम लोग कर देंगे। रासबिहारी बोस ने उनकी योजना अस्वीकार कर दी।

कुछ दिन के लिए रासबिहारी बोस चंद्रनगर पहुँच गए। वहाँ के क्रांतिकारियों ने उनके सामने दूसरा दृष्टिकोण रखा। उन लोगों का कहना था कि फौज को भड़काकर विप्लव करने की योजना विफल होने के पश्चात् अब फौज से तो कोई आशा नहीं करनी चाहिए। स्थिति की समीक्षा करने के पश्चात् सभी लोग इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि नागरिक जनता को भारी मात्रा में हथियार वितरित किए जाएँ तो फौज की सहायता के बिना नागरिक लोग भी विद्रोह कर सकते हैं और एक बार भारत व्यापी विद्रोह प्रारंभ हो जाने पर फौज भी साथ दे सकती है। इतनी भारी मात्रा में हथियार विदेशों से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, और इसलिए साँठ-गाँठ करने के लिए भारत से बाहर जाने में कोई बुराई नहीं है। यह बात रासबिहारी बोस की समझ में आ गई। उनके सामने वह स्थिति भी थी कि दुनिया का कोई भी पराधीन देश अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बिना स्वतंत्र नहीं हुआ।

रासबिहारी बोस ने भारत से बाहर जाने का निश्चय कर लिया। संयोग से उसी समय गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर जापान जाने वाले थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर रासबिहारी बोस ने गुरुदेव से कुछ पहले जापान जाने का निश्चय कर लिया। गुरुदेव के साथ न जाने का निर्णय उन्होंने इसलिए किया कि उनके पकड़े जाने पर यह न समझा जाए कि रवींद्रनाथ ठाकुर भी उन्हें बाहर भेजने के षड्यंत्र में शामिल हैं।

अपने कुछ साथियों को ढाका भेजकर रासबिहारी बोस ने जापान जाने के लिए धन का प्रबंध कराया। यह प्रबंध हो जाने पर वे कलकत्ता पहुँच गए और 'प्रियनाथ ठाकुर' के नाम से जापान का एक टिकट खरीद लिया। पूछताछ करने पर उन्होंने बता दिया कि वे पहले जापान इसलिए जा रहे हैं, जिससे गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के पहुँचने पर वहाँ उनका यथेष्ट स्वागत हो सके और उनके जापान प्रवास को सुविधायुक्त बनाया जा सके। पुलिस कमिश्नर के दफ्तर में जाकर वे अपने टिकट का प्रमाणीकरण भी करा लाए। कलकत्ता छोड़ने के पहले उन्होंने अपने साथी क्रांतिकारियों की एक बैठक बुलाई और उनसे इस बात का बहुत आग्रह

किया कि वे क्रांति की अग्नि को बुझने न दें। १२ मई, १९१५ को जापान के 'सानुकीमारू' जहाज से रासबिहारी बोस जापान के लिए प्रस्थित हो गए और ५ जून, १९१५ को जापान की भूमि पर पहुँच गए।

गिरफ्तारी से बचने या केवल अपनी जान बचाने के लिए ही रासबिहारी बोस भारत से जापान नहीं गए थे। उनके जीवन का उद्देश्य था मातृभूमि की स्वाधीनता। टोकियो पहुँचने पर रासबिहारी बोस को मालूम हुआ कि शंघाई में जर्मनी के राजदूत से मिलकर भारी मात्रा में हथियार भारत भेजे जा सकते हैं। इस उद्देश्य को लेकर वे शंघाई पहुँच गए। शंघाई में जर्मन राजदूत से मिलकर तो उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई, पर कुछ चीनियों के माध्यम से उन्होंने काफी हथियार भारत भेजने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने बंगाल के क्रांतिकारियों के पास कुछ गोपनीय पत्र भी भेजे।

यह अनुभव करके कि शंघाई से भारत हथियार भेजने में बहुत कठिनाइयाँ हैं, रासबिहारी बोस जापान लौट आए। यहाँ टोकियो में उन्होंने २७ नवंबर, १९१५ को एक सभा का आयोजन किया, जिसमें उन्होंने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध धुआँधार भाषण दिया। इस भाषण के पश्चात् उनके प्रियनाथ ठाकुर के छद्म नाम की पोल खुल गई और जापान में उन्हें भारत के महान् क्रांतिकारी रासबिहारी बोस के नाम से जाना जाने लगा। उन दिनों इंग्लैंड और जापान में मित्रता के संबंध थे। इंग्लैंड ने जापान पर दबाव डाला कि वह रासबिहारी बोस को गिरफ्तार कर ले। जापान की पुलिस ने रासबिहारी बोस की गिरफ्तारी का वारंट निकाल दिया। इस वारंट की खबर पाकर रासबिहारी बोस जापान में भूमिगत हो गए। वे जापान की 'ब्लैक ड्रेगन सोसाइटी' के अध्यक्ष तोयामा महोदय से मिले और अपने कार्य का महत्त्व उन्हें बताया।

जापान के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में तोयामा का बहुत प्रभावशाली स्थान था। तोयामा ने जापान के ऐजो सोमा परिवार में रासबिहारी बोस को प्रश्रय दिला दिया। इतना होने पर भी ब्रिटेन के प्रभाव से जापान की पुलिस रासबिहारी बोस के पीछे पड़ी रही। सन् १९१६ से १९२३ तक जापान के अपने आठ वर्ष के प्रवास में सत्रह बार उन्हें अपने रहने के स्थान बदलने पड़े। पुलिस की नजरों से छिपे रहकर गिरफ्तारी से बचना कभी भी रासबिहारी बोस का उद्देश्य नहीं रहा। इस बीच वे विदेशों में रहनेवाले भारतीय क्रांतिकारियों के साथ संपर्क स्थापित करते रहे और कार्य को आगे बढ़ाते रहे। जापान में उन दिनों भारत के महान् क्रांतिकारी तारकनाथ दास रह रहे थे। उनसे भी रासबिहारी बोस का संपर्क था। अमेरिका में भारत के क्रांतिकारी नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (मानवेंद्रनाथ राय) और

रामचंद्र से भी वे संपर्क बनाए हुए थे। जापान पहुँचने के चार महीने के अंदर ही कठिन जापानी भाषा उन्होंने सीख ली और अपने भूमिगत जीवन में उन्होंने जापानी शिष्टाचार पर असाधारण अधिकार कर लिया। भूमिगत जीवन में वे 'हयाशी इचीरो' के जापानी छद्म नाम से रहते रहे।

यह जानकर कि रासबिहारी बोस भारत से भागकर जापान पहुँच गए हैं, अंग्रेज सरकार ने उनको पकड़ने के लिए अपने एक उच्च गुप्तचर अधिकारी डी. पीटरी को सन् १९१६ में जापान भेजा। निरंतर पीछे पड़े रहने पर भी यह अधिकारी रासबिहारी बोस को नहीं पकड़ पाया। भारत सरकार के पास भेजी गई अपनी रिपोर्ट में उस अधिकारी ने लिखा—

'बोस के कुछ पत्रों को पकड़कर यह मालूम हो सका है कि वह अमेरिका में भारत के क्रांतिकारियों—जैसे नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य इत्यादि से संपर्क बनाए हुए है और वह अभी भी क्रांति कार्यों में डूबा हुआ है। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उसका महत्त्व अभी तक कम नहीं हुआ है।

'ज्ञात हुआ है कि जापान में भारत के क्रांतिकारी तारकनाथ दास से बोस का संपर्क है और तारकनाथ दास बोस को अपने से बड़ा क्रांतिकारी मानते हैं। इन दोनों ने मिलकर विस्फोटक सामग्री की मदद से समुद्र में अंग्रेजों के जहाजों को डुबोने की योजना भी बनाई है।'

अंग्रेजी सरकार रासबिहारी बोस की गतिविधियों से भयभीत थी और वह जापान में उनका अपहरण करने या उन्हें मार डालने की योजनाएँ बना रही थी। वे रासबिहारी बोस थे, जो अंग्रेजी जासूसों और जापानी पुलिस को चकमा दे रहे थे। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जापानी फौजी अधिकारी श्री एम. तोयामा का वरदहस्त रासबिहारी बोस को प्राप्त था और जापानी दंपती श्री ऐजो सोमा तथा कोक्को सोमा उन्हें इस प्रकार सुरक्षा प्रदान कर रहे थे जैसे कोई मादा पक्षी अपने डैनों के अंदर अपने बच्चे को छिपाकर रख ले। यह दंपती श्री बोस से यहाँ तक प्रभावित हुआ कि उसने अपनी पुत्री तोशिको का विवाह जुलाई १९१८ में रासबिहारी बोस के साथ कर दिया। अपनी जापानी पत्नी से श्री बोस को एक पुत्र और एक पुत्री की प्राप्ति भी हुई।

सन् १९२३ में रासबिहारी बोस को जापान की नागरिकता प्राप्त हो गई। इसके पहले का समय उन्होंने अंग्रेजी और जापानी भाषाओं में भारत के स्वाधीनता आंदोलन के संबंध में पुस्तकें लिखकर जापान में भारत के पक्ष में वातावरण तैयार करने में व्यतीत किया। जापान की नागरिकता मिलने पर रासबिहारी बोस खुल्लमखुल्ला घूमकर भारत की आजादी की दिशा में कार्य करने लगे। अपने

भारतीय साथियों के साथ मिलकर टोकियो में उन्होंने सन् १९२४ में एक संस्था को जन्म दिया, जिसका नाम 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' अर्थात् 'भारतीय स्वाधीनता परिषद्' रखा गया। दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों में इस परिषद् की शाखाएँ स्थापित की गईं।

विश्व के रंगमंच पर सन् १९३७ में एक घटना घटित हुई। जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया। भारतीय नेताओं ने जापान के इस व्यवहार की निंदा की। रासबिहारी बोस ने भारतीय नेताओं के पास इस आशय के संदेश भेजे कि उनके ऐसा करने से भारत के प्रति जापान के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को ठेस लगेगी; पर भारतीय नेताओं ने उनके परामर्श को महत्त्व नहीं दिया। इसपर रासबिहारी बोस ने समस्या का हल स्वयं निकाल लिया। उन्होंने २८ अक्तूबर, १९३७ को 'एशियाई युवक संघ' की स्थापना की और 'एशिया एशियावासियों के लिए' का नारा दिया।

जापान ने ८ दिसंबर, १९४१ को इंग्लैंड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। रासबिहारी बोस ने इसे भारत के लिए स्वर्ण अवसर समझा। एक भी दिन खोए बिना उन्होंने उसी दिन जापान के साथियों को एकत्रित कर एक सभा का आयोजन किया। उन्होंने जापान के प्रधानमंत्री जनरल तोजो को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे भारत की आजादी की दिशा में सहयोग दें। रासबिहारी बोस के प्रयत्नों से दक्षिण-पूर्व एशिया में रहनेवाले भारतीयों को एक स्पष्ट लाभ हुआ और वह यह कि वे जापान के सैनिक वर्ग के दुर्व्यवहार से बचे रहे। युद्धोन्मत्त जापानी सैनिक विजित प्रदेशों में खुले रूप से लूटपाट और व्यभिचार किया करते थे। वे केवल भारतीयों को छोड़ दिया करते थे। इस स्थिति से लाभ उठाकर कई यूरोपियन महिलाओं ने साड़ियाँ और सलवार-दुपट्टे पहनकर अपने सम्मान की रक्षा की। यह सब 'भारतीय स्वाधीनता परिषद्' और उसके अध्यक्ष रासबिहारी बोस का ही प्रभाव था।

इंग्लैंड-जापान युद्ध में अंग्रेजों की निरंतर पराजय होती रही। सिंगापुर का भी पतन हो गया। जापानियों ने भारतीय फौज के लगभग एक लाख सैनिकों को बंदी बनाया। जापान के संपर्क अधिकारी मेजर फूजीवारा ने 'भारतीय स्वाधीनता परिषद्' के साथ मिलकर आजाद हिंद फौज के निर्माण की प्रेरणा दी। 'आजाद हिंद फौज' का निर्माण हुआ और उसका प्रथम कमांडर कैप्टेन मोहनसिंह को बनाया गया। बाद में उन्हें जनरल का दर्जा प्रदान किया गया। एक 'युद्ध परिषद्' की स्थापना की गई, जिसके अंतर्गत 'आजाद हिंद फौज' को काम करना था। रासबिहारी बोस इस युद्ध परिषद् के अध्यक्ष थे।

रासबिहारी बोस द्वारा भारत की आजादी की दिशा में किए गए प्रयत्नों में

'टोकियो सम्मेलन', 'बीदादरी सम्मेलन' और 'बैंकाक सम्मेलन' अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। टोकियो सम्मेलन में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया—

'यह सम्मेलन सर्वानुमति से निर्णय लेता है कि राष्ट्रीय आंदोलन का ध्येय भारत की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना होगा; जिसपर किसी विदेशी सत्ता का प्रभाव न हो, जिसमें किसी अन्य राष्ट्र का हस्तक्षेप न हो और जिसपर भारतीयों के अतिरिक्त किसी अन्य शक्ति का अधिकार न हो। इस प्रकार की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह उपयुक्त समय है।'

बीदादरी सम्मेलन में आजाद हिंद फौज के विस्तार की योजना बनाई गई।

इन सबमें महत्त्वपूर्ण था थाईलैंड की राजधानी बैंकाक में १५ जून, १९४२ को आयोजित बैंकाक सम्मेलन। इसमें दक्षिण एशिया के देशों से भारी संख्या में प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गए, जिनमें से एक यह भी था कि जर्मनी से नेताजी सुभाषचंद्र बोस को दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व सँभालने के लिए आमंत्रित किया जाए।

कुछ समय पश्चात् आजाद हिंद फौज के कमांडर जनरल मोहनसिंह और जापानी फौजी प्रशासन के बीच टकराव की स्थिति निर्मित हो गई। आवेश में आकर जनरल मोहनसिंह ने आजाद हिंद फौज भंग कर दी। जापानी फौजी प्रशासन ने जनरल मोहनसिंह को गिरफ्तार कर लिया। संक्रांति काल में रासबिहारी बोस ने बड़ी सूझबूझ से काम लिया। उन्होंने आजाद हिंद फौज के संचालन के लिए अंतरिम व्यवस्था कर दी। उन्होंने फौज के अधिकारियों की एक समिति बनाकर फौज के संचालन का दायित्व उसे दे दिया। इस समिति के सदस्य थे—

१. ले. कर्नल ए.डी. लोकनाथन,
२. ले. कर्नल जे.के. भोंसले,
३. ले. कर्नल एम.जेड. कियानी,
४. कैप्टेन एहसान कादिर।

इस बीच रासबिहारी बोस जापान सरकार पर इस बात का दबाव डालते रहे कि वह नेताजी सुभाषचंद्र बोस को जर्मनी से शीघ्र जापान बुलाने की व्यवस्था करे।

रासबिहारी बोस की वह साध भी पूरी हुई, जब आजाद हिंद आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए सुभाषचंद्र बोस तीन महीने से ऊपर की लंबी और खतरनाक पनडुब्बी यात्रा के पश्चात् १६ मई, १९४३ को जापान की राजधानी टोकियो पहुँच गए। उस समय रासबिहारी बोस सिंगापुर अपना मुख्यालय बनाकर आंदोलन की गतिविधियों को सँभाले हुए थे। वे सुभाषचंद्र बोस के स्वागत के लिए टोकियो पहुँचे। अपने फौजी मित्रों से उन्होंने यही कहा था कि आप लोगों के लिए

एक अमूल्य उपहार लाने के लिए मैं टोकियो जा रहा हूँ।

टोकियो में रासबिहारी बोस और सुभाषचंद्र बोस का मिलन एक अपूर्व मिलन था। भारत में वे दोनों कभी नहीं मिले थे। वे जापान में प्रथम बार एक-दूसरे से मिले। दो महान् क्रांतिकारियों के मिलन का वर्णन करते हुए जापान के कर्नल यामामोटो ने लिखा—

'उनकी प्रथम भेंट १२ या १३ जून को टोकियो के इंपीरियल होटल में हुई। मुझे उन दोनों को मिलाने का काम दिया गया था। जब मैं मि. बिहारी बोस को मि. चंदर बोस के कमरे में ले गया तो वे दोनों, जिन्होंने अपने-अपने बचपन के दिनों से ही अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया था, हाथ मिलाकर एक-दूसरे के गले से लिपट गए। इस आकस्मिक मिलन से उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि उनके हृदय उछलने लगे। हर्षातिरेक के कारण उनकी वाणी मूक हो गई। कुछ देर पश्चात् वे अपनी मातृभाषा में पुराने मित्रों की भाँति बातें करने लगे। उन्हें बात करने का अवसर देने के लिए मैं उठकर चला आया। उनकी बातचीत एक घंटे तक चलती रही। जब उनकी भेंट समाप्त हो गई तो मि. बिहारी बोस मुझसे बोले—'मेरा भार उतर चुका है'।'

और वह समय भी आ पहुँचा, जब रासबिहारी बोस सुभाषचंद्र बोस को लेकर सिंगापुर जा पहुँचे। ४ जुलाई, १९४३ का दिन भारत की आजादी के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण दिन माना जाएगा, जब सिंगापुर के कैथे भवन में एक समारोह का आयोजन कर रासबिहारी बोस ने आजाद हिंद आंदोलन की बागडोर सुभाषचंद्र बोस के हाथों में थमाते हुए कहा—

''मित्रो और मेरे सैनिक साथियो!

''आप लोग मुझसे पूछेंगे कि मैं आप लोगों के लिए क्या उपहार लाया हूँ। मित्रो! मैं आप लोगों के लिए यह उपहार (नेताजी की ओर संकेत) लाया हूँ। भारतवर्ष को या दुनिया को श्रीयुत सुभाषचंद्र बोस का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है।

''मित्रो! यह समय मेरे जीवन के सर्वाधिक आनंद का समय है। आप लोगों की उपस्थिति में आज मैं अपने पद का त्याग करता हूँ और देशसेवक सुभाषचंद्र बोस को पूर्व एशिया के 'आजाद हिंद संघ' के अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित करता हूँ। मेरे शरीर में जब तक एक भी साँस है, मैं सैनिक ही रहूँगा; उसी प्रकार जैसे भारत माता की आजादी की लड़ाई में मैं जीवन-भर सैनिक रहा हूँ। मैं श्रीयुत सुभाषचंद्र बोस को जीवन-भर देता ही रहूँगा—जो कुछ भी मुझसे बन पड़ेगा। मैं उन्हें हार्दिक समर्थन दूँगा और हमारे सामने आजादी की जो लड़ाई है, उसमें उन्हें परामर्श दूँगा।''

रासबिहारी बोस के कंधों का भार सचमुच ही उतर चुका था और वह सुभाषचंद्र बोस के दृढ़ कंधों पर जा चुका था। सुभाषचंद्र बोस ने आंदोलन की बागडोर उनके हाथों से ग्रहण कर ली और आजाद हिंद संघ के सर्वोच्च परामर्शदाता के रूप में उनकी नियुक्ति करके उनका सम्मान किया।

निरंतर संघर्ष, भाग-दौड़ और कठिन परिश्रम ने रासबिहारी बोस के स्वास्थ्य पर घातक प्रहार किया। कर्तव्य से मुक्ति के पश्चात् वे जीवन से मुक्ति की दिशा में बढ़ने लगे। नवंबर १९४४ के प्रथम सप्ताह में जब घोर युद्ध के दिनों में नेताजी सुभाषचंद्र बोस टोकियो पहुँचे तो वे श्री रासबिहारी बोस से मिलने उनके निवास स्थान पर भी गए। दो महान् क्रांतिकारी नेताओं का यहं अंतिम मिलन था। श्री रासबिहारी बोस के शरीर पर वृद्धावस्था ने तो अधिकार कर ही लिया था, कई सदमों ने भी उनके शरीर को तोड़ दिया था। पहले तो उनकी जीवनसंगिनी श्रीमती तोशिको बोस का निधन हुआ और उसके पश्चात् उनका प्रिय पुत्र माशोहीदे उन्हें अकेला छोड़कर दूसरी दुनिया में चला गया।

रासबिहारी बोस बीमार रहने लगे। जनवरी १९४५ में उन्हें इलाज के लिए टोकियो के सरकारी अस्पताल में भरती किया गया। उनकी बीमारी की दशा में ही जापान के सम्राट् ने उनको राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत किया। उन्होंने श्री रासबिहारी बोस को उगते हुए सूर्य के देश का 'दो किरणोंवाला द्वितीय सर्वोच्च पद' के सम्मान से विभूषित किया।

२१ जनवरी, १९४५ को जीवन-भर लड़ते रहनेवाला महान् योद्धा रासबिहारी बोस भारत माता की आजादी का चिंतन करता हुआ जापान की राजधानी टोकियो से बिदा लेकर उस दुनिया में जा पहुँचा जहाँ भारत के अगणित शहीदों से उसका मिलन हुआ।

□

★ फील्ड मार्शल लद्दाराम

फील्ड मार्शल लद्दाराम

अंडमान की सेलुलर जेल का जेलर 'बारी' कहने-भर को इनसान था, वैसे उसमें इनसानियत कहीं नहीं थी। उसका आकार-प्रकार भी इनसानों जैसा नहीं था। वह ऐसा लगता था जैसे किसी बहुत बड़े मेढक को खड़ा करके उसे पैंट-शर्ट पहना दिया गया हो। उसका कद छोटा तथा मोटा था और उसके शरीर में प्रमुखता आगे निकली हुई तोंद की ही थी। उसका चेहरा चपटा और भद्दा था।
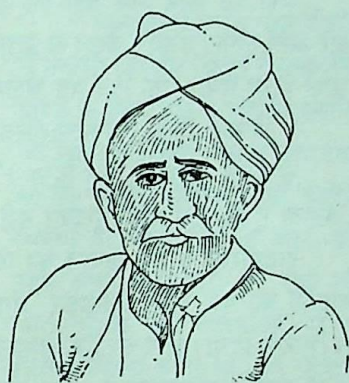
जेलर बारी अपनी नृशंसता के लिए कुख्यात था। दर्जनों गालियाँ एक साथ उसके मुँह से निकलती थीं और कैदियों को किस प्रकार तंग किया जाए, ऐसी दर्जनों खुराफातें उसके दिमाग में हमेशा पैदा होती रहती थीं।

इसी जेलर बारी के सामने सन् १९११ में एक दुबले-पतले कैदी को प्रस्तुत किया गया तो उसने एक ही साँस में कैदी को बता दिया कि अंडमान की जेल में उसे क्या-क्या करना है और क्या-क्या नहीं करना है। इस नए कैदी का नाम लद्दाराम था। यह उर्दू पत्र 'स्वराज्य' का संपादक था और शासन के विरुद्ध राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण उसे दस-दस वर्ष की तीन सजाएँ दी गई थीं। जेलर बारी का व्याख्यान सुनकर लद्दाराम ने शरारती ढंग से कह दिया—"जेलर साहब! और कोई आयत रह गई हो तो वह भी आज ही बता दीजिए।"

'आयत' शब्द कैदी के मुँह से सुनकर जेलर भुनभुनाया और फिर गरज उठा—"तुम बहुत बदमाश किस्म का कैदी मालूम होता है। हम तुम्हें देख लेगा।"

और इस देख लेने की शुरुआत इस तरह हुई कि लद्दाराम को प्रतिदिन कोल्हू चलाकर तीस पौंड गरी का तेल निकालने की कठोर सजा दे दी गई। यह सजा सुनी तो लद्दाराम भड़क उठे—

"जेलर साहब खुद एक दिन कोल्हू चलाकर दिखा दें तो मैं उनके द्वारा दी गई सजा स्वीकार कर लूँगा।"

भला जेलर क्यों कोल्हू का बैल बनने चला! लद्दाराम ने भी कोल्हू चलाने से साफ इनकार कर दिया। अब उनके लिए जो दूसरी सजा दी गई वह खड़ी हथकड़ियों की थी, अर्थात् उनके हाथों में हथकड़ियाँ पहनाकर दोनों हाथ ऊपर बाँध दिए गए। लद्दाराम ने जैसे-तैसे यह सजा भी पूरी की।

जेल का काम और वहाँ का जीवन रास न आने के कारण लद्दाराम को बुखार आने लगा। उन्होंने जेलर से इलाज की प्रार्थना की तो उन्हें एक ठंडी कोठरी में डाल दिया गया। एक दिन वह जेलर से पूछ बैठे—

"श्रीमान, किस चिकित्साशास्त्र में बुखार की यह ओषधि लिखी है?"

जेलर ने तपाक से कह दिया—"तुम्हें अच्छा करना ही कौन चाहता है! मैं तो चाहता हूँ कि तुम घुल-घुलकर मरो।"

लद्दाराम ने इस जवाब का जवाब इस तरह दिया कि उन्होंने जेल की यातनाओं का पूरा ब्योरा लिखकर 'बंगाली' पत्र के संपादक सुरेंद्रनाथ बनर्जी के पास भिजवा दिया। जेल का एक जमादार तीन महीने की छुट्टी पर भारत गया था। उसीको पटाकर लद्दाराम ने अपना पत्र भिजवाया था।

यह ब्योरा पहुँचने पर भारत में अंडमान के जेल प्रशासन के विरुद्ध बहुत भयंकर आंदोलन उठ खड़ा हुआ। और कुछ परिणाम निकला हो या न निकला हो, पर इतना अवश्य हुआ कि लद्दाराम को अंडमान की सेलुलर जेल से भारत की जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। अपनी शेष सजा उन्होंने भारत की जेलों में काटी।

लद्दाराम अत्यंत उग्र विचारों तथा अपनी योजनाओं को क्रियान्वित करके दिखाने के कारण ही अपने साथी क्रांतिकारियों के द्वारा 'फील्ड मार्शल लद्दाराम' कहकर पुकारे जाते थे। उस समय अंडमान में उनके साथी क्रांतिकारियों में विनायक दामोदर सावरकर, गणेश दामोदर सावरकर, इंदुभूषण रे, वारींद्रकुमार घोष, हेमचंद्रदास, उल्लासकर दत्त और सुधीरकुमार सरकार आदि प्रमुख थे।

□

★ भाई वतनसिंह

भाई वतनसिंह

कनाडा के समृद्ध नगर वैंकोवर में प्रवासी भारतीय सिखों ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए अपना संगठन स्थापित कर लिया था। मिलने-जुलने का स्थान था श्री गुरुद्वारा साहिब, जहाँ धार्मिक विषयों पर चर्चा होने के साथ-ही-साथ अपने अधिकारों की रक्षा और भारत-मुक्ति की योजनाओं पर भी विचार-विमर्श होता था। इन चर्चाओं में लोग बड़े उत्साह के साथ भाग लेते थे और कुछ कर दिखाने के लिए रस्सी तुड़ाते हुए दिखाई देते थे। उनमें एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो चुपचाप सबके तर्क सुनता रहता था और बहस में भाग लेने का अधिक उत्साह नहीं दिखाता था। हाँ, यदि कोई बात पूछी जाती या कोई काम उसे सौंपा जाता तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार नपे-तुले शब्दों में उत्तर दे देता और दिया हुआ काम पूरा कर देता था।

एक दिन एक मित्र के घर गोपनीय मंत्रणा हो रही थी। समस्या थी कि क्या हम शांतिपूर्वक कनाडा सरकार के नित्य प्रति बनाए जानेवाले दमनकारी कानूनों को सहन करते रहें या उनका प्रतिरोध करें? भागसिंह का कथन था कि पहले सरकार से निवेदन करके देख लिया जाए और यदि कोई परिणाम नहीं निकले तो अधिक कड़ा कदम उठाया जाए। अर्जुनसिंह का मत था कि प्रार्थनाएँ तो कभी सरकार सुनेगी नहीं, हाँ, यदि प्रारंभ से ही घी निकालने के लिए उँगलियाँ टेढ़ी कर ली जाएँ तो सरकार स्वयं ही सुधार की बात सोचेगी।

मंत्रणा हो ही रही थी कि बेलासिंह नाम के एक अन्य सिख ने कमरे में

प्रवेश किया और चर्चा का अंतिम वाक्य सुन लिया। बिना संदर्भ जाने हुए उसने कहना प्रारंभ कर दिया—

"तुम लोग उस सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचते हो जो आज संसार की महानतम शक्तियों में गिनी जाती है। वह चाहे तो तुम लोगों को पकड़कर जेल में सड़ाए या सभी सुविधाएँ छीनकर भूखों मरने के लिए छोड़ दे। मेरी तो सलाह है कि उससे विरोध न करके उसकी कृपा प्राप्त करो और अपने को सुखी बनाओ। यदि चाहो तो मैं तुम्हारी बात सरकार तक पहुँचा दूँ।"

यह कथन सुनकर सब लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। भाई वतनसिंह से न रहा गया। बोल ही पड़े—

"देखो बेलासिंह, हम उन लोगों में नहीं हैं, जो रोटी के टुकड़ों के लिए विदेशी सरकार के आगे दुम हिलाते फिरें और अपने ही भाइयों के साथ गद्दारी करें। यदि हमारी बात सरकार तक पहुँचाना ही चाहते हो तो यह बात पहुँचा देना कि वह जिस तरह चाहे, हमें तंग कर ले। हम झुकनेवाले नहीं हैं। हम स्वयं भी टूट सकते हैं और अन्याय की भी कमर तोड़ सकते हैं।"

बेलासिंह भुनभुनाता हुआ चला गया और देख लेने की धमकी भी देता गया।

और एक दिन आया, जब बेलासिंह ने देख लेने की बात पूरी करके दिखा दी। वह इमीग्रेशन विभाग के अधिकारी हॉपकिंसन से मिला हुआ था, जो बहुत जल्लाद तथा भ्रष्ट अफसर था और प्रवासी भारतीयों को तंग करने में उसे विशेष आनंद आता था। उसने बेलासिंह को पाल रखा था और एक रिवॉल्वर भी उसे इस शर्त के साथ दे रखा था कि किसी भारतीय का खून करके दिखाना। अपना मतलब गाँठने के लिए बेलासिंह अन्य सिखों से विनम्रता से पेश आने लगा; लेकिन मौके की तलाश में अवश्य रहने लगा। एक दिन उस गद्दार ने दो भारतीय वीरों के प्राण ले लिये। घटना थी कि जब भाई भागसिंह गुरुद्वारे में अरदास के पश्चात् मत्था टेकने के लिए झुके तो बेलासिंह ने उनपर रिवॉल्वर से गोली चला दी। बेलासिंह को पकड़ने जब वतनसिंह लपके तो बेलासिंह ने दूसरी गोली वतनसिंह पर छोड़ दी। गोली वतनसिंह के सीने में समा गई। गोली खाने के बाद वतनसिंह ने भीषण गर्जना की और बेलासिंह पर अधिक तेजी से झपट पड़े। बेलासिंह पर तो खून सवार था। उसने फिर गोली छोड़ी और वतनसिंह ने फिर पीछा किया। इस तरह पाँच गोलियाँ सीने में खा लेने पर भी वतनसिंह ने बेलासिंह का पीछा नहीं छोड़ा और उसकी गरदन पकड़ ही ली। लेकिन इतने समय में उनका वक्षस्थल खून का फव्वारा बन चुका था और उन्हें मूर्च्छा आने लगी थी। उनकी पकड़ ढीली हो गई

और बेलासिंह भाग निकला।

भाई वतनसिंह अपने वतन से दूर उसीका हितचिंतन करते हुए शहीद हो गए। उस समय उनकी आयु पचास वर्ष की थी। यह घटना सन् १९१४ के अगस्त माह की है।

भाई वतनसिंह के जीवन के विषय में जो ज्ञात हो सका वह यह कि वे पटियाला राज्य के 'कुंबड़वाल' नाम के गाँव में जनमे थे और उनके पिता का नाम भाई मंगलसिंह था। आपने कुछ दिन तक भारतीय सेना में नौकरी की; पर बाद में घर रहकर खेती करने लगे। कनाडा से आए हुए सिख भाइयों से सुना कि कनाडा में अच्छी कमाई के अवसर हैं तो हांगकांग होते हुए आप कनाडा जा पहुँचे। जब वहाँ के भारतीय समाज में राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई तो आपने स्वयं को समाज और देश के लिए अर्पित कर दिया।

□

★ वसंतकुमार विश्वास

वसंतकुमार विश्वास बंगभूमि के उन बेटों में से एक था, जो देश की आन पर अपने-अपने कंधों पर कफन डालकर निकले और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दीपशिखा पर पतंगों की तरह कूद पड़े; उसे चूमने नहीं, हमेशा-हमेशा के लिए उसे बुझा देने के लिए।

वसंतकुमार सचमुच ही वसंत का कुमार था। सुंदर, सुकोमल देह; जैसे वसंत का महकता हुआ फूल। तेजोद्दीप्त तारुण्य में लावण्य का प्राबल्य, वाणी में भौंरों का गुंजार—यह थी उसके प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व की विशेषताएँ। सुंदरता और सुकोमलता का उसमें अद्‌भुत संयोग था। उसे देखकर कोई भी इस कल्पना का आनंद ले सकता था कि यदि वसंतकुमार नारी परिधान धारण कर ले तो नारियाँ भी उसके रूप पर मोहित हो जाएँ।

और एक दिन हुआ भी ऐसा ही। २३ दिसंबर, १९१२ को भारत की राजधानी दिल्ली में वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज की सवारी धूमधाम से निकल रही थी। हजारों घोड़ों, हाथियों, तोपों, बंदूकों एवं सैनिकों की सजी हुई टुकड़ियों ने जुलूस को मीलों लंबा और दर्शनीय बना दिया था। अमीर-उमरा और राजा-रईस भी चल-समारोह की शोभा बढ़ा रहे थे। यह भव्य तथा विशाल प्रदर्शन इस बात का द्योतक था कि जिस साम्राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता, उसका बिगाड़ भुनगे जैसे

क्रांतिकारी तो क्या, बड़ी-बड़ी सेनाएँ भी नहीं कर सकतीं। इस आयोजन द्वारा सारे भारत में एवं विश्व में यह ढिंढोरा पीटा जा रहा था कि इंग्लैंड का सम्राट् ही भारत का एकच्छत्र सम्राट् है और भारत में अपने आपको राजा-महाराजा कहनेवाले लोग इंग्लैंड के सम्राट् के बच्चे हैं—राजकुमार हैं। भारत के राजे-महाराजे और नवाब तो सचमुच में ही स्वयं को ब्रिटिश सम्राट् का सेवक समझने में गौरव का अनुभव कर रहे थे; पर कुछ ऐसे बिगड़ैल क्रांतिकारी भी थे, जो इंग्लैंड के सम्राट् से भी घुटने टिकवाने का ताव रखते थे। उन्होंने भी ठान लिया कि यदि दिल्ली दरबार के रंग को भंग नहीं किया तो हम भारत के क्रांतिकारी ही क्या!

क्रांतिकारियों के सिरमौर रासबिहारी बोस ने रस में राख मिलाने की योजना भी तैयार कर ली। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के गाल पर जड़ने के लिए उन्होंने वसंतकुमार विश्वास को तमाचा बनाया। वसंत अब कुमार नहीं, कुमारी थे।

चाँदनी चौक स्थित पंजाब नेशनल बैंक के भवन की छत पर से सैकड़ों महिलाएँ लाट साहब के जुलूस को देख रही थीं। मुसलिम महिलाओं के एक दल में बुरका ओढ़कर वसंतकुमार विश्वास भी सम्मिलित होकर सबसे पीछे खड़े हो गए। अंग-सौष्ठव, स्वर-संचालन तथा भाव-भंगिमाएँ सभी कुछ तो मुसलिम महिलाओं जैसे थे। जुलूस बैंक के भवन के सामने पहुँच गया। एक हाथी पर, रत्नजटित आसन पर, लॉर्ड हॉर्डिंग्ज विराजमान थे। उनके आगे उनकी पत्नी थीं। सबसे आगे महावत और सबसे पीछे अंगरक्षक था। नारी वेशधारी वसंतकुमार विश्वास ने अन्य महिलाओं का ध्यान श्रीमती हॉर्डिंग्ज के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला की ओर आकर्षित कर उन्हें मध्यमणि की आभा निरखने की प्रेरणा दी। इसी बीच क्षण-भर में ही बम का पिन खींचकर उसे लाट साहब के ऊपर फेंक दिया। भयंकर आवाज के साथ बम फट गया और चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ फैल गया। बम के विस्फोट से लोगों के कानों के परदे फट गए। लाट साहब मूर्च्छित होकर झूल गए। उनका अंगरक्षक मारा गया। चारों ओर भगदड़ मच गई। जिधर रास्ता मिला, स्त्रियों और पुरुषों के झुंड भागते दिखाई दिए। भागते हुए नर-नारियों में मिलकर वसंतकुमार विश्वास कब कहाँ खिसक गया, किसीको पता नहीं चल सका। आसपास के भवनों को घेरकर पुलिस ने तलाशी भी ली, पर कोई सुराग हाथ नहीं लगा।

मुजफ्फरपुर में मि. किंग्सफोर्ड के ऊपर फेंके गए बम के बाद भारत में यह दूसरा बम विस्फोट था, जिसके धमाके ने सारे संसार को हिला दिया। अमेरिका में जब इस बम विस्फोट के समाचार पहुँचे तो वहाँ रह रहे लाला हरदयाल और अन्य क्रांतिकारियों ने ऐसी खुशियाँ मनाईं जैसी शादियों में भी नहीं मनाई जातीं। घंटों

तक वे लोग नाचते-कूदते रहे। मिठाइयाँ बाँटी गईं, जो अन्य देशों के लोगों को भी खिलाई गईं। लाला हरदयाल ने एक समाचार बुलेटिन छपवाकर संसार के कई देशों में बँटवाया। उसमें छपा था—

'बम विस्फोट शाही दरबार के लिए उपयुक्त उत्तर के रूप में प्रस्तुत हुआ है। यदि शाही इतिहास में दरबार का आयोजन एक ऐतिहासिक घटना है, तो क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में भी बम विस्फोट स्वर्णाक्षरों से लिखी जाने वाली घटना है। दरबार भी होते रहें और बम विस्फोट भी होते रहें तथा यह क्रम तब तक चले, जब तक पृथ्वी के धरातल से दरबारों की प्रथा उठ न जाए।'

लॉर्ड हॉर्डिंग्ज के ऊपर फेंके गए बम का महत्त्व इसलिए और बढ़ जाता है कि वह भारी सुरक्षात्मक प्रबंधों के बावजूद फेंका गया था। इतनी धूमधाम से पहली बार वाइसराय महोदय की सवारी भारत में निकली थी। ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली लाई गई थी। राजधानी स्थापना और ब्रिटिश शासन के महत्त्व के अनुरूप ही समारोह का आयोजन था और आयोजन के अनुरूप ही सुरक्षात्मक प्रबंध किए गए थे। नागरिक वेश में खुफिया विभागवाले हजारों व्यक्ति हफ्तों पहले से सारे शहर में फैलकर लोगों की प्रतिक्रियाएँ सूँघ रहे थे। केवल जुलूस के प्रबंध के लिए ही सारे भारत में से चुने हुए पुलिस के दो सुपरिंटेंडेंट, दो डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, सात असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट, चार इंस्पेक्टर, उन्नीस सब-इंस्पेक्टर, पाँच सारजेंट, पचहत्तर हेड कांस्टेबिल, चार सौ अठारह कांस्टेबिल, चार सवार हेड कांस्टेबिल, चौंतीस सवार कांस्टेबिल तैनात थे और ग्यारहवीं लांसर्स की पूरी कंपनी लगी हुई थी। लगभग इतने ही अधिकारी खुफिया विभाग के भी नागरिक वेश में जुलूस के साथ निगरानी करते हुए चल रहे थे। इतना होने पर भी भारत के क्रांतिकारियों ने अपना करिश्मा दिखा ही दिया।

बम प्रहार के पश्चात् वसंतकुमार विश्वास ने दिल्ली छोड़कर बंगाल का रास्ता पकड़ा। अपने पूज्य पिता का श्राद्ध संपन्न करने वह नदिया जिले में अपने गाँव 'परागचा' जा पहुँचा, जहाँ २६ फरवरी, १९१४ को वह गिरफ्तार हो गया। सरकार रासबिहारी बोस की छाया भी नहीं छू सकी।

कलकत्ता के राजा बाजार में एक मकान की तलाशी लेने पर क्रांति के कुछ सूत्र सरकार के हाथ लग गए। इन्हीं सूत्रों के आधार पर मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी और भाई बालमुकुंद की गिरफ्तारियाँ हुईं।

१६ मार्च, १९१४ को मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी, भाई बालमुकुंद एवं अन्य सात व्यक्तियों पर दिल्ली की अदालत में राजद्रोह तथा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का अभियोग चलाया गया। इनपर हत्या का आरोप भी लगाया

गया। यह भी पाया गया कि १७ मई, १९१३ को लाहौर के लॉरेंस गार्डन में उत्सव मनाते हुए अंग्रेजों पर जो बम फेंका गया था और जिसके परिणामस्वरूप एक हिंदुस्तानी चपरासी मर गया था, वह भी वसंतकुमार विश्वास और उसके साथी क्रांतिकारियों का काम था।

दिल्ली बम कांड का निर्णय ५ अक्तूबर, १९१४ को सुना दिया गया। सभी को कालापानी की लंबी-लंबी सजाएँ दी गईं। बाद में पंजाब के गवर्नर सर माइकेल ओ डायर के हस्तक्षेप से सभी की सजाएँ बढ़ा दी गईं।

मास्टर अमीरचंद, भाई बालमुकुंद, अवधबिहारी और वसंतकुमार विश्वास को अंबाला जेल में ११ मई, १९१५ को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

फाँसी के समय वसंतकुमार विश्वास की आयु केवल तेईस वर्ष की थी। जिन दिनों रासबिहारी बोस देहरादून के वन विभाग में कार्य कर रहे थे, उन दिनों वसंतकुमार विश्वास उनका निजी सेवक था। बाद में, लाहौर के एक दवाखाने में कुछ समय तक उसने कंपाउंडर का कार्य भी किया।

वसंतकुमार विश्वास आज नहीं है, पर देश में यह विश्वास आज भी जीवित है कि देश के सपूत देश की आन पर हँसते-हँसते जान दे देते हैं।

□

★ विजयसिंह पथिक

❖ ❖

यह घटना सन् १९११ की है। इंदौर नगर के मध्य एक खेल के मैदान में फुटबॉल का मैच चल रहा था। यह मैच नगर एकादश तथा मिलिट्री की टीमों के बीच खेला जा रहा था। मिलिट्री की टीम में अधिकांश संख्या तो हिंदुस्तानी फौजियों की थी, पर उसमें दो अंग्रेज अफसर भी अपनी टीम की तरफ से खेल रहे थे। नगर एकादश में कुछ खिलाड़ी कॉलेज के और कुछ नागरिकों में से थे। मैच बड़ी कशमकश की स्थिति में चल रहा था। नगर एकादश की टीम मिलिट्री की टीम पर

विजयसिंह पथिक

हावी हो रही थी। मिलिट्री टीम के फुलबैक एलेक्जेंडर ने, जब नगर एकादश की अग्रिम पंक्ति का खिलाड़ी उनके विरुद्ध गोल दागने जा रहा था तो, उसके टँगड़ी मारकर उस खिलाड़ी को गिरा दिया। दोनों में कुछ कहा-सुनी हो गई। थोड़े ही समय बाद नगर एकादश टीम के चोट खाए हुए खिलाड़ी को बदला लेने का अवसर मिल गया। एक ऊँची गेंद को हैड करने के लिए ज्यों ही फुलबैक एलेक्जेंडर उछला तो नगर एकादश के खिलाड़ी ने भी उछलकर अपने कंधे का धक्का उसको मार दिया। अंग्रेज खिलाड़ी चारों खाने चित गिरा और कुछ समय तक उससे उठते नहीं बना। दोनों टीमों में कुछ झगड़े की स्थिति बनी और दर्शक लोग भी खेल के मैदान में कूद पड़े। झगड़ा निबटने की एक सूरत दिखाई दी और वह यह कि अंग्रेज खिलाड़ी ने कहा कि जिस खिलाड़ी ने मुझे गिराया है, वह मुझसे माफी माँग ले। हिंदुस्तानी खिलाड़ी इसके लिए तैयार नहीं था। उसका कहना था कि पहली बार आपने मुझे गिराया था। उस व्यवहार के लिए पहले आप माफी माँगें, फिर अपनी गलती के लिए मैं माफी माँगूँगा। कोई भी पक्ष झुका नहीं और वह अंग्रेज खिलाड़ी यह धौंस देकर चला गया कि मैं मामले की रिपोर्ट तुम्हारे प्रिंसिपल को करके तुम्हें कॉलेज से निकलवाकर रहूँगा। बिना कोई निर्णय निकले खेल भी समाप्त हो गया और झगड़ा भी।

भीड़ बिखर गई। नगर एकादश की टीम मैदान में बैठी हुई अपने श्रम का परिहार कर रही थी। एक अपरिचित नौजवान उस खिलाड़ी के पास पहुँचा, जिसका झगड़ा उस अंग्रेज खिलाड़ी से हुआ था। उसने खिलाड़ी को शाबाशी दी। दोनों में संक्षिप्त परिचय हुआ। शाबाशी देनेवाले नौजवान ने कहा कि मैं भी बाहर का एक खिलाड़ी हूँ और यहाँ धर्मशाला में ठहरा हुआ हूँ। दोनों में फिर दोबारा मिलने की बात भी पक्की हो गई।

नगर एकादश के उस खिलाड़ी का नाम, जिसने अंग्रेज खिलाड़ी को पछाड़ लगाई थी, भूपसिंह था। उसके चाचा बलदेवसिंह महू की छावनी में सूबेदार थे। बलदेवसिंह बहुत देशभक्त व्यक्ति थे और वे स्वयं भी अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव भड़काने का प्रयत्न कर रहे थे। जिस नौजवान ने स्वयं को बाहर का खिलाड़ी बताया था और कहा था कि मैं धर्मशाला में ठहरा हूँ, उसका नाम शचींद्रनाथ सान्याल था। शचींद्रनाथ सान्याल उत्तर भारत का एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी था और उसे महान् क्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने देशी रियासतों में घुसकर दल के योग्य नौजवानों को चुनने तथा हथियारों के संग्रह के लिए भेजा। इसी उद्देश्य से शचींद्रनाथ सान्याल इंदौर टिका हुआ था। भूपसिंह और शचींद्रनाथ सान्याल एक-दूसरे के निकट आए। अब भूपसिंह क्रांतिकारी दल का एक सदस्य था।

क्रांतिकारियों को हथियारों की समस्या हमेशा ही रहती थी। जहाँ से भी और जिस प्रकार भी हथियारों के मिलने की आशा दिखाई देती थी, क्रांतिकारी लोग उस दिशा में प्रयत्न अवश्य करते थे। शचींद्रनाथ सान्याल को हथियार प्राप्त करने की एक नई युक्ति सूझी। उन दिनों भारतीय फौजों को जो कारतूसी बंदूकें दी जाती थीं, उनमें एक बार में एक कारतूस भरकर ही चलाया जा सकता था। कुछ समय पश्चात् इंग्लैंड से नई बंदूकें आईं, जिनमें एक समय में अधिक कारतूस भरकर चलाने की व्यवस्था थी। अंग्रेजों ने ये उन्नत बंदूकें दस-दस, पंद्रह-पंद्रह रुपए की दर से उन देशी रियासतों में बेच दीं जहाँ शस्त्र कानून लागू नहीं था। इस प्रकार की बंदूकें राजस्थान में बहुत बिकी थीं। अंग्रेजों ने चालाकी यह की थी कि वे एक बंदूक के साथ केवल एक सौ कारतूस ही बेचते थे। उनका कहना था कि और कारतूस बाद में खरीदे जा सकते हैं। बाद में उन्होंने उन बंदूकों के कारतूसों की बिक्री बिलकुल बंद कर दी। जिन लोगों ने वे पुरानी बंदूकें खरीदी थीं, वे कारतूसों के अभाव में बेकार हो गईं। उन बंदूकों के स्वामी अब खरीदी हुई उन पुरानी बंदूकों को और भी सस्ते दामों में बेचने लगे।

सस्ते दामों में बिकनेवाली इन बंदूकों को खरीदने के लिए शचींद्रनाथ सान्याल ने भूपसिंह को नियुक्त किया। इतना ही नहीं, उनसे प्रेरणा पाकर भूपसिंह अजमेर के रेल कारखाने में एक मिस्त्री की जगह नियुक्त होकर वहाँ कल-पुरजों का काम सीखने लगे। उन पुरानी बंदूकों का सामान लेकर वे उस प्रकार की बंदूकें बनाने लगे, जिस प्रकार की उन्नत बंदूकें फौजियों को दी गई थीं। उन्होंने कारतूस भरना भी सीख लिया।

भारतीय क्रांतिकारियों ने उन दिनों विप्लव की बहुत व्यापक तैयारी की थी। सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में जिन प्रांतों एवं राज्यों ने स्वतंत्रता के युद्ध में सहयोग नहीं दिया था, उन्हें अपनी गलती पर पश्चात्ताप हुआ था और प्रायश्चित्त-स्वरूप इस समय विप्लव आयोजन में वे क्रांतिकारियों को सहयोग दे रहे थे। पंजाब में विप्लव आयोजन का नेतृत्व रासबिहारी बोस कर रहे थे। बंगाल में नेतृत्व ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन) को दिया गया था। उत्तर प्रदेश की फौजों को भड़काने का काम शचींद्रनाथ सान्याल ने अपने ऊपर लिया था और अब शचींद्रनाथ सान्याल ही राजस्थान में विप्लव आयोजन का दायित्व लेने का प्रशिक्षण भूपसिंह को दे रहे थे। राजस्थान के लिए यह योजना बनी थी कि खर्वा रियासत के ठाकुर गोपालसिंह एवं दामोदरदास राठी मिलकर ब्यावर क्षेत्र पर अधिकार करेंगे और भूपसिंह को अजमेर तथा नसीराबाद पर कब्जा करने का दायित्व दिया गया था। विप्लव प्रारंभ करने के लिए जो संकेत निश्चित किया गया था, वह यह था कि

अजमेर से अहमदाबाद जानेवाली गाड़ी जब २१ फरवरी, १९१५ को उस क्षेत्र से गुजरेगी तो कोई क्रांतिकारी उसमें से बाहर बम फेंककर धमाका करेगा और क्रांतिकारी दल अपना कार्य प्रारंभ कर देगा। उस क्षेत्र में भारी मात्रा में बंदूकें और गोला-बारूद लिये क्रांतिकारी लोग संकेंत की प्रतीक्षा कर रहे थे।

निश्चित समय निकल गया और कोई संकेत नहीं मिला। राजस्थान के क्रांतिकारियों को बड़ी निराशा हुई। संकेत न मिलने का कारण यह था कि पंजाब में कृपालसिंह नाम के एक देशद्रोही ने विप्लव होने की सूचना पुलिस को दे दी थी और जोरों से धर-पकड़ प्रारंभ हो गई थी। जब विप्लव आयोजन की विफलता का समाचार भूपसिंह को मिला तो उसने यह निश्चय किया कि जहाँ-जहाँ क्रांतिकारी दल तैनात हैं, उन्हें वहाँ से हटने की सूचना दे दी जाए, जिससे वे गिरफ्तारी से बच सकें।

अपने दलों को इस प्रकार की सूचना देने के पश्चात् भूपसिंह, गोपालसिंह, मोदसिंह, सबाईसिंह एवं रलियाराम—ये पाँचों क्रांतिकारी अपने साथ बहुत से हथियार और आठ-दस दिन के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री लेकर एक गढ़ी में मोरचा लेकर जा बैठे। अजमेर के अंग्रेज कमिश्नर को जब यह समाचार मिला तो वह अपने साथ पाँच सौ सैनिकों की टुकड़ी लेकर वहाँ जा पहुँचा और गढ़ी को चारों ओर से घेर लिया तथा आत्मसमर्पण के लिए क्रांतिकारियों को ललकारने लगा। क्रांतिकारियों की ओर से उत्तर आया कि हम लोग युद्ध के लिए तैयार हैं, समर्पण के लिए नहीं। कमिश्नर ने सोचा कि यदि इन लोगों ने एक-दो दिन तक युद्ध किया तो सारे प्रदेश में यह समाचार फैल जाएगा और अन्य राजपूत रियासतें इनका साथ देने के लिए हम पर आक्रमण कर बैठेंगी। अतः उसने चालाकी से काम लिया और क्रांतिकारियों को समझाया कि हम लोग तुम्हें गिरफ्तार करने या मारने के लिए नहीं आए हैं, वरन् अंग्रेजी सरकार की ओर से तुम्हारे साथ कोई समझौता करने के लिए आए हैं। क्रांतिकारी लोग भी कुछ झुके और उन्होंने कमिश्नर के सामने अपनी ये शर्तें रखीं—

१. हमें किसी जेल में न रखकर किसी ऐसे स्थान पर रखा जाए, जहाँ हमें आसपास के जंगल में शिकार करने की सुविधा हो।
२. शिकार के लिए हमें घोड़े और बंदूक-कारतूस मिलते रहें।
३. जहाँ तक हमारी दृष्टि पड़े, फौज या पुलिस हमें घेरने के लिए न रहे।

कमिश्नर ने क्रांतिकारियों की शर्तें मान लीं। उन्हें टाडगढ़ के किले में नजरबंद कर दिया गया और उन्हें सुविधा दी गई कि वे किले के चार-पाँच मील की दूरी तक शिकार खेलने जा सकते हैं। इस प्रकार उस किले में पंद्रह दिन तक

क्रांतिकारी रहते रहे।

किले के अंदर रहते हुए भूपसिंह को यह पता चला कि लाहौर षड्यंत्र केस में उसका नाम सम्मिलित किया गया है और उसकी गिरफ्तारी का वारंट निकल चुका है। उसने तय किया कि अंग्रेजों के हाथों पड़कर किसी जेल में सड़ने के स्थान पर तो यह अच्छा है कि टाडगढ़ किले की सीमा के बाहर निकलने का प्रयत्न किया जाए, भले ही युद्ध क्यों न करना पड़े। उसने अंग्रेजों के हाथों में न पड़कर, युद्ध करके वीरगति पाना ज्यादा अच्छा समझा। योजना बनी कि शिकार के बहाने सभी साथी अलग-अलग दिशाओं से भागने का प्रयत्न करें, जिससे उनको घेरनेवाले सम्मिलित होकर किसी एक का पीछा न करें। इस प्रकार की योजना से वे सभी टाडगढ़ क्षेत्र से बाहर हो गए और अंग्रेजी फौज उनकी लकीर पीटती रही।

भूपसिंह जिस ओर निकले उधर जंगल के अतिरिक्त कुछ और नहीं था। विवश होकर रात में उन्हें एक चट्टान पर सोना पड़ा। जब वे सो रहे थे तो किसी जंगली जानवर ने उनका पैर पकड़कर उन्हें घसीट ले जाना चाहा। सौभाग्य से भूपसिंह के पास एक पिस्तौल थी, वह उन्होंने उस जानवर पर दाग दी। वह जानवर भागकर जंगल में चला गया। उसके बाद भूपसिंह सो नहीं सके।

सवेरा होने पर अपने जख्मी पैर से लँगड़ाते हुए भूपसिंह आगे चल दिए। उन्हें एक गाँव दिखाई दिया और गाँव के बाहर एक घर। वे गाँव से बाहर उस घर के पास से निकल रहे थे कि एक साठ वर्ष की वृद्धा की दृष्टि उनपर पड़ी और उसने उन्हें अपने पास बुलाया। उनकी दशा देखकर उसने उन्हें कुछ खाने-पीने को दिया और अपने पुत्र को बुलाकर उनके पैर की मरहम-पट्टी कराई। उस वृद्धा के निर्देश पर उसका पुत्र चुपचाप गाँव के धोबी का घोड़ा खोल लाया और उसपर भूपसिंह को बिठाकर बिदा कर दिया। उनसे कह दिया गया कि अपने गंतव्य पर पहुँचकर वह घोड़े को खुला छोड़ दें, जिससे घोड़ा अपने मालिक के घर वापस पहुँच जाए।

उस वृद्धा माँ से बिदा लेकर भूपसिंह मेवाड़ की एक जागीर में पहुँचे। जागीरदार राष्ट्रीय विचारों का व्यक्ति था। खतरा मोल लेकर भी उसने अपने जनानखाने का एक भाग खाली कराके उसमें भूपसिंह को छिपाकर रखने की व्यवस्था कर दी।

खतरे को टला हुआ देखकर भूपसिंह ने अब अन्यत्र चले जाने का विचार किया। अब वे 'भाणा' नामक एक गाँव में पहुँचे, जहाँ डालचंद नाम का एक सेठ बहुत प्रभावशाली व्यक्ति था। डालचंद के पास बहुत बड़ा मकान था। उस मकान के एक भाग में भूपसिंह ने एक पाठशाला खोल दी और अपना नाम विजयसिंह

पथिक घोषित कर दिया। वह पाठशाला अच्छी चलने लगी। इस बीच उसके अन्य साथी कहीं-न-कहीं गिरफ्तार कर लिये गए। भाणा गाँव में आने पर भूपसिंह नाम तिरोहित हो गया और वे विजयसिंह पथिक के नाम से ही मशहूर हुए।

भाणा गाँव में भी गुप्तचरों का आवागमन होने लगा। वह स्थान भी अब विजयसिंह पथिक के लिए सुरक्षित नहीं रहा। उस क्षेत्र में 'बीजोल्याँ' नाम का एक गाँव था, जहाँ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने एक आंदोलन चला रखा था। विजयसिंह पथिक उसी गाँव में जा पहुँचे। वह एक जागीर का गाँव था और गाँववाले जागीरदार के विरुद्ध ही आंदोलन चला रहे थे। विजयसिंह पथिक के पहुँचने से आंदोलन ने तेजी पकड़ ली। बीजोल्याँ के जागीरदार ने उदयपुर पहुँचकर अंग्रेज रेजीडेंट से मामले की शिकायत की और कहा कि विजयसिंह पथिक नाम का एक कांग्रेसी कार्यकर्ता आंदोलन को भड़का रहा है। रेजीडेंट ने विजयसिंह पथिक को गिरफ्तार करके उदयपुर लाने का हुक्म दिया।

विजयसिंह पथिक को अपनी गिरफ्तारी की पूर्व सूचना मिल गई। सात महीने तक बीजोल्याँ गाँव में रहने के पश्चात् उन्होंने उस स्थान को छोड़ दिया और एक प्रभावशाली कांग्रेसी कार्यकर्ता माणिकलाल वर्मा को संगठन का प्रभारी बनाकर वे भूमिगत रहकर कार्य करने लगे।

बीजोल्याँ गाँव छोड़कर पथिक कोटा पहुँचे। कोटा में वे कोटड़ी के जागीरदार दुर्गादास के यहाँ जाकर रहे। श्री दुर्गादास प्रसिद्ध क्रांतिकारी ठाकुर केशरीसिंह के श्वसुर थे। कोटा में रहकर भी पथिकजी को बीजोल्याँ गाँव के समाचार मिलते रहे।

वह सन् १९१६ का समय था। वर्षा के अभाव में बीजोल्याँ गाँव की फसल नष्ट हो चुकी थी। किसान लोग लगान नहीं देना चाहते थे और जागीरदार लगान वसूल करना चाहता था। बीजोल्याँ गाँव के लोग कोटा पहुँचे और उन्होंने फिर आंदोलन की बागडोर अपने हाथों में लेने का अनुरोध किया। विजयसिंह पथिक कोटा में ही रहकर बीजोल्याँ के आंदोलन का संचालन करते रहे।

उन दिनों भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देशी रियासतों के मामलों में बहुत रुचि ले रही थी। गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह आंदोलन भी प्रगति पर था। सन् १९१८ में दिल्ली में कांग्रेस के अधिवेशन का आयोजन हुआ। विजयसिंह पथिक एवं उनका दल दिल्ली पहुँचा और वे लोग गणेशशंकर विद्यार्थी, चाँदकरण शारदा आदि नेताओं से मिले तथा उनके परामर्श से 'राजपूताना मध्य भारत सभा' नाम की संस्था की स्थापना की। इस संस्था के सभापति जमनालाल बजाज और उपसभापति गणेशशंकर विद्यार्थी चुने गए।

देश में उन दिनों घटनाचक्र बड़ी तेजी के साथ घूम रहा था। नमक कानून

के अंतर्गत ८ अप्रैल, १९१९ को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया और १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बाग हत्याकांड की दु:खद घटना घटित हुई।

ब्रिटिश शासन ने भारतीय नेताओं के साथ संधिचर्चा चलाने के लिए सभी राजबंदियों और कुछ क्रांतिकारियों को जेलों से मुक्त कर दिया। मुक्त होनेवालों में राजस्थान के क्रांतिकारी ठाकुर केशरीसिंह (प्रतापसिंह के पिता), ठाकुर गोपालसिंह और अर्जुनलाल सेठी भी थे। विजयसिंह पथिक की गिरफ्तारी का वारंट भी रद्द कर दिया गया।

सभी लोगों के जेल से छूट जाने के पश्चात् विजयसिंह पथिक की पहल से सेठ जमनालाल बजाज के सभापतित्व में 'राजपूताना मध्य भारत सभा' के अधिवेशन का आयोजन सन् १९२० के मार्च महीने में किया गया। इस अधिवेशन के मंच से विजयसिंह पथिक ने घोषित किया कि ब्रिटिश सरकार जिस क्रांतिकारी भूपसिंह की तलाश में थी, वह मैं विजयसिंह पथिक ही हूँ। इस रहस्य को जानकर सभी लोगों को और विशेष रूप से पुलिस को बहुत आश्चर्य हुआ।

गांधीजी चाहते थे कि वर्धा से कोई अखबार निकले, जिसमें राजस्थान की समस्याएँ अच्छा स्थान पाएँ। उन्होंने सेठ जमनालाल बजाज से परामर्श किया और श्री बजाज ने यह दायित्व विजयसिंह पथिक को दिया। 'राजस्थान केसरी' नाम का एक पत्र वर्धा से प्रकाशित होने लगा। प्रारंभ में इसका काम अर्जुनलाल सेठी और केशरीसिंह बारहठ ने देखा; पर बीजोल्याँ के कृषक आंदोलन को सफलता की मंजिल पर पहुँचाने के पश्चात् विजयसिंह पथिक ने वर्धा पहुँचकर 'राजस्थान केसरी' के प्रकाशन का कार्य स्वयं सँभाल लिया।

सन् १९२० में जब कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ तो जनता पर किए गए जुल्मों को एक प्रदर्शनी के रूप में प्रस्तुत करने का अभिनव आयोजन विजयसिंह पथिक ने किया। उस प्रदर्शनी के प्रबंधकों में स्वयं विजयसिंह पथिक, सेठ जमनालाल बजाज, गणेशशंकर विद्यार्थी, अर्जुनलाल सेठी और केशरीसिंह बारहठ थे। मध्य भारत की ओर से उसका प्रतिनिधित्व सेठ गोविंददास कर रहे थे।

सन् १९२१ में विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का आंदोलन चलाया गया तो राजस्थान ने बड़े उत्साह से इस आंदोलन में भाग लिया। विजयसिंह पथिक और चौधरी रामनारायण इसके संचालन के लिए वर्धा से राजस्थान पहुँच गए। एक नया कदम जो उस समय उठाया गया, वह यह था कि विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में 'राजस्थान सेवा संघ' नाम की संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था के संचालक मंडल में चौधरी रामनारायण, उनकी पत्नी, माणिकलाल वर्मा, नानूराम व्यास, शोभालाल गुप्त, हरिभाई किंकर और लादूराम जोशी जैसे महत्त्वपूर्ण नेता सम्मिलित थे।

ब्रिटिश सरकार की आँखों में विजयसिंह पथिक बुरी तरह से खटक रहे थे। राजद्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें सन् १९२४ में गिरफ्तार कर लिया गया। सन् १९२७ के अंत तक पथिकजी को जेल में रहना पड़ा।

क्रांतिकारी आंदोलन और कांग्रेस आंदोलन—दोनों का ही अनुभव विजयसिंह पथिक को था। राजस्थान के सम्मानित नेता श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने पथिकजी के सामने प्रस्ताव रखा कि वे शहीदों का इतिहास लिखने का गुरुतर कार्य अपने ऊपर लें। श्री पथिक ने इस कार्य को अपने हाथों में लिया था; पर वे उसे अधूरा छोड़कर सन् १९५४ में इस संसार से बिदा होकर शहीदों से मिलने के लिए चल दिए।

राजस्थान के इतिहास में 'विजयसिंह पथिक' एक और महत्त्वपूर्ण नाम के रूप में जुड़ गया।

□

★ विष्णु गणेश पिंगले

विष्णु गणेश पिंगले

१६ नवंबर, १९१५। प्रात:काल का समय है। लाहौर की सेंट्रल जेल के फाँसी घर के सामने एक तेजस्वी व्यक्ति को हथकड़ियाँ डालकर खड़ा किया गया है। उस व्यक्ति का नाम है विष्णु गणेश पिंगले। ऊँचा-पूरा कद, खिली धूप जैसा गौर वर्ण, चमकती हुई आँखें, उन्नत ललाट और मुख पर संकल्पों का गांभीर्य—इसी प्रकार की रूप-रेखाएँ थीं पिंगले की।

फाँसी के तख्ते पर खड़ा करके पिंगले से पूछा गया—"कुछ कहना चाहते हो?"

"दो मिनट की छुट्टी भगवान् से प्रार्थना करने के लिए चाहता हूँ।" पिंगले की फरमाइश थी।

हथकड़ियाँ खोल दी गईं। पिंगले ने आकाश की ओर दृष्टि की और हाथ जोड़कर बोला—

"हे भगवान्! तुम हमारे हृदयों को जानते हो। जिस पवित्र कार्य के लिए

हम लोग अपने-अपने जीवन की आहुतियाँ दे रहे हैं, उसकी रक्षा का भार तुमपर है। भारत स्वाधीन हो, यही कामना है।''

प्रार्थना पूरी हो चुकी थी। जल्लाद ने फाँसी का फंदा पिंगले के गले में डालना चाहा। पिंगले ने उसे टोककर कहा—

''फंदा मैं ही अपने गले में डालूँगा। भारत के विजय की यह माला मैं अपने हाथों से ही पहनूँगा।''

पिंगले ने फंदा अपने गले में डाल लिया और जयघोष किया—

''भारत माता की जय!''

तख्ता खींच दिया गया। एक झटका लगा और पिंगले का शरीर रस्सी के सहारे झूलता हुआ दिखाई दिया।

पिंगले भारत माता के उन लाड़लों में से था, जिनके भावुक हृदय में देश के लिए तड़प थी। उसके मन में फिरंगियों के हाथ से देश को स्वाधीन करने की धुन सवार थी। छत्रपति शिवाजी की वीरभूमि का यह मराठा युवक भारत माता को बंदिनी के रूप में कैसे देख सकता था! पूना के पहाड़ी प्रदेश में पिंगले ने बचपन की हवा खाई और यौवन के पदार्पण के साथ ही अमेरिका जा पहुँचा। वहाँ वह सीएटल में पढ़ने लगा। जब गदर पार्टी के क्रांतिकारी भारत-मुक्ति का संकल्प लेकर स्वदेश लौटने लगे तो पिंगले भी उस जत्थे में सम्मिलित हो गया और कलकत्ता पहुँच गया।

घरवालों ने आशाएँ लगा रखी थीं, पिंगले अमेरिका से इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा प्राप्त करके लौटेगा और घर में रुपयों-पैसों का पुल बँध जाएगा। उन्हें क्या पता था कि बेटा यौवन के सपनों में बलिदान का रंग भर रहा है।

अमेरिका से लौटकर पिंगले ने क्रांति की मशाल हाथ में उठाई और उसे लिये-लिये भारत-भर में घूमने लगा। पंजाब के क्रांतिकारियों के साथ तो उसका संपर्क अमेरिका में ही हो गया था। जब वह कलकत्ता उतरा तो बंगाल के क्रांतिकारियों से मेल-जोल बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ दिन वहीं रुक गया। रासबिहारी बोस एवं शचींद्रनाथ सान्याल से उसका परिचय हुआ और वह रासबिहारी बोस का विश्वासपात्र बन गया। पिंगले को पाकर रासबिहारी बोस के दल की क्या प्रतिक्रिया हुई, यह शचींद्रनाथ सान्याल के शब्दों में पढ़िए—

'पिंगले के आ जाने से हमें इतनी खुशी हुई कि जैसे कुबेर का खजाना हाथ लग गया हो। उसका शरीर हट्टा-कट्टा और मजबूत था। रंग गोरा था। आँखों एवं चेहरे से चतुराई और योग्यता की झलक मिलती थी। इस योग्यता ने उसके लिए हमारे दिलों में स्थान बना लिया।'

पंजाब की पुकार पर पिंगले रासबिहारी बोस को लेकर अमृतसर जा पहुँचा। कुछ दिन बाद वे लाहौर पहुँच गए। पिंगले के शरीर पर लुंगी फबने लगी। सपाटे की पंजाबी बोलते हुए सुनकर कौन कह सकता था कि वह पंजाबी नहीं है! सरदार करतारसिंह सराबा के साथ मिलकर योजना बनी। २१ फरवरी, १९१५ विप्लव की तिथि निश्चित हो गई।

मेरठ छावनी में विद्रोह भड़काने का काम पिंगले को दिया गया था। वह १२ नं. के रिसाले के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए वहाँ पहुँच गया। रिसाले के जमादार नादिरखान ने यह बात अपने अफसरों को बता दी। पिंगले को फाँसने के लिए जाल तैयार किया गया। जमादार ने उसे बताया कि बनारस में मेरा संपर्क एक बंगाली क्रांतिकारी के साथ है, जिसके पास बहुत से बम हैं। बम मिलने के लालच में पिंगले उस जमादार के साथ बनारस चला गया। वहाँ वे लोग एक बंगाली से मिले। उसने बताया कि मेरे पास तीन सौ बम थे, जिनमें से दस बम छोड़कर शेष सभी अन्य स्थानों के क्रांतिकारियों को दे दिए गए हैं। वे दस बम एक टीन के डिब्बे में भरकर पिंगले उस जमादार के साथ मेरठ लौट गया। मेरठ छावनी में पहुँचते ही जमादार नादिरखान ने पिंगले को बमों सहित गिरफ्तार करा दिया।

लाहौर षड्यंत्र केस के अन्य अभियुक्तों के साथ उसपर मुकदमा चला और देशभक्ति के पुरस्कार में उसे फाँसी का दंड मिला।

रासबिहारी बोस ने अपनी डायरी में लिखा—

'यदि मैं जान पाता कि पिंगले अब मुझे फिर न मिल सकेगा तो उसके लाख आग्रह करने पर भी उसे अपने पास से न जाने देता। उस सुदृढ़ गोरे शरीरवाले वीर के अभिमान भरे शब्द कि 'मैं एक वीर सैनिक की हैसियत से केवल कार्य करना जानता हूँ' अभी भी मेरे कानों में गूँजते रहते हैं। और उसकी तीव्र बुद्धि का परिचय देनेवाली बड़ी-बड़ी आँखें भुलाने पर भी नहीं भुलाई जातीं।'

□

★ वीरेंद्र

कलकत्ता के क्रांतिकारियों ने योजना बनाई कि शंकारी टोला के पोस्ट ऑफिस को लूटा जाए और वहाँ से जो धन मिले, उससे हथियार खरीदे जाएँ। योजना बन गई और ३ अगस्त, १९२३ को चार क्रांतिकारी उस समय पोस्ट ऑफिस पहुँच गए जब पोस्ट मास्टर दिन-भर की आय का लेखा-जोखा कर

रहा था। क्रांतिकारियों ने उसे वहाँ से हट जाने के लिए कहा; पर उसने अकड़कर उत्तर दिया—

''मैंने ब्रिटिश हुकूमत का नमक खाया है। मैं उसका पैसा तुम लोगों को नहीं लेने दूँगा।''

यह बात सुनकर वीरेंद्र नाम के क्रांतिकारी ने कहा—

''तुमने ब्रिटिश हुकूमत का नमक खाया है तो एक गोली भारतीय क्रांतिकारी की भी खा लो।''

यह कहकर वीरेंद्र ने पोस्ट मास्टर पर गोली चला दी। पोस्ट मास्टर की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। पुलिस द्वारा पीछा करने पर वीरेंद्र पकड़ा गया। उसपर मुकदमा चला और उसे फाँसी दे दी गई।

□

★ शचींद्रनाथ सान्याल

लगभग अठारह वर्ष का एक बंगाली युवक एक अन्य महाराष्ट्रियन युवक के साथ पंजाब के लुधियाना नगर की ओर ट्रेन से यात्रा कर रहा था। दोनों ही अंग्रेजी वेशभूषा में थे और जरूरत पड़ने पर हिंदी में बातें कर लेते थे। महाराष्ट्रियन युवक पंजाबी भाषा में संभाषण करने में पटु था और जब कभी कोई सहयात्री पंजाबी भाषा में कुछ पूछता तो महाराष्ट्रियन युवक ही उसे पंजाबी में उत्तर दे देता था। किसी छोटे स्टेशन से एक अन्य युवक गाड़ी के उसी डिब्बे में सवार हुआ, जिसमें ये दो युवक यात्रा कर रहे थे। रास्ते में इन लोगों में आपस में बहुत कम बातचीत हुई; पर जो भी बातचीत हुई उससे ऐसा लगा जैसे नवागंतुक महाराष्ट्रियन युवक से पूर्व परिचित है।

शचींद्रनाथ सान्याल

लुधियाना स्टेशन आया और चला गया, पर वे युवक वहाँ नहीं उतरे। लुधियाना के अगले स्टेशन पर जब ट्रेन रुकी तो वे तीनों युवक वहाँ उतर गए। सामान उन लोगों के पास कुछ अधिक नहीं था। वे लोग प्लेटफॉर्म से बाहर निकलकर पैदल चलने लगे और चलते-चलते एक ऐसे भवन पर पहुँचे, जो शायद धर्मशाला की तरह इस्तेमाल होता हो; पर उस समय वहाँ एक व्यक्ति को छोड़कर और कोई नहीं था। वह व्यक्ति उन तीन युवकों में से दो से परिचित था और दुआ-सलाम के बाद उसने उन्हें ऊपर जाने का रास्ता दिखा दिया। वे लोग ऊपर पहुँच गए। धीरे-धीरे वहाँ और लोग भी आने लगे और दस-बारह व्यक्ति उसी स्थान पर

पहुँच गए, जहाँ वे तीन युवक बैठे थे। बातचीत का सिलसिला उस युवक ने प्रारंभ किया, जो बीच के किसी स्टेशन से ट्रेन में सवार हुआ था—

''साथियो! हमें खुशी है कि आखिर प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस हमारे बीच आ पहुँचे हैं।''

युवक का कथन और आगे बढ़ता, पर बीच में ही महाराष्ट्रियन युवक ने उसे टोककर कहना प्रारंभ किया—

''साथियो! मैं आपको बता दूँ कि हमारे बीच आए हुए साथी प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस नहीं हैं। ये उनके अत्यंत विश्वस्त लेफ्टिनेंट शचींद्रनाथ सान्याल हैं···।''

यह कथन सुनकर शचींद्रनाथ सान्याल को छोड़कर अन्य सभी व्यक्तियों के चेहरों पर निराशा के भाव स्पष्ट रूप से उभर आए और सबसे अधिक निराशा उस युवक के चेहरे पर देखी गई, जिसने अपने नए साथी के स्वागत में बोलना प्रारंभ किया था। उस युवक का नाम करतारसिंह सराबा था। उसने सान्याल को लाए अपने साथी विष्णु गणेश पिंगले से बेरुखी के लहजे में एक प्रश्न कर डाला—

''तो आपने मुझे ट्रेन में क्यों नहीं बताया कि ये रासबिहारी बोस न होकर शचींद्रनाथ सान्याल हैं?''

विष्णु गणेश पिंगले नाम के महाराष्ट्रियन युवक ने नम्रता से कहा—

''मेरे भाई, ट्रेन में अगर हम लोग इतने खुलकर बातें करते और यदि हमारे द्वारा रासबिहारी बोस नाम का उल्लेख बार-बार होता तो क्या लोग हमारी बातों को समझते नहीं और क्या हम लोग क्रांतिकारी समझकर पकड़ न लिये जाते? आज रासबिहारी बोस के नाम को कौन नहीं जानता!''

करतारसिंह सराबा को अपनी गलती महसूस हुई; पर उसकी निराशा दूर नहीं हुई। वह निराशा-मिश्रित बेरुखी के साथ फिर बोल उठा—

''हमें तो केवल रासबिहारी बोस की ही आवश्यकता है और उन्हींको लाने के लिए तो हमने आपको भेजा था।''

इस समय तक बंगाली युवक कुछ बोला नहीं था। उसने इतना तो समझ लिया था कि उपस्थित सभी लोग क्रांतिकारी हैं और वे रासबिहारी बोस को बहुत चाहते हैं। उसने स्थिति स्पष्ट करते हुए अपना वक्तव्य दिया—

''थोड़ी ही देर में आप लोगों के व्यवहार से जो मैं समझ सका हूँ, वह यह है कि आप लोगों में हौसले और कुछ कर गुजरने के संकल्प की कमी नहीं है; फिर भी एक क्रांतिकारी के नाते आप लोगों में उतावलापन नहीं होना चाहिए। अभी पिंगले ने कहा भी है कि क्रांतिकारी को फूँक-फूँककर कदम रखना चाहिए। मैं

आपको बताऊँ कि दादा, मेरा आशय रासू अर्थात् रासबिहारी बोस से है; क्योंकि हम लोग उन्हें इसी प्रकार संबोधित करते हैं। हाँ, तो मैं कह रहा था कि यहाँ आने के पहले दादा ने मुझे इसलिए भेजा है कि मैं यहाँ की परिस्थितियों की पूरी जानकारी उन्हें दूँ और तब वे यहाँ आने का निर्णय लें।''

शचींद्रनाथ सान्याल के इस वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए विष्णु गणेश पिंगले ने कहा—

''मैं भी आप लोगों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हमारे बीच आए हुए साथी सान्याल बाबू श्री रासबिहारी बोस के बिलकुल दाहिने हाथ जैसे ही हैं। ये स्वयं भी उत्तर भारत के बहुत बड़े क्रांतिकारी हैं और यहाँ से वापस जाकर ये श्री रासबिहारी बोस को यहाँ आने के लिए अवश्य प्रेरित करेंगे।''

पिंगले के इस कथन का समर्थन शचींद्रनाथ सान्याल ने स्वयं किया—

''मैं आपको पूरा यकीन दिलाता हूँ कि रासू दा आप लोगों के बीच में अवश्य आएँगे और मेरे वापस जाने पर वे यहाँ बहुत शीघ्र ही आएँगे। वे आएँ, उसके पहले यहाँ की तैयारियों के संबंध में भी तो हम लोग कुछ चर्चा कर लें।''

पिंगले और सान्याल के वक्तव्यों से पंजाब के क्रांतिकारियों की निराशा दूर हो चुकी थी और उन्हें यह समझ में आ गया कि रासबिहारी बोस जैसे घोर क्रांतिकारी को यों ही कहीं उठकर नहीं चल देना चाहिए। उन्हें यह भी भरोसा हो गया कि शचींद्रनाथ सान्याल भरोसे के आदमी हैं और उनके साथ खुलकर बातचीत की जा सकती है। बातचीत का सिलसिला चल पड़ा। ज्यादातर बातचीत करतारसिंह सराबा और शचींद्रनाथ सान्याल के बीच हुई—

''हम आश्वस्त हैं कि दादा रासबिहारीजी हमारे बीच शीघ्र ही आएँगे; पर हम यह जानना चाहते हैं कि इस विप्लव आयोजन में बंगाल हमारी क्या सहायता करेगा?''

''देखिए, हम लोग बंगाली अवश्य हैं, पर हम दोनों का कार्यक्षेत्र उत्तर भारत है। फिर भी बंगाल से हमारा संपर्क है और कोई भी सहायता देने में बंगाल कभी पीछे नहीं रहेगा; पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि बंगाल से आप किस प्रकार की सहायता चाहते हैं?''

''हमारे पास काम करनेवाले आदमियों की कमी तो नहीं है। अगर हमारे पास कोई कमी है तो वह है हथियारों को, और विशेष रूप से रिवॉल्वरों की। बंगाल के पास तो बम भी हैं। हम लोग चाहते हैं कि हमें फिलहाल बंगाल से तैयारशुदा बम मिल जाएँ और हमारे बंगाली भाई हमें बम बनाना सिखा भी दें।''

''बंगाल आपको बम अवश्य देगा और आप लोगों को बनाना भी सिखाएगा;

पर वहाँ से रिवॉल्वर आपको अधिक संख्या में नहीं मिलेंगे।''

''हमें तो बताया गया है कि बंगाल ने पिस्तौलों और रिवॉल्वरों का बहुत बड़ा जखीरा इकट्ठा कर रखा है। बंगाल से आया हुआ कोई व्यक्ति हमारे एक साथी को बंगाल ले भी गया है। उसने वहाँ से पाँच सौ रिवॉल्वर देने का वादा किया है।''

''मैं आपको फिर समझा देना चाहता हूँ कि आप लोग किसी भी नए आदमी पर भरोसा न करें, अन्यथा उसके चकमे में आकर पछताना पड़ेगा। इस प्रकार का कोई व्यक्ति आपसे धन भी ले सकता है और आपको पकड़ा भी सकता है।''

''तो क्या बंगाल गया हुआ हमारा साथी पाँच सौ रिवॉल्वर लेकर नहीं आएगा?''

''मैं कहता हूँ पाँच सौ तो क्या, वह पचास रिवॉल्वर लेकर भी नहीं आ सकता। अव्वल तो वहाँ इतने हथियार हैं ही नहीं और फिर बंगाल के क्रांतिकारी हथियारों का व्यापार नहीं करते। हम लोगों के पास जितने हथियार और बम होंगे वे हम आपको बिना मूल्य लिये ही देंगे। अब तो हमें बंगाली और पंजाबी की भाषा में सोचना ही नहीं चाहिए। हम सब लोग भारतवासी हैं और सब लोग मिलकर ही भारत माता को आजाद करने का प्रयत्न करेंगे।''

शचींद्रनाथ सान्याल की यह बात सुनकर सभी के मन की कली-कली खिल गई। खुले दिल से विप्लव की तैयारियों की चर्चा हुई। रासबिहारी बोस के वहाँ पहुँचने तक की योजना पर निर्णय ले लिया गया। लोगों ने आपस में कुछ जिम्मेदारियाँ भी बाँट लीं।

पंजाब के क्रांतिकारियों के इस दल में गदर पार्टी के लोग अधिक थे। पंजाब के जो लोग धंधा करने और पैसा कमाने के लिए अमेरिका या कनाडा गए हुए थे, वहाँ उन लोगों ने भारत को स्वतंत्र करने के लिए एक संस्था संगठित की थी, जिसे 'गदर पार्टी' का नाम दिया गया था। गदर पार्टी के हजारों सदस्य जिनमें अधिकांश सिख थे, जत्थों के रूप में अमेरिका और कनाडा से भारत पहुँचे थे। वे कमाया हुआ अपना अपार धन भी देश कार्य के लिए अपने साथ लेकर आए थे। भारी मात्रा में हथियार लेकर भी वे चले थे। उन लोगों में जोश-खरोश की कमी नहीं थी; यदि कुछ कमी थी तो वह थी क्रांतिकारी सूझबूझ की। उनके जहाज जिन-जिन देशों से गुजरते थे, वे वहाँ के भारतीयों से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह भड़काने का प्रयत्न करते थे। वे खुल्लमखुल्ला यह घोषित करते चलते थे कि हम लोग आजादी की लड़ाई लड़ने भारत जा रहे हैं।

नतीजा यह होता था कि इस प्रकार की खबरें भारत में ब्रिटिश सरकार के पास पहले ही पहुँच जाती थीं और जब इनके जहाज भारतीय बंदरगाहों पर पहुँचते थे तो इन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था और इनका धन जब्त कर लिया जाता था। हथियार तो उन लोगों को समुद्र में ही डुबा देने पड़ते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे, जो गिरफ्तारी से बचकर पंजाब पहुँच जाते थे और वहाँ विप्लव भड़काने का प्रयत्न करते थे। इसी प्रकार के व्यक्तियों में से थे करतारसिंह सराबा, विष्णु गणेश पिंगले, पृथ्वीसिंह और रामरक्खा इत्यादि। इन सभी ने रासबिहारी बोस की बहुत ख्याति सुन रखी थी और विप्लव योजना में वे उनके नेतृत्व के आकांक्षी थे। अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए ही उन्होंने रासबिहारी बोस को आमंत्रित किया था; पर उनके स्थान पर पहले पहुँचे शचींद्रनाथ सान्याल। शचींद्रनाथ सान्याल को पाकर भी पंजाब के क्रांतिकारी बहुत संतुष्ट हुए और वे उनके निर्देशानुसार तैयारियाँ तथा रासबिहारी बोस की प्रतीक्षा करने लगे।

पंजाब यात्रा के पश्चात् शचींद्रनाथ सान्याल बनारस वापस पहुँच गए। उन्होंने रासबिहारी बोस को बताया कि पंजाब के क्रांतिकारी साथियों के हौसले बहुत ऊँचे हैं और उन्हें सही नेतृत्व की आवश्यकता है। रासबिहारी बोस पंजाब जाने के लिए तैयार हो गए।

जिन दिनों रासबिहारी बोस बनारस में रह रहे थे, उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकल चुका था। शचींद्रनाथ सान्याल जैसे भरोसे के साथियों के बल पर वे बनारस में निर्विघ्न रह रहे थे। पुलिस की नजर तो शचींद्रनाथ पर भी थी और उनपर हर समय निगरानी रखी जा रही थी; पर उनके विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ था। उनके घर के आसपास भी पुलिस का पहरा रहता था। पर इतना होने पर भी शचींद्रनाथ सान्याल रासबिहारी एवं अन्य क्रांतिकारियों से मिल लेते थे और आवश्यकता पड़ने पर बम आदि इधर से उधर पहुँचा देते थे। पुलिस को चकमा देने में वे माहिर हो गए थे।

रासबिहारी बोस ने बंगाल के एक प्रभावशाली क्रांतिकारी ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन) को बनारस बुलवाया और उनको तथा शचींद्रनाथ सान्याल को लेकर विप्लव योजना निश्चित कर ली। शचींद्रनाथ ने बनारस की फौजी बैरकों में चक्कर लगा-लगाकर फौजियों को विप्लव के लिए तैयार कर लिया। ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी ने बंगाल में विप्लव भड़काने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। रासबिहारी बोस पंजाब पहुँच गए। कुछ दिन अमृतसर में रहने के पश्चात् वे लाहौर पहुँच गए। विप्लव की तिथि २१ फरवरी, १९१५ तय की गई। दुर्भाग्य यह हुआ कि एक भेदिए कृपालसिंह ने पुलिस को सारी सूचनाएँ दे दीं और विप्लव योजना विफल हो गई।

जोरों से धर-पकड़ प्रारंभ हुई और विप्लव दल के अधिकांश सदस्य गिरफ्तार हो गए। अपनी सूझबूझ के कारण रासबिहारी बोस पुलिस की आँखों से बचते हुए सकुशल बनारस जा पहुँचे।

पहुँचने को तो रासबिहारी बोस बनारस पहुँच गए; पर पंजाब, उत्तर प्रदेश और बंगाल की पुलिस को उनकी बड़ी तलाश थी। शचींद्रनाथ सान्याल ने उन्हें परामर्श दिया कि वे कुछ समय के लिए फ्रांसीसी बस्ती के नगर चंद्रनगर चले जाएँ। उनका परामर्श मानकर रासबिहारी बोस चंद्रनगर चले गए। शचींद्रनाथ सान्याल की गिरफ्तारी का वारंट जारी हो गया और पुलिस बड़ी सक्रियता से उनकी खोज करने लगी। अपने ही एक राजस्थानी साथी प्रतापसिंह के साथ वे दिल्ली पहुँचे और पंद्रह दिन दिल्ली ठहरकर उन्होंने दल के पुनर्गठन का प्रयत्न किया। वहाँ वे बीमार पड़ गए और उनके साथी प्रतापसिंह के साथ ही बंगाल जा पहुँचे।

कलकत्ता के निकट के एक गाँव में शचींद्रनाथ सान्याल को रहना पड़ा। इस बीच उन्होंने प्रतापसिंह को राजस्थान के लिए बिदा कर दिया। स्वस्थ होने के बाद उन्होंने पहला काम यह किया कि बहुत आग्रह करके रासबिहारी बोस को जापान भेज दिया। यह भी तय हुआ कि कुछ समय पश्चात् वे स्वयं भी जापान चले आएँगे; पर इसी बीच दल के ही एक साथी के विश्वासघात के कारण वे गिरफ्तार हो गए और उन्हें आजन्म कालापानी की सजा सुना दी गई।

वह अगस्त का महीना और बरसात के दिन थे, जब शचींद्रनाथ सान्याल को कालापानी जानेवाले जहाज पर लादा गया। शचींद्रनाथ सान्याल भावनायुक्त मानव थे; पर उनके लिए 'लादना' शब्द ही अधिक उपयुक्त है; क्योंकि उनके पैरों में बेड़ियाँ एवं हाथों में हथकड़ियाँ थीं और उन्हें जहाज के तलघर में सामान की तरह ठूँस दिया गया था। वे ऊपर जाकर समुद्र का दृश्य नहीं देख सकते थे। उन्हें ऐसा लगता रहा जैसे उन्हें किसी महानाश के गर्त में धकेला जा रहा हो। चार दिन तथा तीन रात जहाज चलता रहा और १८ अगस्त, १९१६ को वे कालापानी जा पहुँचे।

कालापानी में कत्ल आदि अपराधों के कैदी भी रहते थे; पर उनसे भी अधिक भयानक माना जाता था क्रांतिकारी बंदियों को। शचींद्रनाथ सान्याल से पहले मानिकतल्ला बम कांड में सजा पाकर वारींद्रकुमार घोष, हेमचंद्र दास और उपेंद्र कालापानी पहुँच चुके थे। जेल में एक छोटा-सा छापाखाना भी था, जिसके संचालन का काम वारींद्रकुमार घोष को दे दिया गया था। उसी छापेखाने में हेमचंद्र दास, उपेंद्र और शचींद्र को भी लगा दिया गया। काम कठिन नहीं था, फिर भी जेल की मनहूसियत तो उनके साथ थी। अक्खड़ स्वभाव के कारण शचींद्रनाथ का झगड़ा जेल के अधिकारियों के साथ अकसर हो जाया करता था

और जेल के अधिकारियों के साथ झगड़ा करने का जो परिणाम होता है, वह भुगतना ही पड़ता था।

प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था और उसमें इंग्लैंड विजयी रहा था। इस खुशी में जेलों से कुछ कैदियों को रिहा किया गया। यह शचींद्रनाथ सान्याल का सौभाग्य था कि आजन्म कालापानी की सजा प्राप्त होने पर भी चार वर्ष पश्चात् ही उन्हें कालापानी के नारकीय जीवन से छुट्टी मिल गई। उनके साथ वारींद्रकुमार घोष, हेमचंद्र दास एवं उपेंद्र की भी रिहाई हुई और वे सब एक ही जहाज से भारत लौटे। वापसी यात्रा में वे हथकड़ियों-बेड़ियों से मुक्त थे और डेक के ऊपर घूम-फिरकर समुद्री नजारों का आनंद ले सकते थे।

कालापानी से छूटने के पश्चात् शचींद्रनाथ सान्याल कलकत्ता पहुँचे और फिर बनारस। आजीविका के लिए उन्हें जमशेदपुर में कोई काम मिल गया। इस बीच उनकी शादी भी हो गई। सांसारिक बंधन शचींद्रनाथ सान्याल को कर्तव्यच्युत न कर सके। इस बार इलाहाबाद पहुँचकर वे क्रांति दल का पुनर्गठन करने लगे। इलाहाबाद में कुछ नए क्रांतिकारियों से उनका परिचय हुआ; जिनमें राजेंद्र लाहिड़ी, अशफाक उल्ला खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल प्रमुख हैं। सरदार भगतसिंह से भी उनका परिचय हो गया।

उत्तर भारत में शचींद्रनाथ सान्याल ने क्रांतिकारी संगठन का काफी विस्तार किया और इस संगठन की लगभग तेईस शाखाएँ विभिन्न नगरों में स्थापित की गईं। इस नवगठित क्रांतिकारी दल का नाम 'दि हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया। दल का संविधान तैयार किया गया। दल के पाँच विभाग किए गए, जिनके अंतर्गत प्रचार, भरती, अर्थ-संग्रह, शस्त्र-संग्रह और विदेशों में क्रांति का प्रसार आदि कार्य सम्मिलित थे।

अपने इस नए संगठन के कारण शचींद्रनाथ सान्याल का काम बहुत बढ़ गया और वे पुलिस की नजरों में भी चढ़ गए। आखिर उन्होंने निश्चय किया कि हमेशा के लिए फरार हो जाना चाहिए। अपनी पत्नी और दो बच्चों को लेकर वे उन्हें चंद्रनगर छोड़ आए और स्वयं कलकत्ता रहकर संगठन को दृढ़ करने लगे। सरकार के विरुद्ध कुछ परचे छपवाकर उन्होंने बँटवाए, जिनकी कुछ प्रतियाँ विदेशों में भी पहुँचीं। इस अपराध के फलस्वरूप १९२५ में उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया और दो वर्ष के कठिन कारावास का दंड सुनाया गया। इसी बीच उनका नाम काकोरी कांड के साथ जोड़ दिया गया और उन्हें दूसरी बार आजन्म कालापानी की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया।

भारत में कांग्रेस के आंदोलन ने तेजी पकड़ी और कुछ प्रांतों में कांग्रेसी

मंत्रिमंडल बनने की बात पक्की हो गई। कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के सामने यह शर्त रखी कि सभी राजबंदियों को जेलों से मुक्त कर दिया जाए। इस सुविधा के अनुसार शचींद्रनाथ सान्याल सन् १९३६ में कालापानी की काल कोठरी से मुक्त कर दिए गए।

कालापानी के कारावास में रहते हुए शचींद्रनाथ सान्याल क्षय रोग से ग्रस्त हो गए। भारतवर्ष में उन्हें भवाली के स्वास्थ्यगृह में रखा गया; पर कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला। भवाली से वे अपने भाई के पास गोरखपुर पहुँच गए और सन् १९४५ में वहीं उनका शरीरांत हो गया। इस प्रकार दो-दो बार कालापानी के कारावास का दंड भुगतनेवाला और अपनी हर साँस का उपयोग देश की आजादी के लिए करनेवाला यह महावीर स्वतंत्रता प्राप्ति के दो वर्ष पूर्व ही इस संसार से बिदा होकर एक प्रेरक याद हमारे लिए छोड़ गया।

□

★ शारदाकांत चक्रवर्ती

बंगाल का शासन जब क्रांतिकारियों का दमन कर रहा था तो वह बालक, जवान और वृद्ध में भेद नहीं कर रहा था। एक बार उसे संदेह हो जाए कि इसका संबंध क्रांतिकारियों से है, फिर तो वह जेल में ही दिखाई देता था।

शारदाकांत चक्रवर्ती की उम्र साठ को पार कर चुकी थी। वे बंगाल के जैसोर जिले के रहनेवाले थे; लेकिन अपना आखिरी समय सुधारने के उद्देश्य से बनारस में जा बसे थे। शारदाकांत चक्रवर्ती अत्यंत धार्मिक व्यक्ति थे। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ और अध्ययन में ही व्यतीत होता था। वे बहुत उदार व्यक्ति भी थे। कई नौजवानों को वे उनके अध्ययन के लिए आर्थिक सहायता देते रहते थे। कुछ लोगों को तो वे अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए भी पैसा देते थे।

जिन नौजवानों को शारदाकांत चक्रवर्ती आर्थिक सहयोग देते थे, उनमें से कुछ का संबंध क्रांतिकारियों से भी था। पुलिस ने एक-एक करके उन सभी नौजवानों को गिरफ्तार कर लिया। नौबत यहाँ तक आ गई कि शारदाकांत चक्रवर्ती को भी गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार करके पहले तो उन्हें कलकत्ता भेजा गया, लेकिन कुछ दिन पश्चात् उन्हें जैसोर जिले के अलफाडाँगा स्थान पर भेज दिया गया। वह स्थान अपनी खराब जलवायु के लिए बदनाम था। कुछ दिन पश्चात्

ही शारदाकांत चक्रवर्ती को भयंकर मलेरिया हो गया। एक तो उनकी अवस्था बहुत अधिक थी और दूसरी बात यह कि उनके साथ बहुत निर्दयता का व्यवहार किया जा रहा था। जब बहुत दिनों तक उनके रिश्तेदारों को उनके विषय में कोई समाचार नहीं मिले तो उन्होंने पुलिस अधिकारियों को जवाबी तार दिए। एक जवाबी तार का उत्तर उनके एक रिश्तेदार को दिया गया कि शारदाकांत चक्रवर्ती का देहावसान ४ दिसंबर, १९१८ को हो गया। पता नहीं पुलिस ने उनका अंतिम संस्कार किस प्रकार किया।

□

★ शिरीषचंद्र मित्र

कलकत्ता के क्रांतिकारियों ने एक बहुत ही दुस्साहसपूर्ण कार्य कर डाला। उन्होंने कलकत्ता की एक अंग्रेज फर्म 'रोडा एंड कंपनी' द्वारा मँगाई गई हथियारों की खेप में से एक गाड़ी भरकर हथियारों की पेटियाँ बहुत सफलतापूर्वक लूट लीं और वे हथियार बंगाल के सारे क्रांतिकारियों में बाँट दिए गए। हथियारों की इस लूट में शिरीषचंद्र मित्र भी सम्मिलित था। शिरीषचंद्र मित्र अपने मित्रों और पुलिस में भी 'हाबू' के नाम से अधिक जाना जाता था।

कलकत्ता की पुलिस शिरीषचंद्र उर्फ हाबू के पीछे पड़ गई। उसने कलकत्ता में अपने छिपने के कई स्थान बदले; लेकिन पुलिस भी उन स्थानों का पता लगाती गई। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि जब उसने अपना स्थान छोड़ा, उसके दो मिनट बाद ही पुलिस वहाँ पहुँच गई। शिरीषचंद्र मित्र को बचने के लिए तो ये दो मिनट ही काफी होते थे। एक बार तो पुलिस ने उसको देख भी लिया; लेकिन शिरीषचंद्र मित्र ने कलकत्ता की गलियों के इतने चक्कर खिलाए कि आखिर पस्त होकर उसने पीछा छोड़ दिया।

शिरीषचंद्र ने सोचा कि पुलिस के हाथों पड़ने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि कुछ दिन के लिए भारत से बाहर जाकर पुलिस की तलाश बंद की जाए। उसने जंगल के रास्ते से चीन जाने का निश्चय किया। कलकत्ता की पुलिस को चकमा देने में तो वह सफल हो गया था, परंतु सीमांत प्रहरियों को चकमा नहीं दे सका और एक सीमांत सैनिक की गोली का शिकार होकर वह दुनिया छोड़कर ही चला गया।

□

★ संजीवचंद्र रे
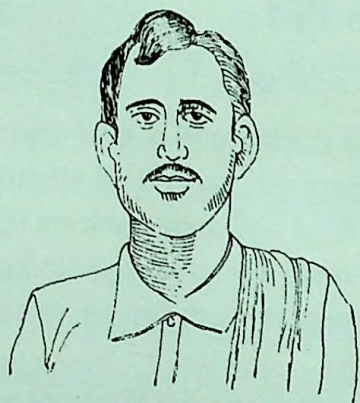
संजीवचंद्र रे

मैमनसिंह जिले के किशोरगंज नगर के एक मकान पर पुलिस दारोगा ने दस्तक दी। गृहस्वामिनी ने दरवाजा खोला और सामने पुलिस को देख उसे आश्चर्य हुआ। उसने सामने खड़े दारोगा से पूछा—

''कहिए?''

''क्या संजीवचंद्र रे यहीं रहता है?''

''जी हाँ।''

''क्या इस समय वह घर पर है?''

''जी नहीं।''

''उसे खोजने के लिए हम आपके मकान की तलाशी लेंगे।''

''यह आप क्यों कर रहे हैं?''

''पहले यह बताइए कि संजीवचंद्र रे आपका कौन है?''

''वह मेरा पुत्र है।''

''तो सुनिए, वह क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेता है और उसके विरुद्ध इनटर्नशिप वारंट है। हम उसे गिरफ्तार करने आए हैं।''

''पर मेरी जानकारी में तो वह ऐसे किसी कार्य में भाग नहीं लेता।''

''आपके इस कथन से हमें मतलब नहीं। हम आपके मकान की तलाशी लेंगे।''

''हाँ, आप मकान की तलाशी ले सकते हैं।''

पुलिस दारोगा और उसके साथ के सिपाहियों ने मकान का कोना-कोना छान डाला; पर संजीव रे का पता नहीं चला। जाते-जाते पुलिस दारोगा कहता गया—

''आपका पुत्र घर आए तो उसे थाने पर हाजिर होने के लिए कह दीजिएगा। हम यह बात उसीकी भलाई के लिए कह रहे हैं।''

संजीवचंद्र स्वयं पुलिस थाने में उपस्थित नहीं हुआ। एक दिन वह किशोरगंज नगर से बाहर अपनी साइकिल पर जा रहा था तो पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तारी के समय उसके झोले में एक रिवॉल्वर और कुछ कारतूस पाए गए।

संजीवचंद्र रे पर मुकदमा दायर किया गया और उसे १३ जुलाई, १९१६ को दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया। जेल में उसे तरह-तरह की यातनाएँ इस बात के लिए दी गईं कि वह अपने अन्य क्रांतिकारी साथियों के नाम बताए।

१५ सितंबर, १९१६ को जेल में संजीवचंद्र से मिलने उसके कुछ रिश्तेदार गए। वह उनसे हँस-हँसकर बातें करता रहा। लोगों के आश्चर्य और दुःख का ठिकाना नहीं रहा, जब अगले दिन ही अर्थात् १६ सितंबर को पुलिस ने यह घोषित कर दिया कि पेचिश की बीमारी के कारण संजीवचंद्र रे की मृत्यु हो गई। उसके रिश्तेदारों और मित्रों ने दाह-संस्कार करने के लिए उसके शव की माँग की; पर कोई परिणाम नहीं निकला। पुलिस ने स्वयं ही गुपचुप उसका दाह-संस्कार कर दिया। सत्य यह है कि पुलिस ने कुछ तथ्य स्वीकार कराने के लिए उसे रात में बहुत मारा था और मर्मस्थल पर चोट लग जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी। अपने इस अपराध को छिपाने के लिए ही पुलिस ने घोषित कर दिया कि बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई।

एक तरुण तपस्वी देश की आजादी के लिए अपने जीवन का मौन बलिदान दे गया। □

★ संतासिंह

लाहौर की सेशन कोर्ट में 'बब्बर अकाली दल' के क्रांतिकारियों पर मुकदमा चल रहा था। उस दिन इस दल के एक प्रमुख सदस्य संतासिंह के मामले की सुनवाई थी। न्यायाधीश की अनुमति से सरकारी वकील ने संतासिंह से इस प्रकार जिरह की—

''तुम्हारा क्या नाम है?''

''वकील साहब! जरा सभ्यता से पेश आइए। क्या 'आप' कहकर पुकारते हुए आपको शर्म आती है?''

वकील साहब सकपका गए और अपना प्रश्न दुबारा पूछा—

''आपका क्या नाम है?''

''मुझे आश्चर्य है कि हमारा मुकदमा चलते-चलते लगभग एक वर्ष का समय होने को आया है और अभी तक आपको मेरा नाम मालूम नहीं है। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि क्या सचमुच ही आपको मेरा नाम मालूम नहीं है?''

वकील साहब खिसियाकर रह गए। बात आगे बढ़ाते हुए बोले—

''मुझे आपका नाम मालूम है या नहीं, इससे आपको क्या मतलब; पर अदालत में आपका नाम पूछने का मुझको हक है।''

''भई वाह, वकील साहब! यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि मेरा नाम पूछा जाए और उससे मुझे कोई मतलब न हो! यह कैसे संभव है कि आप मेरे गले के लिए फंदा तैयार कराएँ और उससे मुझे कोई मतलब न हो! अगर सचमुच ही आपको मेरा नाम मालूम नहीं तो मैं इसे आपका अभिनय समझूँ या आपकी मासूमियत?''

''अच्छा ठीक है, मैं आपसे दूसरा सवाल पूछता हूँ।''

''जब आपने मेरे सवाल का उत्तर नहीं दिया तो आपको मुझसे सवाल करने का क्या हक है?''

''देखिए, यह अदालत है, यहाँ आप मजाक नहीं कर सकते। आपको गंभीर होकर मेरे प्रश्न का उत्तर देना होगा।''

''आपने गंभीरता से सवाल पूछा ही कहाँ है, जो मैं उसका जवाब दूँ! क्या आप मेरा नाम पूछकर मुझसे मजाक नहीं कर रहे?''

बहस का कोई नतीजा न निकलते देख न्यायाधीश महोदय ने हस्तक्षेप करते हुए संतासिंह से पूछा—

''मिस्टर संतासिंह! अदालत ने जो आप पर अभियोग लगाए हैं कि आपने 'बब्बर अकाली दल' के सदस्य के नाते कई व्यक्तियों को कत्ल किया, आपने बिना लाइसेंस प्राप्त किए अपने पास हथियार रखे, आपने मिलिट्री स्टोर से तथा अन्य व्यक्तियों के पास से हथियार चुराए, आपने डकैतियों में भाग लिया और आपने लोगों को डराया-धमकाया कि वे पुलिस में आपके खिलाफ कोई सूचना न दें—इन सब आरोपों के प्रति आप क्या सफाई देना चाहते हैं?''

''मैं अपनी ओर से कोई सफाई नहीं देना चाहता।''

''आप सफाई क्यों नहीं देना चाहते?''

''मैं सफाई इसलिए नहीं देना चाहता कि मुझे न्याय की कोई आशा नहा है।''

''तो क्या आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं?''

''मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।''

और अदालत ने इस मुकदमे का फैसला २८ फरवरी, १९२५ को दिया। संतासिंह को विभिन्न आरोपों के अंतर्गत फाँसी की सजा सुनाई। २७ फरवरी, १९२६ को लाहौर की सेंट्रल जेल में संतासिंह को फाँसी पर झुला दिया गया। उस समय भी उन्होंने ऐसा ही भाव प्रदर्शित किया जैसे फाँसी एक औपचारिकता है और उसे पूरा होना था।

वीर संतासिंह का जन्म लुधियाना जिले के 'हरयों खुर्द' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम सूबासिंह था। थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे सन् १९२० में ५४ नं. सिख रेजीमेंट में भरती हो गए। अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचारों के विरोध में दो वर्ष पश्चात् ही उन्होंने फौज की नौकरी छोड़ दी और 'बब्बर अकाली दल' के सदस्य बन गए। शीघ्र ही वे दल के प्रमुख सदस्य गिने जाने लगे। 'सुधार आंदोलन' के अंतर्गत संतासिंह ने कई गद्दारों को अकेले ही मौत के घाट उतारा और कई को अपने साथियों के साथ मिलकर सुधारा। उनके द्वारा सुधरनेवाले व्यक्तियों में थे—विशनसिंह जेलदार, बूटासिंह, लाभसिंह, हजारासिंह, रल्ला, दित्तू, सूबेदार गैंडासिंह और नौगल शमां का नंबरदार। अपने एक रिश्तेदार के विश्वासघात के ही कारण संतासिंह गिरफ्तार हुए।

संतासिंह के महत्त्व को स्वीकारते हुए स्वयं अदालत ने अपने फैसले में लिखा था—

'अकालियों के कुछ थोड़े कार्यों को छोड़कर इस अभियुक्त ने प्राय: सभी कार्यों में भाग लिया है और इस षड्यंत्र के आयोजन में किशनसिंह एवं कर्मसिंह के बाद इसीका हाथ अधिक था।'

यह कैसी विडंबना है कि जिसे अदालत ने अपराधी करार दिया, वह भारत का बहुत बड़ा देशभक्त था और भारत माता की आजादी के लिए ही उसने सारे प्रयत्न किए थे।

□

★ संतोखसिंह

संतोखसिंह

अमृतसर के खालसा कॉलिजिएट हाई स्कूल के एक विद्यार्थी ने सन् १९१० में हाई स्कूल की परीक्षा पास की और वह आगे अध्ययन के लिए खालसा कॉलेज में भरती हो गया। उसका नाम संतोखसिंह था। कॉलेज में पढ़ाए जानेवाले अन्य विषयों में वह सामान्य था, पर अंग्रेजी विषय में वह कक्षा के सभी विद्यार्थियों में अच्छा था। वह अपने प्राध्यापकों के साथ भी अंग्रेजी में संभाषण कर सकता था और जब किसी अंग्रेजी शब्द का अर्थ जानने की किसीको जरूरत होती थी, तो उस शब्द का अर्थ संतोखसिंह से पूछ लिया जाता था। जिस शब्द का अर्थ उसे नहीं आता था, उसे वह अपनी जेब में रखी हुई छोटी डिक्शनरी में से निकालकर झट बता देता था। अंग्रेजी शब्दों के ज्ञान-भंडार और जेब में डिक्शनरी रखने के कारण कॉलेज में संतोखसिंह का नाम 'मि. डिक्शनरीसिंह' पड़ गया।

संतोखसिंह का अंग्रेजी ज्ञान इसलिए अच्छा था कि उसका जन्म सन् १८९३ में सिंगापुर में हुआ था, जहाँ उसके पिता फौज में नौकरी करते थे। प्रारंभ से ही उसे अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा मिली थी। वह अपने पुरखों के देश भारत को देखने के लिए बहुत बेचैन रहा करता था और जब उसके पिता को नौकरी से पेंशन मिली तो भारत देखने का अवसर उसे मिला। उसके पिता ज्वालासिंह अमृतसर जिले के 'धारदेव' गाँव में बस गए, जो उनका पैतृक गाँव था।

खालसा कॉलेज अमृतसर से संतोखसिंह इंटर की परीक्षा पास नहीं कर सका; क्योंकि महत्त्वाकांक्षी होने के कारण वह विदेश जाना चाहता था और सन् १९१२ में उसे इंग्लैंड जाने के लिए पासपोर्ट मिल गया। इंग्लैंड से वह कनाडा जा पहुँचा और वैंकोवर में लकड़ी के एक कारखाने में काम करने लगा।

उन दिनों जो भारतीय अमेरिका या कनाडा जाते थे, उन्हें वहाँ बहुत ही तिरस्कारपूर्ण और अपमानजनक व्यवहार मिलता था। एक गुलाम देश के निवासी होने के नाते उन्हें अपमान सहन करना पड़ता था। होटलों में ठहरने के लिए उन्हें

स्थान नहीं दिया जाता था और लोग उनके लिए भद्दे-भद्दे संबोधनों का उपयोग करते थे। उन्हें वे सारी सुविधाएँ भी नहीं मिलती थीं, जो उन देशों के निवासियों के लिए उपलब्ध होती थीं। ब्रिटिश जासूस भी उनके पीछे लगे रहते थे और अंग्रेजों के दबाव के कारण उन देशों की स्वतंत्र सरकारें भी इन भारतीयों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थीं। यद्यपि ये लोग उन देशों में काम-धंधों के लिए जाते थे, पर वहाँ प्राप्त अपमान से तिलमिलाकर यही निर्णय करते थे कि पहले किसी-न-किसी प्रकार भारत को स्वाधीन किया जाए।

जिन दिनों संतोखसिंह वैंकोवर में रह रहे थे, उन दिनों उन्हें एक परचा मिला, जिसमें कहा गया था कि भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में प्रयत्न करने के लिए कैलिफोर्निया के पोर्टलैंड स्थान पर अमेरिका और कनाडा दोनों देशों के भारतीयों की एक सभा होने वाली थी।

संतोखसिंह इस सभा में सम्मिलित होने के लिए पोर्टलैंड पहुँच गए। वह हिंदू, सिख व मुसलमान आदि सभी भारतीयों का एक विशाल सम्मेलन था; जिसमें इस बात पर तो विचार हुआ ही कि किस प्रकार अमेरिका और कनाडा में जीवन की सुविधाएँ प्राप्त की जाएँ, साथ ही भारत की आजादी प्राप्त करने की दिशा में भी खुलकर भाषण हुए।

सम्मेलन के वातावरण का संतोखसिंह के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने भी अपने विचार प्रकट किए और वह प्रतिज्ञा कर बैठा—

"आज से मैं अपना जीवन देशवासियों की सेवा तथा भारत की आजादी के संघर्ष को समर्पित करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस उदात्त ध्येय के लिए अपना जीवन अर्पित करने में मैं कभी नहीं हिचकूँगा। जब तक मैं जीवित रहूँगा, मैं भारत भूमि की स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष करता रहूँगा। यही मेरे जीवन का ध्येय रहेगा।"

संतोखसिंह ने यह प्रतिज्ञा केवल भावुकता के परिणामस्वरूप नहीं की थी। उसका शेष जीवन इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति की दिशा की कहानी है।

पोर्टलैंड में हुए प्रवासी भारतीयों के सम्मेलन का प्रभाव सभी भारतीयों पर देखने को मिलने लगा। अब, वे स्वाभिमान के साथ मस्तक ऊँचा उठाकर रहने लगे। एक दिन लकड़ी की मिल में काम करनेवाले एक सिख मजदूर का झगड़ा एक गोरे फोरमैन से हो गया। गोरे फोरमैन का सोचना था कि हमेशा की भाँति ये लोग हमारे अपशब्दों को सहन कर लेंगे। उसका सोचना गलत निकला। उस सिख मजदूर ने गोरे फोरमैन को उठाकर पटक दिया और उसकी अच्छी तरह धुनाई कर डाली। उसे अदालत की शरण लेनी पड़ी। अदालत में संतोखसिंह ने सिख मजदूर के दुभाषिए

का काम किया और जज महोदय के सामने अंग्रेजी में मामला इस प्रकार रखा कि मामला खारिज कर दिया गया। संतोखसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उन दिनों जो भारतीय कनाडा में रहते थे, उनमें से अंग्रेजी बहुत कम जानते थे। कई दफ्तरों और संस्थानों में अंग्रेजी के बिना उनका काम नहीं चलता था। उन्हें अंग्रेजी जाननेवालों की खुशामद करनी पड़ती थी और काफी पैसा खर्च करना पड़ता था। संतोखसिंह प्रत्येक का काम बिना पैसे लिये करने लगे। कनाडा के भारतीय समाज में उनका सम्मान बहुत बढ़ गया।

उन्हीं दिनों भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल इंग्लैंड से निर्वासित होकर कनाडा पहुँचे। सानफ्रांसिस्को से वे 'गदर' नाम का एक अखबार निकालने लगे। 'गदर' में बड़े उग्र व क्रांतिकारी विचार रहा करते थे। अमेरिका एवं कनाडा के प्रवासी भारतीय जी खोलकर उसमें पैसा लगाते थे और संसार के सभी देशों में भारतीयों के पास वह नि:शुल्क भेजा जाता था। लाला हरदयाल को कनाडा सरकार ने गिरफ्तार कर लिया; पर बाद में वे जमानत पर छोड़ दिए गए। उनकी अनुपस्थिति में भी पत्र अच्छी तरह से चले इस उद्देश्य से कई नवयुवकों को संपादन का प्रशिक्षण दिया गया। संतोखसिंह भी 'गदर' के प्रकाशन में सहयोग देने के लिए सानफ्रांसिस्को पहुँच गए। जिन अन्य भारतीय नौजवानों ने उसके काम में हाथ बँटाया, उनमें से हरनामसिंह तुंडिलात, पृथ्वीसिंह, सोहनलाल, काशीराम, मुंशीराम, पूरनसिंह, करतारसिंह सराबा, निरंजनदास और रामचंद्र प्रमुख थे। 'गदर' साप्ताहिक के नाम से ही उनकी पार्टी का नाम 'गदर पार्टी' हो गया। बाबा सोहनसिंह भकना गदर पार्टी के संस्थापकों में से थे और वे संतोखसिंह के गुणों के बहुत बड़े प्रशंसक थे।

गदर पार्टी के लोग अपने साप्ताहिक 'गदर' के माध्यम से यह प्रचार करते आ रहे थे कि एक विश्वयुद्ध छिड़ने वाला है, जिसमें इंग्लैंड बुरी तरह से उलझ जाएगा और इसलिए अवसर का लाभ उठाकर भारतीयों को भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठा लेने चाहिए। सचमुच ही विश्वयुद्ध छिड़ गया और जिस समय का अनुमान गदर पार्टी ने लगाया था, उसके बहुत पहले ही वह छिड़ गया। गदर पार्टी के लोग जल्दी-जल्दी में गदर कराने के लिए भारत पहुँचने की तैयारियाँ करने लगे। अपने साप्ताहिक 'गदर' के माध्यम से उन्होंने एक विज्ञापन प्रसारित किया—

'आवश्यकता है— भारत में गदर शुरू करने के लिए बहादुर सैनिकों की।
वेतन : मृत्यु
पुरस्कार : शहादत
पेंशन : आजादी

युद्धस्थल : भारत।'

इस विज्ञापन का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। अमेरिका तथा कनाडा के प्रवासी भारतीयों में अपने देश की आजादी के लिए बलिदान करने की होड़ लग गई। हजारों लोग जहाजों द्वारा गदर प्रारंभ करने के उद्देश्य से भारत पहुँचने लगे। अमेरिका स्थित जर्मन राजदूत के सहयोग से उन्हें हथियार मिलने लगे। वे लोग अत्यधिक जोश के कारण अपनी भावनाओं को नियंत्रण में नहीं रख पा रहे थे और ऐलान करते हुए जाते थे कि हम लोग आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए भारत जा रहे हैं। परिणाम यह होता था कि ब्रिटिश जासूस भारत सरकार के पास उनकी पूर्व सूचनाएँ भेज दिया करते थे और समुद्री रास्ते में भी उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और भारत पहुँचने पर वे गिरफ्तार कर लिये जाते थे।

संतोखसिंह को गदर पार्टी द्वारा यह कार्य दिया गया कि वे सिंगापुर, मलाया एवं स्याम (थाईलैंड) के भारतीयों को गदर के लिए संगठित करें और वहाँ से गदर के लिए जत्थे भारत भिजवाएँ। संतोखसिंह ने शंघाई पहुँचकर बड़ी खूबी के साथ यह काम किया। उन्होंने वहाँ के भारतीयों में खूब जोश भर दिया। ब्रिटिश जासूस वहाँ उनके पीछे पड़ गए। उनके कुछ साथी गिरफ्तार भी हो गए; पर संतोखसिंह एक नदी में कूदकर पार हो गए और पुलिस के हाथ नहीं लग सके। किसी-न-किसी प्रकार संतोखसिंह अमेरिका जा पहुँचे।

संतोखसिंह को वहाँ हालात बदले हुए नजर आए। साथी रामचंद्र भ्रष्ट हो गया था। वह अब इन लोगों को कुछ भी सहयोग नहीं दे रहा था और पार्टी का पैसा हड़प कर रहा था। उसपर अदालत में मुकदमा चलाया गया। अदालत में ही उसे गदर पार्टी के एक अन्य सदस्य रामसिंह ने गोली मारकर खत्म कर दिया। इस मुकदमे में संतोखसिंह को भी फाँसा गया। उनपर आरोप था कि जिस रिवॉल्वर से रामचंद्र की हत्या हुई है, वह संतोखसिंह ने ही रामसिंह को दिया था।

कुछ दिन बाद अंग्रेजी प्रभाव में आकर अमेरिका की सरकार ने संतोखसिंह को गिरफ्तार कर लिया और उससे जानकारी प्राप्त करने के लिए यातनाएँ दी जाने लगीं। वह किसी भी कमजोरी का शिकार नहीं हुआ। जेल से छूटने के बाद फिर उसने भारतीयों के पक्ष में आंदोलन छेड़ दिया और अमेरिका की सरकार से कई अधिकार भारतीयों के लिए प्राप्त कर लिये। उन्होंने गदर पार्टी को फिर से नया जीवन प्रदान किया।

भारत की आजादी के लिए कौन से हथकंडे काम में लाए जाएँ, यही जानने के लिए संतोखसिंह का विचार रूस जाने का हुआ। सन् १९२२ के प्रथम सप्ताह में वे अपने एक साथी रतनसिंह बग्गा के साथ रूस की राजधानी मास्को पहुँचने में

सफल हो गए। मास्को में ५ नवंबर से ५ दिसंबर तक रूस की कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की चौथी कांग्रेस में उन्होंने भाग लिया और उन्हें प्रत्यक्ष रूप से यह देखने को मिला कि वहाँ क्रांति किस प्रकार सफल हुई। उन्होंने भारत की आजादी के लिए रूसी नेताओं की सहानुभूति भी अर्जित की। काफी समय रूस में रहकर तथा मजदूर संगठनों की कार्यप्रणाली का अच्छा अध्ययन करने के पश्चात् वे अमेरिका वापस चले गए।

संतोखसिंह भारत पहुँचने के लिए छटपटा रहे थे। वे पंजाब की जागृति के लिए पंजाबी भाषा में किसी पत्रिका की आवश्यकता महसूस कर रहे थे। उनके भारत पहुँचने का अर्थ था, गिरफ्तारी और फाँसी अथवा आजन्म कारावास। यह सब जानते हुए भी वे भारत जाने से रुके नहीं और वहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लगभग दो वर्ष उन्हें नजरबंदी और जेल में बिताने पड़े। उन्हें बहुत भयंकर कैदी समझा जाता था। जब उनके खिलाफ कोई प्रकरण सिद्ध नहीं हो सका तो सन् १९२५ में ब्रिटिश हुकूमत को उन्हें मुक्त करने के लिए विवश होना पड़ा।

मुक्त होकर संतोखसिंह खामोश नहीं बैठे। वे अमृतसर में रहने लगे और उन्होंने भागसिंह कनाडियन और करमसिंह चीमा को बुलवाकर पंजाबी में 'किरती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। 'किरती' की नीति थी कि उसके माध्यम से संसार-भर के सभी मजदूरों, महिलाओं, गुलामों तथा कमजोर और उत्पीड़ित वर्ग की मुक्ति के लिए काम हो। इस पत्र के माध्यम से बलिदान का मूल्यांकन करने की प्रेरणा भी दी गई।

अनवरत अत्यधिक परिश्रम तथा नजरबंदी एवं जेल में संतोखसिंह के साथ किए गए अमानुषिक व्यवहार ने उनके स्वास्थ्य को तोड़ दिया था। उन्हें क्षय रोग हो गया था। तेंतीस वर्ष की आयु में ही १९ मई, १९२७ को वह देशभक्त इस संसार से विदा हो गया। उसने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका जीवन-भर पालन करते हुए वह दिखा गया कि व्यक्ति का जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब वह किसी सिद्धांत के लिए जिए और उसीके लिए मरे।

□

★ सज्जनसिंह

'गदर पार्टी' का आतंक उन दिनों पूरे पंजाब में छाया हुआ था। लाहौर उन दिनों क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र बना हुआ था। बाहर से लाहौर आनेवालों पर

भी नजर रखी जा रही थी और लाहौर से बाहर जानेवालों पर भी। स्कूलों एवं कॉलेजों में भी सरकार ने अपने भेदिए छोड़ रखे थे, जो राष्ट्रीय विचारधारा रखनेवाले विद्यार्थियों और अध्यापकों की गतिविधियों की सूचनाएँ पुलिस को पहुँचाते रहते थे।

उन्हीं दिनों २० फरवरी, १९१५ को तीन सिख एक ताँगे में बैठकर अनारकली बाजार के डाकखाने के पास से जा रहे थे। उन तीनों के हाथों में एक-एक छड़ी थी। वे छड़ियाँ, सामान्य छड़ियों से कुछ भिन्न थीं। पुलिसवालों की नजर उनपर पड़ी। उन्हें शक हुआ और ताँगा रुकवा दिया गया। रुकवानेवालों में एक थानेदार और दो सिपाही थे।

उन सरदारों से छड़ियाँ देने के लिए कहा गया, पर उन्होंने नहीं दीं। झटका देकर जब एक छड़ी छीनने का प्रयत्न किया गया तो केवल म्यान (खोल) सिपाही के हाथ में रह गया और नुकीला भाला सरदारजी के हाथ में था। बात खुल चुकी थी और भागने या मुकाबला करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। ताँगे में सवार तीन सिखों में से एक ने रिवॉल्वर निकालकर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। सिपाही मासूस शाह मारा गया। थानेदार मोहम्मद मूसा सख्त घायल हुआ। तीसरा सिपाही भाग खड़ा हुआ। गोलियाँ चलाकर तीनों क्रांतिकारी भी भाग खड़े हुए। उनमें से दो तो भागने में सफल हो गए, पर तीसरे को भागते-भागते में किसी दर्शक ने टँगड़ी मार दी और वह एक दुकान पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही कई व्यक्ति उसपर चढ़ बैठे और उसे पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। पकड़े गए उस क्रांतिकारी का नाम सज्जनसिंह था। वे तीनों ही गदर पार्टी के सदस्य थे और विप्लव योजना के अंतर्गत ही कहीं जा रहे थे।

सज्जनसिंह पर मुकदमा चलाया गया। उसका कहना था कि देश के काम में जो रोड़े अटकाएगा, हम उसे अपने रास्ते से हटा देंगे।

२० अप्रैल, १९१५ को सज्जनसिंह को लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी दे दी गई।

□

★ सत्येंद्रचंद्र सरकार

उस सुकुमार और सुंदर नवयुवक सत्येंद्रचंद्र सरकार की उम्र लगभग सोलह वर्ष की ही रही होगी कि शासन ने उसपर क्रांतिकारी होने का संदेह कर लिया। उन दिनों बंगाल में संदिग्ध क्रांतिकारियों को या तो गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया

जाता था या घर पर ही उन्हें नजरबंद कर दिया जाता था। सत्येंद्रचंद्र को भी पहले तो गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन कुछ समय तक जेल में रखने के पश्चात् उसे जैसोर जिले के उसीके गाँव 'छौगाचा' में ही नजरबंद कर दिया गया।

सत्येंद्रचंद्र का दूसरा दुर्भाग्य यह था कि मई १९१८ में उसे पागल कुत्ते ने काट लिया। वह नजरबंद था, इसलिए बिना पुलिस की अनुमति के वह अपने इलाज के लिए बाहर जा नहीं सकता था। काफी दिनों बाद जून के महीने में पुलिस उसको शिलांग के अस्पताल में ले गई। डॉक्टरों ने उसका इलाज तो किया, लेकिन कह दियां कि वह इतने देर से लाया गया कि उसपर इलाज का असर होना संभव नहीं है।

जिसकी आशंका थी, वही हुआ। १ अक्तूबर, १९१८ को सत्येंद्रचंद्र सरकार गंभीर रूप से जल-भय रोग का शिकार हो गया। ऐसा व्यक्ति यदि दूसरे व्यक्ति को काट ले तो वह भी उस रोग का शिकार हो जाता है। इस स्थिति से बचने के लिए सत्येंद्रचंद्र सरकार को एक कोठरी में बंद कर दिया गया। अगले ही दिन, अर्थात् २ अक्तूबर, १९१८ को सत्येंद्रचंद्र सरकार की मृत्यु हो गई। पुलिस ने उसका अंतिम संस्कार भी उसी प्रकार की उदासीनता और लापरवाही के साथ किया।

□

★ सरोजभूषण दास

कलकत्ता के क्रांतिकारी अपनी साहसिक योजनाओं में मोटर वाहनों का उपयोग करने लगे थे। इतने बड़े नगर में यह आवश्यक भी था। १२ फरवरी, १९१५ को उन लोगों ने एक अंग्रेजी फर्म 'मेसर्स बर्ड एंड कंपनी' पर डाका डाला और अठारह हजार रुपए प्राप्त करने में सफल हो गए।

इस डकैती के पश्चात् कलकत्ता की पुलिस बहुत अधिक सक्रिय हो गई। वह संदिग्ध और निरपराध व्यक्तियों को भी गिरफ्तार करने लगी। इसी क्रम में एक स्कूल के अध्यापक सरोजभूषण दास को पुलिस ने गिरफ्तार करके १३ फरवरी, १९१५ को जेल में बंद कर दिया। सरोजभूषण दास बहुत स्वस्थ और सुंदर नौजवान था।

जेल के नियमों के अनुसार जेल के सहायक सर्जन ने सरोजभूषण दास को चेचक का टीका लगा दिया। टीका लगाने के उपकरण अच्छी तरह से साफ नहीं

किए गए थे, परिणाम यह निकला कि उसे भयंकर चेचक निकल आई। उसकी हालत बिगड़ती देखकर जेल के अधिकारियों ने उसके परिवारवालों से कहा कि वे सरोजभूषण दास को जमानत पर छुड़ा लें। उसे जमानत पर छुड़ा लिया गया।

२ मार्च, १९१५ को सरोजभूषण दास पुलिस और कानून के शिकंजों से मुक्त होकर दूसरी दुनिया में पहुँच गया।

□
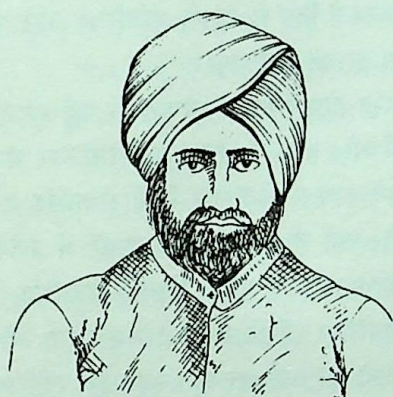
★ सरदार सेवासिंह

किसी आशिक का जनाजा कितनी धूमधाम से जा रहा है। यह जनाजा है भारत की आजादी के आशिक सरदार सेवासिंह का, जिसने कनाडा की भरी अदालत में भारतीयों के हत्यारे, इमीग्रेशन विभाग के मुख्य अधिकारी मि. हॉपकिंसन को गोली से उड़ाकर फाँसी का उपहार प्राप्त किया। वीर की शवयात्रा के साथ न केवल भारतीय, वरन् विदेशी लोग भी सम्मिलित हुए हैं। इस शवयात्रा में विदेशी महिलाएँ भी सम्मिलित हुई हैं। वीर की मृत्यु से शोकाकुल होकर आकाश में छाई हुई घटाओं ने आँसुओं की झड़ी लगा दी है। इधर शवयात्रा में सम्मिलित लोगों की आँखें भी बादलों से होड़ लगा रही हैं। भारत की भूमि से हजारों मील दूर कनाडा के इस जन-संकुल नगर में एक भारतीय की शवयात्रा की यह धूमधाम सचमुच ही अपूर्व है। भीड़ से भरे हुए इस नगर में सड़क घेरकर इस प्रकार समारोहपूर्वक चलना परंपराओं के प्रतिकूल है। लोगों के दिलों में गूँज उठ रही है—'आशिक का जनाजा है बड़ी धूम से निकले।'

सरदार सेवासिंह

भारत की आजादी के आशिक सरदार सेवासिंह भी अन्य भारतीयों की भाँति कनाडा जा पहुँचे। अपने देश की लक्ष्मी को भारतीयों पर रीझते हुए देखकर कनाडावासी ईर्ष्या की आग में जल उठे। भारत की आजादी का यज्ञ रचानेवाले प्रवासी सिख विशेष रूप से वहाँ के अधिकारियों की आँखों में खटक रहे थे। उन

लोगों ने एक देशद्रोही बेलासिंह को अपनी ओर मिलाकर दो भारतीयों—भाई भागसिंह और भाई वतनसिंह की हत्या करा दी। सरदार सेवासिंह का क्रोध इमीग्रेशन अधिकारी हॉपकिंसन पर उमड़ पड़ा। बदला लेने का भूत उनपर सवार हो गया। उन्होंने सोचा कि यह दुष्ट इसी तरह लोगों की हत्याएँ कराता रहेगा।

मित्रों से मिलकर योजना बनी कि हॉपकिंसन से दोस्ती की जाए और तब मौका पाकर उसे मारा जाए; क्योंकि वह बहुत चालाक व्यक्ति है। सरदार सेवासिंह ने हॉपकिंसन से दोस्ती कर ली। तय हुआ कि यदि सेवासिंह बलवंतसिंह को मार दे तो उसे अच्छी नौकरी मिल जाएगी। सेवासिंह ने अपनी सहमति प्रकट कर दी और हॉपकिंसन से एक रिवॉल्वर भी प्राप्त कर लिया। रिवॉल्वर देते हुए हॉपकिंसन ने कहा कि शिकार करके ही यह रिवॉल्वर लौटाना। सेवासिंह ने निशानेबाजी का अभ्यास कर डाला। जितने कारतूस हॉपकिंसन ने दिए थे, उनसे अतिरिक्त और भी भारी व्यय उन्होंने कारतूसों पर किया। हाथ अच्छा सध गया।

एक दिन पक्का इरादा करके सेवासिंह हॉपकिंसन के बंगले पर पहुँच गए। उनके लिए अंदर जाने की रोक-टोक नहीं थी। हाथ में भरा हुआ रिवॉल्वर था। हॉपकिंसन आईने के सामने खड़ा था। उसने हाथ में रिवॉल्वर लिये सेवासिंह को आते देख लिया। उसने थोड़ी ओट ले ली। ज्यों ही सेवासिंह ने कमरे में प्रवेश किया, हॉपकिंसन ने सेवासिंह का रिवॉल्वरवाला हाथ पकड़ लिया। सेवासिंह ने स्थिति को फौरन सँभाल लिया। खुद ही रिवॉल्वर हॉपकिंसन को थमा दिया और बोले—"मैं खुद ही तो यह रिवॉल्वर आपको देने आ रहा था। आप इसे लीजिए और मुझे शूट कर दीजिए। मेरे साथी लोग मुझे आपका आदमी समझकर मुझसे घृणा करने लगे हैं और आप मुझे नौकरी दे नहीं रहे, मैं तो कहीं का नहीं रहा। आज तो आप मुझे शूट कर ही दीजिए।"

हॉपकिंसन को उनकी बातों पर विश्वास हो गया। उसने रिवॉल्वर सेवासिंह को लौटा दिया और शीघ्र ही नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया। थोड़ी देर गपशप हुई और सेवासिंह चल दिए।

अगले दिन ही अदालत में पेशी थी—हत्या के मामले में सरदार सेवासिंह को गवाह के रूप में बुलाया गया था। हॉपकिंसन भी वहाँ उपस्थित था। जज महोदय ने सरदार सेवासिंह से प्रश्न किया—

"जिस दिन गुरुद्वारे में वतनसिंह की हत्या हुई, क्या उस समय आप घटना-स्थल पर मौजूद थे?"

"जी हाँ, मैं उस समय घटनास्थल पर ही था।" सेवासिंह का उत्तर था।

जज का अगला प्रश्न था—"बेलासिंह ने हत्या किस प्रकार की?"

यह प्रश्न सेवासिंह को अच्छा लगा। जेब में भरा हुआ रिवॉल्वर था और हॉपकिंसन पास में ही था। झट से रिवॉल्वर हॉपकिंसन पर खाली करते हुए कहा—

''हत्या इस प्रकार की गई थी।''

अदालत में खलबली मच गई। जज के प्रश्न का उत्तर सटीक दिया गया था। रिवॉल्वर हॉपकिंसन के ऊपर फेंकते हुए सेवासिंह ने कहा—''यह ले अपना रिवॉल्वर। शिकार करके ही लौटा रहा हूँ। दिया हुआ वचन पूरा किया है।''

न किसी अन्य को मारना था और न भागना था। सेवासिंह गिरफ्तार कर लिये गए। आत्मसमर्पण करके उस वीर का कथन था—

''आज मुझे हार्दिक आनंद प्राप्त हुआ है। हॉपकिंसन को मैंने जानबूझकर मारा है। यह बदला है देश तथा धर्म के अपमान का, यह बदला है हमारे देश के दो अमूल्य रत्नों की हत्या का, यह उत्तर है हमको दी जानेवाली गालियों का।''

उस दिन से किसी कनाडावासी ने भारतीयों को घृणित और अपमानजनक शब्दों से संबोधन करने का दुस्साहस भी नहीं किया।

हॉपकिंसन की पत्नी ने अपने पति की हत्या का शोक अवश्य मनाया, पर वह एक भारतीय की वीरता पर मुग्ध हुए बिना न रह सकी। उसके शब्द थे—

''जिस व्यक्ति ने भरी अदालत में मेरे पति को गोली से उड़ाकर धैर्य के साथ आत्मसमर्पण किया है, मैं उस वीर के दर्शन करना चाहूँगी।''

जेल में हॉपकिंसन की पत्नी सेवासिंह से मिली और उनका प्रबोधन किया।

इस कृत्य के पश्चात् सेवासिंह के मन में न तो क्षोभ था और न पश्चात्ताप। अपने लिए फाँसी के दंड के विषय में उसकी प्रतिक्रिया थी—

''एक सच्चे सिख की भाँति कर्तव्य-पालन करते हुए और ईश्वर का नाम लेते हुए मैं फाँसी के तख्ते पर उस ललक के साथ चढ़ूँगा, जिस ललक के साथ एक भूखा शिशु अपनी माँ की गोद में लपकता है। मैं बड़ी खुशी से फाँसी के फंदे को ईश्वर के नाम की माला समझकर अपने गले में डालूँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि ईश्वर अपने आशीर्वादी हाथों से मुझे उठा लेगा; क्योंकि यह काम मैंने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं वरन् अपने देशवासियों और कनाडा की सरकार के हित में किया है।''

और सचमुच ही इसी उत्साह एवं उमंग के साथ सरदार सेवासिंह वैंकोवर में ११ जनवरी, १९१५ को फाँसी के फंदे पर झूल गए।

देश की आजादी के उस आशिक का जनाजा बड़ी धूमधाम से निकाला गया।

□

★ सोहनलाल पाठक

सोहनलाल पाठक

सोहनलाल पाठक गजब का दिलेर और अकड़बाज क्रांतिकारी था। शरीर इतना दुर्बल कि फूँक मार दो तो उड़ जाए; पर संकल्प इतना अडिग, जो जुल्म की हर आँधी और तूफान का डटकर मुकाबला करे। भारत माता की आजादी का यह पागल पुजारी किन-किन देशों की खाक छानता फिरा और बर्मा में किस प्रकार फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया, यह जानने के पहले उसके जीवन के विचित्र विकास को ज़ान लेना कम प्रेरक और मनोरंजक नहीं है।
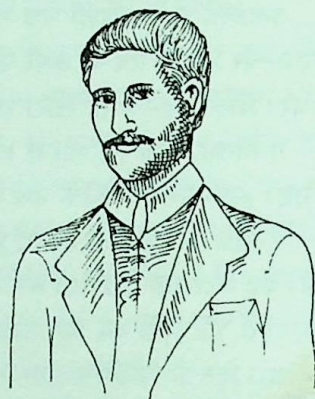
सोहनलाल पाठक का जन्म ७ जनवरी, १८८३ में अमृतसर के 'पट्टी' नामक गाँव में पं. चंदाराम के घर हुआ था। जन्म से ही शरीर इतना कमजोर और लिजलिजा था कि घरवालों को हाथ से भी उठाने में डर लगता था। बड़े हुए तो स्वास्थ्य और घर की गरीबी में कोई फर्क नहीं पड़ा। पाँचवीं कक्षा तक फीस माफ रही और उसके बाद दो रुपए माहवार वजीफा मिलने लगा तो मिडिल पास हो गए। अध्यापक बनने के लिए नार्मल स्कूल में भरती होने गए तो 'असाधारण' स्वास्थ्य को देखकर डॉक्टर ने 'अनफिट' करार देकर वापस कर दिया। एक प्राइमरी स्कूल में छह रुपए माहवार पर मास्टरी कर ली। किसी तरह तिकड़म लगाई और सरकारी खर्चे पर नार्मल स्कूल में अध्यापकीय प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया।

उन दिनों नार्मल ट्रेंड लोगों को नौकरी के लिए भटकना नहीं पड़ता था, नौकरी उन्हें मनाती थी। नौकरी देने के लिए जब शिक्षा निरीक्षक महोदय पहुँचे तो वे हर पदाभिलाषी से पूछते थे कि वह किस-किस स्थान पर नौकरी के लिए जाने के लिए तैयार है। हर पदाभिलाषी अपनी पसंद की जगह बता देता था और उसे उस स्थान या उसके आसपास के किसी स्थान के लिए नियुक्ति-पत्र दे दिया जाता था। सोहनलाल पाठक से भी पूछा गया—

"तुम नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ जाने के लिए तैयार हो?"

"मैं कहीं जाने के लिए कैसे कह दूँ, जब मैं नौकरी करने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"तो फिर यहाँ क्यों आए हो?"

"मैं अपनी ओर से कब आया हूँ! मुझे तो नार्मल स्कूल के अधिकारियों ने भेजा है, इसलिए आया हूँ।"

"तुमने वजीफा तो सरकार का खाया है, फिर नौकरी किसकी करोगे?"

"मैंने सरकार का नहीं, राष्ट्र का वजीफा खाया है; मैं राष्ट्र की ही सेवा करूँगा।"

"अच्छा, तुम जा सकते हो।"

सोहनलाल पाठक चले गए। आई हुई नौकरी चली गई।

सोहनलाल पाठक ने देश की सेवा का व्रत ले लिया। राष्ट्रीय नेताओं के भाषण सुनने लगे। समाजसेवा में जुट गए। एक मित्र सरदार ज्ञानसिंह के साथ वचनबद्ध हो गए कि मरेंगे तो देश के लिए ही मरेंगे। मित्र स्याम देश (थाईलैंड) की तरफ निकल गए। सोहनलाल को गरीबी ने जाने नहीं दिया। शादी हो गई। बच्चा भी हुआ। योग्यता का उपहार मिला और लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में इक्कीस रुपए माहवार की मास्टरी मिल गई।

एक दिन स्कूल का निरीक्षण करने उप-निरीक्षक के साथ अंग्रेज निरीक्षक मि. क्रास पहुँच गए। उन दिनों जाँच विद्यार्थियों की योग्यता के बहाने अध्यापकों की योग्यता की ही हुआ करती थी। उप-निरीक्षक ने कहा कि किसी विद्यार्थी से कोई कविता सुनवाइए। एक लड़के को इशारा किया और उसे यह भी निर्देश दे दिया कि वह अमुक कविता सुनाए। विद्यार्थी ने हकीकत राय के बलिदान की कविता सुना दी। उप-निरीक्षक मुसलमान थे। वे क्लास से बाहर चले गए। उनके पीछे निरीक्षक महोदय भी चले गए। निरीक्षकों के चले जाने के बाद हेड मास्टर साहब ने पाठकजी से जवाब तलब किया—

"तुमने यह क्या किया, जो यह कविता सुनवा दी?"

पाठकजी ने तड़ाक से उत्तर दिया—

"यह कविता पाठ्य पुस्तक में है, इसलिए सुनवाई गई है। यदि आप चाहते हैं कि आइंदा न सुनवाई जाए तो इसे पाठ्य पुस्तक में से हटवा दीजिए।"

पाठकजी ने निश्चय किया कि ऐसी नौकरी क्यों करें, जहाँ सिद्धांत का हनन हो। इस बीच पत्नी और पुत्र का देहांत हो गया। नौकरी छोड़-छाड़कर सोहनलाल पाठक स्याम जा पहुँचे। स्याम में भी नौकरी उनके गले पड़ गई। उन दिनों वहाँ रेलवे लाइन तैयार हो रही थी। मजदूरों की निगरानी के लिए उन्हें अस्सी रुपए

माहवार पर रख लिया गया। घूम-फिरकर निगरानी करनी पड़ती थी। एक बार उन्हें एक साथ सत्तर मील पैदल चलना पड़ा। पाठकजी ने हँसकर कहा, ''अस्सी रुपए प्रतिमाह मिलते हैं, यदि अस्सी मील भी पैदल चलना पड़ता तो मैं चलता।''

स्याम में पाठकजी का मन नहीं लग रहा था। नौकरी को लात मारकर अमेरिका के लिए चल दिए। उनके साथ एक मित्र ईश्वरदास भी थे। हांगकांग में ईश्वरदास की मृत्यु हो गई। पाठकजी को हांगकांग में ही रह जाना पड़ा। वहाँ भी नौकरी मिल गई। कुछ पैसा नौकरी से कमाया और कुछ घर से मँगाया। मनीला होते हुए अमेरिका जा पहुँचे।

भारत के महान् क्रांतिकारी भाई परमानंद उन दिनों अमेरिका में थे। उन्होंने सोहनलाल पाठक को एक फॉर्मेसी में अध्ययन के लिए दाखिल करा दिया। वहाँ भी उनका मन नहीं लगा। उनके मन में वह प्रतिज्ञा बार-बार कौंध रही थी कि मरूँगा तो देश के लिए मरूँगा। अमेरिका में गदर पार्टी के साथियों ने सोहनलाल पाठक के सामने प्रस्ताव रख दिया कि गदर के प्रचार के लिए बर्मा चले जाओ। यह काम पाठकजी को बहुत पसंद आया। अमेरिका से वे जापान एवं हांगकांग होते हुए स्याम की राजधानी बैंकाक पहुँच गए और वहाँ से पैदल चलकर बर्मा जा पहुँचे।

बर्मा में अंग्रेजी छावनियाँ थीं। पाठकजी ने उन छावनियों के लोगों से संपर्क स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने एक कंपनी को विद्रोह करने के लिए बिलकुल तैयार कर लिया। बाद में इस कंपनी के चार लोगों को फाँसी की सजा हुई; पर वह आजन्म कारावास के रूप में परिवर्तित कर दी गई।

पाठकजी बेखटके छावनियों में जाते रहते थे तथा लोगों को यही संदेश देते रहते थे कि अंग्रेजों का साथ छोड़ो और मातृभूमि की आजादी के लिए लड़ो। फौज का एक जमादार उनकी गतिविधियों को ताड़ रहा था। एक दिन जब पाठकजी अपना संबोधन समाप्त कर चुके तो वह इन्हें एकांत में ले गया। इन्होंने समझा कि शायद यह विप्लव योजना के संबंध में कुछ पूछना चाहता है। वह जमादार पहले तो इन्हें देखकर डर के मारे काँपने लगा; पर साहस करके उसने इनके हाथ पकड़ लिये और अपने लोगों को पुकारने लगा। पाठकजी की जेब में दो भरी हुई पिस्तौल थीं, पर अपने एक भारतीय भाई का खून करने का विचार उनके मन में नहीं आया। खुद ही कहते रहे—''अरे! तुम क्या अपने ही एक भाई को पकड़ा दोगे? सोचो तो, क्या तुम्हें गुलामी के जीवन में आनंद आता है?'' वे कहते ही रहे और जमादार के साथियों ने आकर पाठकजी को पकड़ लिया। तलाशी लेने पर पाठकजी के पास निम्नलिखित सामग्री निकली—

१. दो भरे हुए पिस्तौल और कई कारतूस।

२. 'जहान-ए-इस्लाम' नाम की पुस्तक, जो कुछ अरबी में, कुछ उर्दू में और कुछ तुर्की भाषा में लिखी हुई थी।

३. अरबी भाषा में मुल्ला-मौलवियों द्वारा दिए गए 'फतवा' की चार प्रतियाँ।

४. बम बनाने का लिखा हुआ नुस्खा।

५. कुछ नकद धन।

६. एक घड़ी।

पाठकजी को गिरफ्तार करके जेल में बंद कर दिया गया और १४ दिसंबर, १९१५ को मांडले में उनपर मुकदमा चलाया गया। कई धाराएँ उनपर लगाई गईं। प्रमुख आरोप था अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करने का। केवल एक दिन में ही अर्थात् १५ दिसंबर, १९१५ को निर्णय सुना दिया गया। उन्हें मृत्युदंड की सजा सुनाई गई।

जितने दिन पाठकजी जेल में रहे, उन्होंने जेल के नियमों की अवज्ञा की। उनका तर्क था कि जो सरकार अन्यायी और अत्याचारी है, मैं उसके नियमों का पालन क्यों करूँ। जेल के बड़े-से-बड़े अधिकारी के आने पर भी पाठकजी खड़े नहीं होते थे; जबकि अन्य कैदी उन्हें झुक-झुककर सलाम करते थे। इसके विपरीत यदि छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी उनसे खड़े होकर बात करता था, तो शिष्टाचार के नाते वे भी खड़े होकर उससे बातें करते थे। एक बार बर्मा के गवर्नर महोदय मांडले जेल में निरीक्षण के लिए पहुँचे। जेल के अधिकारियों को चिंता हुई कि यदि सोहनलाल पाठक गवर्नर महोदय के आगमन पर खड़े नहीं होंगे तो हमारी तो आफत आ जाएगी। एक अधिकारी के दिमाग में एक युक्ति कौंध गई। गवर्नर महोदय पाठकजी की कोठरी के सामने पहुँचे, इसके पहले ही वह अधिकारी पाठकजी के सामने पहुँचा और खड़े-खड़े उनसे बातें करने लगा। पाठक़जी भी शिष्टाचार के नाते खड़े होकर उससे बातें करने लगे। इसी बीच गवर्नर महोदय भी वहाँ पहुँच गए और वे भी पाठकजी से बातें करने लगे। लॉर्ड साहब उनसे बहुत प्रभावित हुए और बोले कि यदि आप माफी माँग लें तो अंग्रेजी सरकार आपको माफ कर सकती है। पाठकजी का उत्तर था—

''जुल्म-ज्यादतियाँ तो अंग्रेजी सरकार करे और माफी मैं माँगूँ! माफी तो मुझसे अंग्रेजी सरकार को ही माँगनी चाहिए।''

जिस दिन पाठकजी को फाँसी लगाई जाने वाली थी, उस दिन भी न्यायाधीश महोदय ने उन्हें समझाया कि माफी का रास्ता आपके लिए खुला हुआ है। यदि आप अभी भी माफी माँग लें, तो आप फाँसी की सजा से बच सकते हैं। पाठकजी ने शर्त लगाई कि यदि आप पूर्णरूप से मुझे मुक्त कर दें और मैं जहाँ जाना चाहूँ वहाँ जा

सकूँ, तो मैं माफी माँगने के लिए तैयार हूँ। न्यायाधीश महोदय ने कहा कि यह तो मेरे अधिकार की बात नहीं है। इसपर पाठकजी का उत्तर था—

"तो फिर आप देर क्यों करते हैं! आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए और मुझे अपने कर्तव्य का पालन करने दीजिए।"

पाठकजी फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए और 'भारत माता की जय' बोलते हुए फाँसी के फंदे पर झूल गए। उन्हें जनवरी १९१६ में फाँसी लगी थी। अपनी तरह के धुनी और हौसलेवाले व्यक्ति पाठकजी एक ही थे।

□

★ सोहनसिंह भकना
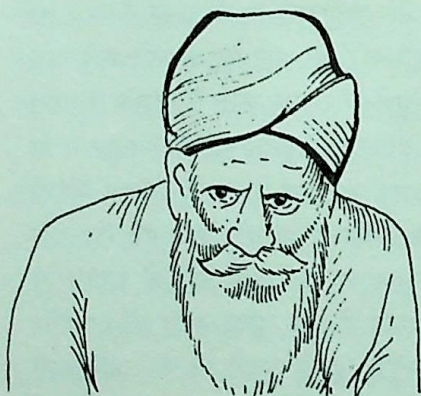
सोहनसिंह भकना

"वैल सोहनसिंह! इस वक्त तुम हमारे पास क्यों आया है और तुम्हारे साथ यह नौजवान कौन है?"

"महोदय! यह मेरा मित्र इंदरसिंह है, जो काम-धंधे की तलाश में हिंदुस्तान से यहाँ अमेरिका आया है। आप अपने कारखाने में इसे कोई नौकरी दे दें, इसी काम से मैं आपके पास हाजिर हुआ हूँ।"

"वैल इंदरसिंह! हम तुमसे एक सवाल पूछते हैं, और वह यह कि इस वक्त तुम्हारे हिंदुस्तान की आबादी कितनी है?"

"महोदय! इस वक्त मेरे मुल्क की आबादी तकरीबन तीस करोड़ होगी।"

"वैल! अब यह बताओ कि हिंदुस्तान में अंग्रेज लोग कितने होंगे?"

"मेरा अनुमान है कि हिंदुस्तान में अंग्रेजों की संख्या तकरीबन सवा लाख होगी।"

"ओ माई गॉड! तो क्या सवा लाख अंग्रेज तीस करोड़ हिंदुस्तानियों पर हुकूमत कर रहे हैं? क्या हिंदुस्तान के आदमी मुरदे हैं, जो मुट्ठी-भर लोग उनपर हुकूमत कर रहे हैं? ऐसे मुल्क के लोगों के साथ मेरी कोई हमदर्दी नहीं है। अगर तुम आदमी हो तो हिंदुस्तान लौट जाओ और जिस तरह बने, अंग्रेजों को वहाँ से

भगा दो। तुम अपने देश को आजाद करके आओगे तो मैं तुम्हारा स्वागत करूँगा और अपने कारखाने में तुम्हें काम नहीं, हिस्सा दूँगा। इस वक्त मैं तुम्हारी शक्ल भी नहीं देखना चाहता।''

एक अमेरिकन के हाथों शब्दों का कोड़ा खाकर दोनों भारतीय नौजवान सिटपिटा गए। उलटे पाँव लौट जाने के अलावा वे कर ही क्या सकते थे।

सोहनसिंह भकना नाम का नौजवान अतीत की गहराइयों में खो गया। उसको वह दृश्य याद आ गया, जब वह पहली बार सानफ्रांसिस्को नगर के एक होटल में बड़ी मुश्किल से जगह पा सका था। उसे याद आ गया कि होटल के डाइनिंग रूम में कुछ विदेशी लोग राष्ट्रीय झंडों का एक एलबम देख रहे थे। उसे याद आया कि एक विदेशी ने उससे पूछा था कि इन झंडों में तुम्हारे देश का झंडा कौन-सा है? उसे याद आया कि यूनियन जैक को पहचानकर उसने उसके ऊपर उँगली रख दी थी और उसके ऐसा करने पर सभी लोग जोर से हँस पड़े थे। उसे याद आया कि उनकी हँसी में घृणा और तिरस्कार के भाव थे। उनमें से एक के द्वारा कहे गए शब्द अभी भी उसके कानों में गूँज रहे थे—

'यह यूनियन जैक तो अंग्रेज लोगों का झंडा है, जिनके तुम हिंदुस्तानी लोग गुलाम हो। गुलाम लोगों का तो मर जाना ही अच्छा। तुम लोग न केवल अपने देश के लिए, बल्कि सारे विश्व के लिए कलंक हो।'

जब पहली बार उस नौजवान सिख युवक सोहनसिंह भकना ने यह लताड़ सुनी थी तो वह तिलमिला गया था। उसने संकल्प कर लिया था कि गुलामी का जीवन व्यतीत करने से तो मर जाना अच्छा है। यद्यपि उसने अमेरिका में अपना अच्छा कारोबार जमा लिया था; पर वह अपना अधिकांश समय क्रांतिकारी संगठन खड़ा करने में लगा रहा था। इसके पहले जब वह भारत में था, तो वह नामधारी संप्रदाय में बारह वर्षों तक भारत की आजादी के आंदोलन में भाग ले चुका था। उसका वह अनुभव अमेरिका में उसके काम आया।

सोहनसिंह भकना जैसे असंख्य लोगों के दिलों में भारत की आजादी की तड़प थी। उन लोगों ने 'हिंदुस्तानी एसोसिएशन' नाम की एक संस्था बना डाली। बाद में यही संस्था 'गदर पार्टी' के रूप में परिवर्तित हुई और उसके पहले प्रधान के रूप में सोहनसिंह भकना को ही चुना गया।

सोहनसिंह भकना को लगा कि जैसे उसे अब सही काम मिला है। उसे भारत से आए हुए महान् क्रांतिकारी लाला हरदयाल का भी सहयोग मिला। गदर पार्टी का काम जोरों से चल निकला। सोहनसिंह भकना के ऊपर आजादी का नशा चढ़ गया। उसने घूम-घूमकर अमेरिका और कनाडा में गदर पार्टी की गई शाखाएँ

कायम कर दीं। 'गदर' नाम का अखबार उनकी पार्टी का मुख पत्र था। निश्चय किया गया कि हजारों की संख्या में प्रवासी भारतीय लोग जत्थे बनाकर आजादी की लड़ाई में भाग लेने के लिए हिंदुस्तान पहुँचें।

सोहनसिंह भकना के जीवन का वह एक सुनहरा दिन था, जब वह हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में भाग लेने के लिए एक जत्थे का नेतृत्व करता हुआ जहाज द्वारा हिंदुस्तान जा रहा था। जहाज का सफर उसे बहुत लंबा लग रहा था। वह चाह रहा था कि उन सभी लोगों को पंख मिल जाएँ और वे फौरन उड़कर हिंदुस्तान पहुँच जाएँ। जैसे-तैसे रास्ता कटा, पर यह क्या! अंग्रेजों को इन क्रांतिकारियों की गंध लग चुकी थी। बंदरगाह पर जहाज लगते ही अंग्रेज पुलिस ने उन्हें घेर लिया। कुछ लोग जैसे-तैसे भाग निकले, पर सोहनसिंह भकना इस यत्न में सफल नहीं हो सका। पुलिस की सतर्क आँखें उसीपर थीं; क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य की नजर में वह सबसे अधिक खतरनाक क्रांतिकारी माना जाता था।

पंजाब की मांटगुमरी जेल की कोठरी में पड़ा-पड़ा सोहनसिंह भकना सुनता रहता था कि उसके बचे-खुचे साथियों ने विप्लव यज्ञ की संरचना की। आजादी के उस महायज्ञ में उसके बहुत से साथियों ने अपने जीवन की आहुतियाँ दीं। कुछ लोग गोलियों से भून डाले गए और कुछ ने फाँसी के फंदे चूमे।

शहीदों की कुर्बानियाँ आखिर रंग लाईं। सोहनसिंह भकना का सपना साकार हुआ। अब वह जेल में नहीं, स्वाधीन भारत का स्वतंत्र नागरिक था। संघर्ष के एक लंबे दौर का उसे अनुभव था। अकसर ही लोग उसे छेड़ बैठते—

'हाँ बाबा! तो अमेरिका में आपने अपने साथियों के दिलों में भारत की आजादी की चिनगारी किस तरह रखी?'

और बाबा थे, जो एक बार चालू हुए तो रुकने का नाम नहीं लेते थे; और लोग थे, जो उनके मुँह से भारत की आजादी के यत्नों एवं कुर्बानियों की कहानियाँ सुनते अघाते नहीं थे।

एक दिन आया, जब बाबा सोहनसिंह भकना स्वाधीन भारत की कहानियाँ अपने शहीद साथियों को सुनाने के लिए उतावले हो गए और मौत के यान पर सवार होकर उस लोक में जा पहुँचे।

□

★ लाला हरदयाल

लाला हरदयाल

लाला हरदयाल जैसे अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् तथा क्रांतिकारी के लिए यह बात अशोभनीय-सी लगती है; पर यह सच है कि उसने ऐसा किया। उसके मन में मेरठ से एक लड़की को उड़ाकर लंदन ले जाने की बात समा गई। इस कार्य के लिए उसने दृढ़ संकल्प कर लिया और योजना भी बना ली। लड़की के पिता को इस षड्यंत्र का पता चल गया और उसने अपनी लड़की का घर से बाहर निकलना बंद कर दिया। एक दिन लड़की ने मर्दाना कपड़े पहने और चुपके से गली के मोड़ तक खिसक गई। वहाँ हरदयाल एक ताँगे में उसका इंतजार कर रहा था। लड़की ताँगे में बैठी, ताँगा अपनी पूरी रफ्तार से दौड़ा और वे दोनों स्टेशन जा पहुँचे। सहायता के लिए मित्रगण वहाँ पहले ही पहुँच गए थे और उन्होंने मेरठ से बंबई के दो टिकट पहले ही खरीद लिये थे। हरदयाल और वह लड़की दोनों गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी छूटने ही वाली थी।

इधर घर में लड़की को न पाकर उसके चाचा व भाई भी सपाटे से स्टेशन पहुँच गए और उन्होंने हरदयाल के साथ लड़की को गाड़ी में बैठा देख लिया। उन लोगों ने बलपूर्वक लड़की को गाड़ी में से खींच लेना चाहा; पर हरदयाल के युवक मित्र भी कम न थे। हरदयाल के एक-एक मित्र ने लड़की के परिवार के एक-एक व्यक्ति को बलपूर्वक अपनी बाँहों में कस लिया और उन्हें गाड़ी में नहीं चढ़ने दिया। लड़की के परिवारवाले चिल्लाए—

''यह क्या करते हो जी?''

हरदयाल खिड़की में पास ही बैठे थे। चट से बोल उठे—

''अजी जनाब! प्रेम और युद्ध में सबकुछ जायज है।''

इतने में ही गाड़ी चल दी। हरदयाल के मित्रगण लड़की के परिवारवालों को जकड़े रहे और हरदयाल खिड़की में से मुँह निकालकर अपने मित्रों और लड़की के परिवारवालों को 'टा! टा!' करते हुए उस लड़की को उड़ा ले गए।

सभी लोगों को लाला हरदयाल जैसे अप्रतिम विद्वान् तथा घोर क्रांतिकारी का यह कार्य निंदनीय और अशोभनीय लगेगा; पर एक बात हरदयाल के पक्ष में बहुत ही जोरदार है और वह यह कि वे किसी अन्य लड़की को नहीं, अपनी ही पत्नी को उड़ाकर लंदन ले गए। पुराने विचारोंवाले उनके श्वसुरजी अपनी बेटी को विलायत नहीं भेजना चाहते थे और इसीलिए उन्होंने उसपर कई पाबंदियाँ लगा दी थीं। वे हरदयाल थे, जिन्होंने अपना क्रांतिकारी रूप दिखा ही दिया और विचित्र योजना द्वारा अपनी पत्नी को भारत से विलायत ले गए। वहाँ उसे पढ़ाया-लिखाया और क्रांति के रंग में रँग दिया। क्या यह भी हरदयाल का क्रांतिकारी कदम नहीं था!

निश्चित ही हरदयाल का रोम-रोम क्रांतिकारी था। जिसे अंग्रेजी में 'जीनियस' या 'इंटिलेक्चुअल जाइंट' कहा जाता है, वही थे हरदयाल। एक दिन लाहौर कॉलेज के सभाभवन में अपनी विलक्षण स्मृति का प्रदर्शन करके उन्होंने लोगों को हैरत में डाल दिया। एकं प्रतिद्वंद्वी को सामने बैठाकर उसके साथ शतरंज खेलने लगे। पाँच मिनट का निश्चित समय उन्हें दिया गया था। इन पाँच मिनटों के पूरे समय तक एक व्यक्ति एक घंटी बजाकर टन-टन करता गया। अरबी भाषा का एक विद्वान् अरबी की एक कविता पढ़ता रहा। साथ-ही-साथ लैटिन भाषा का एक अन्य विद्वान् लैटिन भाषा की कविता पढ़ता रहा। गणित का एक बहुत कठिन सवाल एक कॉपी पर लिखकर हरदयाल के सामने रखकर उनके हाथ में पेंसिल दे दी गई।

पाँच मिनट के समय में हरदयाल ने सब काम एक साथ कर डाले। शतरंज के खेल में अपने शातिर प्रतिद्वंद्वी को उन्होंने मात दे दी। उतने ही समय में गणित का कठिन प्रश्न भी हल कर दिया। उन्होंने घंटी की टन-टन की संख्या बिलकुल ठीक बता थी। अक्षरश: उन्होंने अरबी की कविता भी सुना दी और लैटिन की भी। ऐसी प्रतिभा के धनी व्यक्ति को यदि 'जीनियस' नहीं कहा जाए तो क्या कहा जाए!

लाहौर विश्वविद्यालय से हरदयाल ने 'अंग्रेजी भाषा और साहित्य' में एम.ए. की परीक्षा दी। एक वर्ष में ही आठों परचे हल किए। उन दिनों एम.ए. के अंग्रेजी के परचे अधिकतर अंग्रेज प्रोफेसर ही जाँचते थे। हरदयाल को आठ सौ में से सात सौ छिहत्तर, अर्थात् सत्तानबे प्रतिशत अंक मिले।

उच्च अध्ययन के लिए हरदयाल लंदन के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे। प्राध्यापक लोग जो निबंध लिखने के लिए देते थे, उन्हें पढ़कर कह उठते थे—

''मिस्टर हरदयाल, आपने जो कुछ निबंध में लिख दिया है, उससे आगे आपको पढ़ाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है।''

सन् १९०५ में लाला हरदयाल जब लंदन के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, उस समय भारत के महान् क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा भी वहाँ रह रहे थे और उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की आवास सुविधा के लिए 'इंडिया हाउस' की स्थापना कर ली थी। लाला हरदयाल और श्यामजी कृष्ण वर्मा में घनिष्ठ संपर्क स्थापित हो गए। भारत के एक अन्य महान् क्रांतिकारी भाई परमानंद भी लंदन में आर्य समाज का प्रचार करने के लिए उन दिनों वहाँ थे और लाला हरदयाल उनसे भी बहुधा मिलते रहते थे। कुछ दिन पश्चात् विनायक दामोदर सावरकर भी लंदन पहुँच गए और उनके रूप में लाला हरदयाल को एक अच्छा क्रांतिकारी मित्र मिल गया। अपने इन मित्रों से परामर्श करके ही वे अपनी पत्नी को लिवाने भारत पहुँचे थे और ऑक्सफोर्ड में ९७, साउथमूर रोड पर रह रहे थे।

लाला हरदयाल के संबंध में यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि मूल रूप से वे दिल्ली के निवासी थे और उनका जन्म १४ अक्तूबर, १८८४ को हुआ था। उनके पिता का नाम गौरीदयाल माथुर और माता का नाम भोली रानी था। मेरठ में लाला हरदयाल की ससुराल थी और उनकी पत्नी का नाम सुंदर रानी था।

लाला हरदयाल के चरित्र की एक विशेषता थी कि जो विचार उनके मन में उत्पन्न होता था, वह नशा जैसा उनके ऊपर छा जाता था। लंदन में रहते हुए उनके मन में यह विचार उत्पन्न हो गया कि अंग्रेजी शिक्षा गुलामी के संस्कार डालती है और यह भारतीयों के लिए बिलकुल भी उपयोगी नहीं है। बस, फिर क्या था, धीरे-धीरे अंग्रेजियत से उन्हें घृणा होने लगी और एक-एक करके वे उसके बंधनों को तोड़ने लगे।

लाला हरदयाल का इंग्लैंड पहुँचना और आई.सी.एस. की तैयारी न करना भी उनका कम त्याग नहीं था। लोगों का खयाल था कि हरदयाल जैसा जीनियस बातों-ही-बातों में आई.सी.एस. करके भारत में बहुत बड़े पद पर प्रतिष्ठित हो जाएगा। लेकिन यह पाठ्यक्रम न अपनाने का जो कारण लाला हरदयाल ने बताया था, वह यही था कि मुझे अंग्रेजों की नौकरी नहीं करनी है। ऑक्सफोर्ड में अध्ययन के लिए उन्होंने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र' विषय लिया था। इस अध्ययन के लिए उन्हें भारत सरकार से काफी अच्छा वजीफा भी मिल रहा था। विश्वविद्यालय से भी

उन्हें दो वजीफे मिल रहे थे। उन्होंने भारत सरकार का वजीफा ठुकराने का निर्णय ले लिया। भाई परमानंद और श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उन्हें वजीफा न ठुकराने का परामर्श दिया तो उनका उत्तर था—

''इंग्लैंड के हाथ भारत के निर्दोष रक्त से रँगे हुए हैं। ऐसे गला-काटू ठगों का पैसा लेना व्यर्थ है।''

और हुआ यही कि उन्होंने एक-एक करके तीनों वजीफे ठुकरा दिए और यह तब, जब वे अपनी पत्नी को भी इंग्लैंड ले गए थे। कुछ प्रबंध श्यामजी कृष्ण वर्मा की तरफ से हुआ और कुछ स्वयं उन्होंने कर लिया। जिंदगी की गाड़ी और अध्ययन दोनों चलने लगे।

हरदयाल तो अंग्रेजियत छोड़ने पर तुले हुए थे। कुछ दिन बाद उनके मन में विचार आया कि वजीफे छोड़ दिए और अंग्रेजी शिक्षा नहीं छोड़ी, इसमें क्या तुक है। बस, फिर क्या था, परीक्षा के बिलकुल निकट पहुँचकर अध्ययन, कॉलेज और विश्वविद्यालय सभी छोड़ दिए। फिर विचार आया कि अंग्रेजी शिक्षा तो छोड़ दी, पर अंग्रेजी लिबास तो बाकी है। यह विचार आते ही अंग्रेजी वेशभूषा छोड़ दी और लंदन में घुटनों तक की धोती, कुरता, पगड़ी, दुपट्टा और देशी जूते पहनकर रहने लगे। इस लिबास की कीमत चुकानी पड़ी और जनाब को निमोनिया हो गया। निमोनिया हो गया तो अंग्रेजी दवा नहीं ली और कुछ घरेलू नुस्खों से ठीक हो गए। अब शरीर से कंबल लपेटकर रहने लगे।

अंग्रेजों के मेस में उनके हाथ का बना खाना भी छोड़ दिया। वे किसी ऐसे भारतीय के घर भी भोजन नहीं करते थे, जो अंग्रेजों की नौकरी करता था। दलिया और खिचड़ी से काम चलाने लगे। यद्यपि वे सपत्नीक रह रहे थे, पर पत्नी को घर-गृहस्थी में जुटाने के बजाय उन्हें अध्ययन में जुटा दिया गया था।

लाला हरदयाल के मन में क्रांतिकारी उपायों द्वारा भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने का भूत सवार हो गया था। वही उन्हें बेचैन किए हुए था। वे चाहते थे कि भारत का हर नौजवान आग का गोला बन जाए और वह अंग्रेजी साम्राज्य को जलाकर रख दे। भारत के नौजवानों को आग के गोले बनाने के लिए वे भारत पहुँचे और लाहौर में एक आश्रम बनाकर रहने लगे। अपनी पत्नी को जब वे मेरठ छोड़कर लाहौर पहुँचे तो पत्नी से वह उनकी अंतिम भेंट थी। जब लाहौर में उन्होंने आश्रम स्थापित कर लिया तो उन्हें समाचार मिला कि उन्हें पुत्री-रत्न की प्राप्ति हुई है। जीवन में उन्हें अपनी पुत्री 'शांति' का मुख देखने का भी अवसर नहीं मिला।

लाहौर के आश्रम में पंजाबी युवक आग के गोलों के रूप में परिवर्तित होने

लगे। कोई भी व्यक्ति एक बार उनके संपर्क में आकर उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता था। नगरवालों पर उनके प्रभाव का नमूना यह था कि जब वे बाजार से निकलते तो लोग उन्हें देख उठ खड़े हो जाते और झुक-झुककर प्रणाम करते।

हरदयाल 'पंजाबी' नाम का एक अखबार भी निकालते थे, जिसमें अंग्रेजी शासन की दृष्टि से काफी आपत्तिजनक सामग्री होती थी। सरकार उनके प्रभाव से शीघ्र ही अवगत हो गई और वह उन्हें गिरफ्तार कर लेने के लिए लालायित हो उठी। वाइसराय की कौंसिल के एक सदस्य ने लाला लाजपतराय को स्थिति समझाते हुए कहा—

''हरदयाल इस समय सर्वोच्च अधिकारियों की नजरों में चढ़ा हुआ है। उसकी जिंदगी बचाने के लिए कुछ दिन के लिए उसे कहीं विदेश में भेज दीजिए।''

लाला लाजपतराय ने हरदयाल के सामने स्थिति स्पष्ट करते हुए स्वयं भी उन्हें बहुत प्रेरित किया कि कुछ समय के लिए वे भारत से बाहर चले जाएँ। उन्होंने तर्क दिया कि उनका जाना भारत के हित में ही होगा, अन्यथा उन जैसा आला दिमाग भारत को हमेशा के लिए खो देना पड़ेगा। हरदयाल भारत छोड़ने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। लाला लाजपतराय और अपने अंतरंग मित्रों द्वारा बहुत अधिक प्रेरित किए जाने पर वे भारत छोड़ने के लिए सहमत हो गए।

लाहौर में स्थापित किया गया आश्रम एक प्रकार से भंग कर दिया गया। लाला हरदयाल के शिष्यों में से हनुमंत सहाय, मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी और भाई बालमुकुंद द्वारा उनके आदर्शों पर दिल्ली में एक विद्यालय खोला गया और उसके माध्यम से क्रांतिकारी युवक तैयार किए जाने लगे।

बड़े भारी हृदय से लाला हरदयाल ने भारत छोड़ा और कोलंबो होते हुए वे इटली पहुँच गए। इटली से वे फ्रांस पहुँच गए, जहाँ पेरिस में श्यामजी कृष्ण वर्मा, मदाम कामा, विनायक दामोदर सावरकर, सरदारसिंह, रेवा भाई, नाना आदि क्रांतिकारियों का जमघट था। पेरिस में मदाम कामा ने 'वंदेमातरम्' नाम का मासिक अखबार निकाला और उसके संपादन का भार लाला हरदयाल को दिया। लाला हरदयाल ने अपनी पूरी योग्यता से उसका संपादन किया और उसके माध्यम से वे अंग्रेजी साम्राज्य पर आग उगलने लगे।

'वंदेमातरम्' का प्रथम अंक १० सितंबर, १९०९ को प्रकाशित हुआ। पहला अंक महान् क्रांतिकारी शहीद मदनलाल धींगरा की स्मृति के लिए समर्पित था। धींगरा ने १ जुलाई, १९०९ को लंदन में कर्जन वायली को गोलियों से भून डाला था और उसे १७ अगस्त, १९०९ को लंदन में ही फाँसी का दंड दिया गया था।

'वंदेमातरम्' के प्रथम अंक में मदनलाल धींगरा के त्याग का उल्लेख करते

हुए अपने संपादकीय लेख में लाला हरदयाल ने लिखा—

'धींगरा हमारा वह अमर वीर है, जिसके संदेश और कार्यों पर हम सदियों तक गौरव का अनुभव करते रहेंगे।

'अपने मुकदमे की हर स्थिति पर धींगरा ने प्राचीन योद्धाओं की वीरता और धैर्य का परिचय दिया है। उसने हमारे दिमागों में मध्यकालीन राजपूत और सिख वीरों की याद ताजा कर दी है, जो मृत्यु को अपनी दुलहिन समझते थे। उसे फाँसी देकर इंग्लैंड सोचता है कि उसने धींगरा को मार दिया। वास्तविकता यह है कि वह हमेशा के लिए अमर हो गया। उसने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य पर घातक प्रहार किया है।'

'वंदेमातरम्' के आगामी अंक भी बलिदानों के संस्मरणों से भरपूर रहे और वे संसार के सभी भारतीयों को देशभक्ति और बलिदान की प्रेरणा देते रहे। भारत की भावनाओं के इस मुख पत्र के लिए लाला हरदयाल अपना खून-पसीना एक करते रहे।

पेरिस में रहते-रहते लाला हरदयाल विपन्नावस्था के शिकार हो गए। उनके कपड़े फटे रहते थे और कभी-कभी भरपेट भोजन भी उनको नहीं मिलता था। मदाम कामा की हालत भी अच्छी नहीं थी। हरदयाल उन व्यक्तियों में से नहीं थे, जो किसीके आगे हाथ फैलाते। इधर ब्रिटिश गुप्तचर भी उनके पीछे पड़ गए थे और ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फ्रांस की सरकार पर उनकी गिरफ्तारी के लिए जोर डाला जा रहा था। ब्रिटिश गुप्तचरों को चकमा देने के लिए फ्रांस छोड़कर कुछ दिन के लिए वे लंदन ही पहुँच गए और वहाँ से वे अलजीयर्स जा पहुँचे। मिस्र के क्रांतिकारियों से उनके संबंध स्थापित हुए और उन्होंने अपने नए मित्रों का अच्छा मार्गदर्शन किया। कुछ दिन के लिए फिर पेरिस लौटकर अंततोगत्वा वे वेस्टइंडीज जा पहुँचे।

लॉ मार्टिनिक द्वीप फ्रेंच उपनिवेश था। वहाँ के अधिकतर निवासी या तो फ्रांसीसी थे या फ्रांसीसी भाषा बोल सकते थे। फ्रेंच भाषा का अच्छा ज्ञान होने के कारण लाला हरदयाल को वहाँ कोई कठिनाई नहीं हुई। समुद्र के किनारे इस द्वीप का बंदरगाह फोर्ट डी फ्रांस था, जो बहुत साफ-सुथरा और खूबसूरत नगर था। वहाँ प्राकृतिक वैभव प्रचुर मात्रा में था। वहाँ लाला हरदयाल को अपने भारतीय भोजन के सभी उपकरण उपलब्ध हो जाते थे। वैसे भोजन की उन्हें कम ही आवश्यकता पड़ती थी। दो स्थानीय व्यक्तियों को वे अंग्रेजी पढ़ाने लगे थे और अपने गुजारे के लिए आवश्यक धन वे कमा लेते थे। एक छोटी-सी कोठरी में रहते थे, जिसका किराया बहुत कम था।

उस नगर में लाला हरदयाल की जीवनचर्या यह थी कि वे सुबह और शाम का अधिकांश समय पहाड़ की एक गुफा में कठिन तपस्या करने में बिताते थे। दोपहर थोड़े समय के लिए वे अपनी कोठरी पर पहुँचते थे और कोई सब्जी उबालकर खा लेते थे। मिर्च का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं था; वे सब्जी में नमक तक नहीं डालते थे। कभी कुछ फल खाकर ही गुजारा कर लेते थे और कभी कुछ भी नहीं खाते थे। कुछ समय वे अपने विद्यार्थियों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए देते थे और रात्रि का काफी समय स्थानीय वाचनालय में व्यतीत करते थे।

लाला हरदयाल इस समय अपने साथियों और क्रांतिकारी आंदोलन से बिलकुल कटे हुए थे; पर वे बहुत समय तक कटे हुए रह न सके। एक दिन उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब अपनी कोठरी के सामने उन्होंने अपने क्रांतिकारी साथी भाई परमानंद को खड़े पाया। लाला हरदयाल ने किसीको भी अपना पता-ठिकाना नहीं दिया था। अपने नाम की डाक वे पोस्ट ऑफिस पहुँचकर ही ले आते थे। भाई परमानंद को यह मालूम था कि वे लॉ मार्टिनिक द्वीप के किसी नगर में हैं। जार्ज टाउन जाते हुए भाई परमानंद का जहाज कुछ घंटों के लिए फोर्ट डी फ्रांस बंदरगाह पर रुका। यह समय उन्होंने लाला हरदयाल की खोज के लिए प्रयुक्त किया। पोस्ट ऑफिस से उनके घर का पता लग नहीं सका। वहाँ के नीग्रो कुलियों में से कुछ लोग टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल लेते थे। एक कुली ने भाई परमानंद को बताया कि एक भारतीय इस नगर में एक कोठरी में रहता है। उस कुली को साथ लेकर वे लाला हरदयाल की कोठरी पर पहुँच गए; पर वहाँ तो ताला पड़ा हुआ था। आसपास के लोगों ने बताया कि इस कोठरी में रहनेवाले का कोई ठिकाना नहीं; क्योंकि वह गुफा में घुस गया तो घंटों तक नहीं लौटता। इधर भाई परमानंद के जहाज के चलने का समय हो रहा था। वे निराश होकर लौटने ही वाले थे कि अपनी सुबह की साधना समाप्त करके लाला हरदयाल अपनी कोठरी पर पहुँच गए। भाई परमानंद को अपनी कोठरी पर देख उनके आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। सबसे पहला काम जो उन्होंने किया, वह यह कि वे भाई परमानंद के साथ जहाज पर गए और उनका असबाब उतारकर ले आए। भाई परमानंद लाला हरदयाल के साथ उस कोठरी में एक महीने तक रहे।

भाई परमानंद में यह विशेषता थी कि वे अपनी बात सामनेवाले के गले उतार देते थे। लाला हरदयाल के साथ उनका एक महीना रहना व्यर्थ नहीं गया। उन्होंने उन्हें तपस्या छोड़कर फिर क्रांति के अखाड़े में उतरने के लिए सहमत कर लिया। वे पेरिस के जीवन और अपने लोगों की स्वार्थवृत्ति से ऊबकर, कुछ दिन एकांत में रहकर शक्ति-संचय के उद्देश्य से वहाँ गए थे। जनवरी १९११ में लाला

हरदयाल ने लॉ मार्टिनिक द्वीप छोड़ दिया। भाई परमानंद ब्रिटिश गायना चले गए।

कुछ दिन बोस्टन ठहरकर लाला हरदयाल अमेरिका के हारवर्ड स्थान पर पहुँच गए। यह उनके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। वहाँ से वे होनोलूलू द्वीप चले गए और समुद्र के किनारे एक गुफा में फिर तपस्या करने लगे। जापानी मजदूर वहाँ काम करते थे। वे लाला हरदयाल के उपदेश सुना करते थे। उनके भोजन की व्यवस्था भी उन्हीं लोगों ने कर दी थी।

अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में भारत के बहुत से सिख और अन्य लोग रहते थे। उनके आग्रह पर भाई परमानंद वहाँ पहुँच गए। भाई परमानंद ने लाला हरदयाल को भी वहाँ बुलवा लिया। लाला हरदयाल, सरदार तेजासिंह, तारकनाथ दास एवं प्रोफेसर आर्थर यू. होप ने मिलकर एक समिति का निर्माण किया और भारत से होनहार तथा तेजस्वी छात्रों को अमेरिका में अध्ययन करने के लिए कुछ वजीफे घोषित किए। छह विद्यार्थी चुने गए और उच्च शिक्षा के साथ-साथ उन्हें क्रांति कार्य के लिए प्रशिक्षित किया जाने लगा।

भाई परमानंद ने सानफ्रांसिस्को और बर्कले में लाला हरदयाल के कुछ भाषण आयोजित कराए। विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकगण दर्शनशास्त्र पर उनके भाषणों पर इतने मुग्ध हुए कि लेलैंड स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत और हिंदू दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक का पद स्वीकार करने के लिए उनको विवश कर दिया। लाला हरदयाल ने यह पद स्वीकार तो कर लिया, पर वे वेतन या पारिश्रमिक के रूप में एक पैसा भी नहीं लेते थे। अमेरिका के लोग 'भारतीय ऋषि' कहकर उनका आदर करते थे। उनकी ख्याति से आकर्षित होकर कैलिफोर्निया का गवर्नर भी उनके निवास-स्थान पर उनके दर्शन के लिए पहुँचा।

अपनी लोकप्रियता और प्रसिद्धि की ओट में लाला हरदयाल अपने देश के कार्य को आगे बढ़ाने में चूकते नहीं थे। उन्होंने अपने अमेरिकन विद्यार्थियों में भी अंग्रेजों के प्रति घृणा फैलाना प्रारंभ कर दिया। उनके प्रत्येक क्रियाकलाप की सूचना गुप्तचर लोग इंग्लैंड और भारत सरकार के पास भेजते रहते थे। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने भी उन्हें इस प्रकार के कार्य न करने का संकेत दिया। लाला हरदयाल प्राध्यापक का पद छोड़कर चल दिए।

अब लाला हरदयाल अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में थे। कभी वे सानफ्रांसिस्को रहते थे तो कभी बर्कले। बर्कले विश्वविद्यालय में उन्होंने कुछ भारतीय विद्यार्थियों को भरती करवा दिया था। विद्यार्थियों को रहने की सुविधा देने के लिए 'नालंदा भवन' की स्थापना कर ली गई थी। अपना अधिकांश समय लाला हरदयाल इन विद्यार्थियों को पक्का क्रांतिकारी बनाने में दे रहे थे। भारत में होनेवाली

घटनाओं से भी उनका संपर्क बना हुआ था।

लाला हरदयाल ने जब सुना कि २३ दिसंबर, १९१२ को दिल्ली दरबार के समय भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज पर चल-समारोह के अंतर्गत चाँदनी चौक में बम का प्रहार किया गया तो इस समाचार को सुनकर वे खुशी के मारे पागल जैसे हो गए। उनके क्रांतिकारी विद्यार्थियों में यह हर्षजनित पागलपन फैल गया। 'वंदेमातरम्' एवं 'भारत माता की जय' का शोर करते हुए वे दौड़ने-भागने लगे और घंटों तक वे नाचते-कूदते रहे। लाला हरदयाल ने तुरंत ही एक सार्वजनिक सभा का आयोजन कर डाला, जिसमें चीन के राष्ट्रवादी नेता डॉ. सनयात सेन भी उपस्थित थे। लाला हरदयाल अपने भावावेश को रोक नहीं सके और अपने भाषण के बीच अंग्रेजी सरकार को चुनौती देते हुए कह उठे—

''पगड़ी अपनी सँभालिए मीर! और बस्ती नहीं, यह दिल्ली है।''

अपनी विस्फोटक भावनाओं को लाला हरदयाल ने 'युगांतर सरक्यूलर' नाम के एक प्रपत्र के द्वारा सारी दुनिया में प्रसारित कर दिया। यह प्रपत्र उन्होंने सन् १९१३ के जनवरी महीने में तैयार किया था। इस प्रपत्र का धमाका लॉर्ड हॉर्डिंग्ज के ऊपर फेंके गए बम के धमाके से कम नहीं था।

बम-प्रहार पर गर्व की अभिव्यक्ति करते हुए प्रपत्र में लिखा गया—

'शाही दरबार का मुँहतोड़ उत्तर दिया है बम विस्फोट ने। यदि ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में दिल्ली का दरबार एक महत्वपूर्ण घटना है, तो हमारे क्रांतिकारी इतिहास में वाइसराय पर बम का प्रहार भी स्वर्ण लेख से कम नहीं है। अच्छा है कि दरबार भी होते रहें और बम-प्रहार भी होते रहें तथा यह क्रम तब तक चले, जब तक कि सारी दुनिया से दरबारों के आयोजन की प्रथा समाप्त न हो जाए।'

लाला हरदयाल ने अपने प्रपत्र में बम विस्फोट की हिमायत करते हुए कहा कि बम विस्फोट के साथ भावनाओं का विस्फोट जुड़ा रहता है और प्रत्येक पराधीन और दलित वर्ग को किसी-न-किसी रूप में अपनी भावनाओं के विस्फोट का अधिकार प्राप्त होता है। उनके शब्द थे—

'जब दुष्ट जन अपने घमंडी सिर आसमान की ऊँचाई तक उठाने लगते हैं और उनकी शक्ति जब अमर्यादित हो जाती है तो निराशा के उन अँधेरे क्षणों में मानवता की रक्षा के लिए बम अवतरित होता है और वह अत्याचारी को धूल में मिला देता है।'

लाला हरदयाल ने भारत के वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज के ऊपर अपनी लेखनी का प्रहार करते हुए लिखा कि बम विस्फोट इस शाश्वत सत्य को प्रतिपादित करता है कि मानव-मानव सभी बराबर हैं और वह या तो कब्र में भेजता है या अस्पताल

में। अन्याय का प्रतिकार करने के लिए बम या अन्य साधनों की हिमायत करते हुए उन्होंने लिखा—

'अनायास ही उन सबके प्रति हमारे मन में आदर का भाव पैदा हो जाता है, जो अन्याय और असमानता का प्रतिकार करते हैं—भले ही यह प्रतिकार वे वाणी की शक्ति से, तलवार से, बंदूक से, हड़ताल से या बम विस्फोट से करें।'

लालाजी ने यह भी स्पष्ट किया कि इसकी कोई बात नहीं कि बम का निशाना ठीक बैठता है या चूकता है, महत्त्व तो इस बात का है कि अन्याय के खिलाफ बम से प्रहार किया गया। उनके शब्द थे—

'किसी भी साम्राज्यवादी या शाही जुलूस पर बम का प्रहार कभी असामयिक और अनुचित नहीं हो सकता; क्योंकि वह शासक वर्ग के जादू को समाप्त करता है और उस सम्मोहन को भंग कर देता है, जिसका काम लोगों को संज्ञाशून्य करना है। बम के विस्फोट में लाखों लोगों का स्वर सम्मिलित रहता है। बम विस्फोट क्रांति की रणभेरी है।'

लाला हरदयाल का युगांतर प्रपत्र किसी बम विस्फोट से कम नहीं था। लाला हरदयाल के इस 'बम विस्फोट' ने भारत एवं इंग्लैंड में खलबली मचा दी और भारत सरकार बार-बार इंग्लैंड की सरकार को लिखने लगी कि किसी-न-किसी प्रकार हरदयाल को गिरफ्तार करके भारत भेजा जाए। लाला हरदयाल इस स्थिति से भलीभाँति अवगत थे; पर उन्होंने इसकी तनिक भी चिंता नहीं की और अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध आग उगलते रहे।

अब अमेरिका में रहनेवाले सभी भारतीयों ने यह अनुभव किया कि विद्रोही भावनाओं को गति प्रदान करने के लिए किसी संगठन का होना आवश्यक है। वहाँ 'दि हिंदुस्तान एसोसिएशन ऑफ दि पैसिफिक ओशन' नाम की एक संस्था पहले से ही थी। उसका नाम अब रखा गया 'दि हिंदी एसोसिएशन ऑफ दि पैसिफिक ओशन' और ऐसे नाम की खोज हुई, जिसको सभी समझ सकते हों। इस संस्था का नाम अब 'गदर पार्टी' कर दिया गया। इस गदर पार्टी के सर्वप्रथम अध्यक्ष, मंत्री और कोषाध्यक्ष क्रमशः सोहनसिंह भकना, लाला हरदयाल और पं. काशीराम थे।

गदर पार्टी का मुख पत्र 'गदर' था, जो उर्दू एवं पंजाबी भाषाओं में छपता था और इसकी कुछ चुनी हुई सामग्री अंग्रेजी में भी छपती थी। संसार के सभी देशों में 'गदर' की प्रतियाँ बिना मूल्य भेजी जाती थीं। प्रतिबंधों के होते हुए भी इसकी प्रतियाँ भारत और विशेष रूप से छावनियों में पहुँचती थीं।

'गदर पार्टी' और 'गदर' के कार्यालय का नाम 'युगांतर आश्रम' था, जो सानफ्रांसिस्को में स्थित था। बहुत से क्रांतिकारी यहाँ रहकर आश्रम जैसा ही जीवन

व्यतीत करके तन-मन-धन से गदर अभियान को गति प्रदान कर रहे थे। गदर आंदोलन की सफलता के लिए लोग स्वयं ही खुले दिल से धन दे रहे थे; पर लाला हरदयाल की वाणी विशेष रूप से लोगों की थैलियाँ खाली करा लेती थी। एक दिन उन्होंने बहुत प्रेरक भाषण दिया, जिससे प्रभावित होकर लोगों ने उन्हें अपार धन देना प्रारंभ कर दिया। लाला हरदयाल ने उस धन को अस्वीकार करते हुए कहा—

''नहीं! नहीं! मैं यह धन नहीं ले सकता। इस धन से शराब की बदबू आ रही है। शराब की बदबू से युक्त इस धन के कारण भारत माता लज्जित होगी और आजादी के प्रयत्नों में भी बदबू आएगी। मैं ऐसा धन स्वीकार नहीं कर सकता।''

लालाजी के इस तिरस्कार का जादू जैसा असर हुआ। लोगों ने खड़े हो-होकर शराब न पीने की प्रतिज्ञाएँ कीं। तब उनका धन स्वीकार किया गया। शराब की आदत छूट जाने से पैसे की बचत होने लगी और वह पैसा आजादी के प्रयत्नों में काम आने लगा।

अमेरिका की सरकार के पास लाला हरदयाल को गिरफ्तार करने के लिए ठोस कारण नहीं थे। इमीग्रेशन कानून के अंतर्गत वह उन्हें गिरफ्तार करने का विचार करने लगी। एक बार उनकी गिरफ्तारी का प्रयत्न निष्फल गया; क्योंकि लालाजी के अंगरक्षक हरनामसिंह और गुरुदत्तसिंह अपनी पिस्तौलें तानकर खड़े हो गए। एक अन्य अवसर पर २५ मार्च, १९१३ को इमीग्रेशन इंस्पेक्टर ने वारंट दिखाकर लाला हरदयाल को गिरफ्तार कर लिया। लालाजी को छुड़ाने के लिए जब जमानत देने का प्रश्न आया तो सभी भारतीय प्रतिस्पर्धा के साथ जमानत देने के लिए थैलियाँ लेकर पहुँच गए। बहुत से अमेरिकन लोग भी लालाजी की जमानत देने के लिए लालायित थे। पाँच सौ डॉलर की जमानत देकर लाल हरदयाल को छुड़ा लिया गया। बाद में जमानत की शर्त भी हटा दी गई और जमानत की राशि गदर पार्टी को लौटा दी गई।

अमेरिका में गदर पार्टी के लोगों को ऐसा लगा कि अमेरिका में हरदयाल का जीवन सुरक्षित नहीं है। क्रांतिकारी अपना जीवन बचाने की चिंता कभी नहीं करता और न कभी वह पलायन करता है; पर जब यदि उसका जीवन देश के काम को आगे बढ़ाने में उपयोगी हो तो उसका उपयोग अवश्य किया जाता है। क्रांतिकारी यह तौलकर देख लेता है कि देश के लिए उसकी मृत्यु उपयोगी है अथवा जीवन, और इसीके अनुसार वह जीवन अथवा मृत्यु में से एक को चुन लेता है।

अमेरिका की गदर पार्टी ने यह निर्णय दिया कि लाला हरदयाल को उस समय अमेरिका छोड़कर यूरोप चले जाना चाहिए; क्योंकि उन लोगों को मालूम था कि लाला हरदयाल जहाँ भी जाएँगे, अपनी प्रतिभा के बल पर लोगों को भारत के पक्ष में कर लेंगे।

गदर पार्टी के निर्णय के अनुसार कुछ दिन के लिए लाला हरदयाल तुर्की गए और वहाँ से इस्माइल हक्की हसाज के नाम से जिनेवा (स्विट्जरलैंड) पहुँच गए। जिनेवा से वे रामदास के नाम से २७ जनवरी, १९१५ को जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुँच गए।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिन थे। बर्लिन में उस समय अन्य भारतीय क्रांतिकारियों ने 'बर्लिन कमेटी' कायम करके आजादी के काम को आगे बढ़ाने का अभियान छेड़ रखा था। इन क्रांतिकारियों में डॉ. चंपक रमन पिल्लई, तारकनाथ दास, अब्दुल हफीज मोहम्मद बरकतुल्ला, डॉ. चंद्रकांत चक्रवर्ती, डॉ. भूपेंद्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानंद के भाई), डॉ. प्रभाकर, वीरेंद्र सरकार और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय प्रमुख थे। लाला हरदयाल के जर्मनी पहुँच जाने पर कार्य और तेजी से चल निकला। उन्होंने क्रांति साहित्य के उत्पादन की योजना प्रारंभ कर दी।

क्रांतिकारियों की योजना यह थी कि अंग्रेजों की शक्ति को कम करके उधर भारत में गदर करा दिया जाए और इधर यूरोप के मोरचे पर उसके शत्रु उसपर चढ़ बैठें। पंजाब में हजारों की संख्या में अमेरिका एवं कनाडा से गदर पार्टी के सदस्य पहुँच रहे थे और पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में गदर आंदोलन का संचालन रासबिहारी बोस व शचींद्रनाथ सान्याल कर रहे थे। बंगाल में ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी बहुत अच्छा कार्य कर रहे थे और वे एशिया तथा यूरोप के क्रांतिकारियों से भी संपर्क बनाए हुए थे।

लाला हरदयाल तथा बर्लिन कमेटी के प्रयत्नों के अनुसार जर्मनी ने कई जहाज भर-भरकर हथियार भारत भेजे और काफी धन भी भेजा; पर उस समय अंग्रेजों की सतर्कता भी गजब की थी। ये जहाज या तो पकड़ लिये गए या डुबो दिए गए। फुटकर रूप से ही भेजे गए कुछ हथियार भारतीयों के हाथ लग सके।

हथियारों से भरे हुए जर्मन जहाजों के पकड़े जाने या डुबोए जाने से लाला हरदयाल निराश नहीं हुए। उन्होंने फ्रांस, स्वीडन, नार्वे, स्विट्जरलैंड, इटली, ऑस्ट्रिया तथा अन्य देशों के क्रांतिकारियों के साथ संपर्क बढ़ाकर भारत के पक्ष में वातावरण निर्मित करने का काम प्रारंभ कर दिया। जर्मनी द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय फौजियों का भी उपयोग करना उन्होंने प्रारंभ कर दिया।

इसी समय भारत के महान् क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप भी जर्मनी पहुँच गए। राजा महेंद्रप्रताप ने जर्मनी के कैसर विलहेल्म को प्रभावित किया और कुछ जर्मनी तथा कुछ भारतीय सदस्यों का एक शिष्टमंडल बनाकर वे अफगानिस्तान चले गए। क्रांतिकारियों का एक दल तुर्की भी पहुँचा।

धीरे-धीरे भारत के पक्ष में जर्मनी का रुख बदलने लगा। भारत भेजे गए

हथियार भरे हुए जर्मन जहाज़ों के पकड़े जाने या डुबोए जाने के कारण जर्मनी को बहुत धक्का लगा। युद्ध में भी जर्मनी की पराजय होने लगी थी। अब वे लाला हरदयाल पर भी शक करने लगे और उनपर निगरानी रखी जाने लगी। यह लाला हरदयाल जैसे देशभक्त का दुर्भाग्य नहीं तो क्या था! उन्होंने जर्मनी छोड़ने का निश्चय कर डाला। बहुत कठिनाइयों के पश्चात् उन्हें स्वीडन पहुँचने में सफलता मिली।

सन् १९१७ में लाला हरदयाल स्वीडन पहुँचे और वहाँ विभिन्न नगरों में लगभग नौ वर्ष रहे। स्वीडन पहुँचते ही उन्होंने स्वीडिश भाषा सीख ली, उस भाषा में बातचीत करने लगे, भाषण देने लगे और स्वीडिश भाषा का अध्यापन भी करने लगे। संसार की चौदह भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था और जो भी भाषा वे बोलते थे, इस प्रकार बोलते थे जैसे जन्म से ही वे वह भाषा बोलते आए हों।

स्वीडन में लाला हरदयाल संत जैसा जीवन व्यतीत करके ज्ञान का अर्जन करते रहे। एक छोटे से कमरे में वे रहते थे। पलंग पर तो वे कभी सोए ही नहीं।

जब उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में दीवारों तथा फर्श पर किताबें रखने की जगह नहीं रही तो उन्होंने एक तंबू खरीद लिया और उसमें रहने लगे। उन्होंने एक नाव भी खरीद ली थी। उबली हुई सब्जियाँ और आलू खाकर ही जीवनयापन करते रहे। वे पक्के शाकाहारी थे। अध्यापकीय क़ार्य करके वे अपनी आजीविका कमाते थे। स्वीडन के बहुत बड़े-बड़े व्यक्ति उनके मित्र और प्रशंसक थे। अपने स्वीडन प्रवास में वे राजनीति से एक प्रकार से कटे रहे।

सन् १९२७ में जब इंग्लैंड की सरकार ने लगभग सभी राजनीतिज्ञों पर से पाबंदियाँ हटा लीं तो लाला हरदयाल को फिर लंदन पहुँचने का अवसर मिल गया। वे २७ अक्तूबर, १९२७ को लंदन पहुँचे। उस समय लंदन में उनके बड़े भाई किशनदयाल और भतीजे भगवतदयाल भी रह रहे थे।

लंदन में लाला हरदयाल लगभग दस वर्ष रहे। सक्रिय राजनीति से तो उस समय वहाँ कोई भाग ले ही नहीं रहा था; पर लाला हरदयाल अवश्य सक्रिय जीवन व्यतीत कर रहे थे। दुनिया-भर की भाषाओं और ज्ञान के धनी तो वे थे ही, उन्होंने अनुभव किया कि विज्ञान के क्षेत्र में उनका दखल नहीं है। यह विचार आते ही उन्होंने विज्ञान में भी स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली। लाला हरदयाल गौतम बुद्ध के बड़े प्रशंसक थे। गौतम बुद्ध के दार्शनिक विचारों पर थीसिस लिखकर सन् १९३१ में उन्होंने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर ली। उनकी थीसिस सभी विद्वानों द्वारा बहुत सराही गई।

उधर भारत में इस बात के प्रयत्न किए जा रहे थे कि ब्रिटिश सरकार उनपर

से भारत पहुँचने की पाबंदी हटा ले। सर तेजबहादुर सप्रू इस दिशा में बहुत अधिक प्रयत्न कर रहे थे। इंग्लैंड में मि. सी.एफ. एंड्रूज एक ईसाई मिशनरी थे, जो भारत में प्राध्यापक रह चुके थे। इंग्लैंड में उनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे भी लाला हरदयाल के पक्ष में अपने प्रभाव का उपयोग कर रहे थे। सभी के प्रयत्न काम आए और लाला हरदयाल को भारत पहुँचने की अनुमति मिल गई।

जिस समय लाला हरदयाल को भारत पहुँचने की अनुमति के समाचार मिले, उस समय वे इंग्लैंड में नहीं थे। अमेरिका में उनके भाषणों की शृंखला आयोजित की गई थी और वे अपने भाषणों को स्थगित करके अमेरिका नहीं छोड़ना चाहते थे। भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में लाला हरदयाल स्वामी विवेकानंद की भाँति ही दिग्विजय करने में लगे हुए थे।

भारत के लोग लाला हरदयाल के आगमन की प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहे थे। भारत अपने इस क्रांतिकारी और विश्व-विख्यात विद्वान् पुत्र के अनुकूल ही स्वागत की तैयारियों में संलग्न था। उनके अमेरिका के पते से अनुमति-पत्र भेजा गया और यथोचित धनराशि भेजी गई। भारत के लोग प्रतीक्षा कर रहे थे अपने प्यारे साथी और नेता के स्वदेशागमन की; पर उधर से आया एक बहुत दारुण और हृदय-द्रावक समाचार कि लाला हरदयाल अब इस दुनिया में नहीं हैं। समस्त भारत इस दारुण समाचार को सुनकर सन्न रह गया और देश-भर में राष्ट्रीय शोक जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई।

लाला हरदयाल अपने जीवन के अंतिम दिनों में अमेरिका के फिलेडैलफिया स्थान पर थे। उनकी मृत्यु वहाँ ४ मार्च, १९३९ में हुई। मृत्यु के पहले वे पूर्ण स्वस्थ थे और उनके स्वास्थ्य से किसी भी प्रकार की कमजोरी के कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते थे। अपने ठहरने के स्थान पर नित्य की भाँति ३ मार्च की रात्रि को वे अपने बिस्तर पर सोए; पर सुबह उन्हें मृत अवस्था में पाया गया। लाला हरदयाल के एक शिष्य और क्रांतिकारी श्री हनुमंत सहाय का कहना है कि उनकी मृत्यु स्वाभाविक न होकर किसी षड्यंत्र के फलस्वरूप हुई है। उनका कहना है कि द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो जाने पर वे भारत की आजादी के लिए उसका उपयोग करना चाहते थे और अपने कुछ मित्रों को उन्होंने अपनी योजना बताई भी थी। हनुमंत सहाय के विश्वास के अनुसार, फिलेडैलफिया में लाला हरदयाल की हत्या की गई है। यह संदेह इस बात से और दृढ़ होता है कि लाला हरदयाल की मृत्यु के समाचार भारत में वास्तविक तारीख से चार सप्ताह बाद पहुँच सके। उस समय समुद्री तार भेजने की सुविधाएँ भी थीं। जो भी हो, लाला हरदयाल ने एक शहीद की मृत्यु वरण की। वे देश के लिए जिए और देश के लिए मरे। अपने संपूर्ण जीवन

में वे राजा जनक की भाँति विदेह अवस्था में जिए और ऋषि दधीचि की भाँति भारत की आजादी के लिए ही उन्होंने प्राण-त्याग किए।

अभी भारत को अपने इस महान् सपूत की स्मृति का यथोचित सम्मान करना शेष है।

□

★ हरनामसिंह तुंडिलात

क्रांतिकारी हरनामसिंह तुंडिलात कई नामों से जाने जाते हैं। बाद में वे बाबा हरनामसिंह के नाम से ज्यादा जाने गए। उन्होंने एक लेख में अपने विषय में भी जानकारी दी है।

हरनामसिंह पंजाब के रहनेवाले थे और अमेरिका पहुँचकर खेतों में मजदूरी का काम करने लगे थे। गदर पार्टी की लहर में वे भी आ गए और गदर पार्टी के प्रभावशाली सदस्यों में उनकी गिनती होने लगी। उन्हीं दिनों लाला हरदयाल अमेरिका पहुँचे। गदर पार्टी के सदस्य होने के साथ वे 'गदर' पत्र के संपादक भी थे। लाला हरदयाल को क्रांति संगठन के कार्य से अमेरिका में सभी ओर घूमना पड़ता था और अमेरिकनों द्वारा उनका विरोध भी होने लगा था। इस बात को ध्यान में रखते हुए हरनामसिंह और करतारसिंह सराबा को उनका अंगरक्षक बना दिया गया था। ये लोग भरी हुई पिस्तौलों के साथ लाला हरदयाल के साथ रहा करते थे।

इसी संदर्भ में सानफ्रांसिस्को में एक घटना घटित हुई। १६ मार्च, १९१४ को जब लाला हरदयाल अमेरिकन लोगों की एक सभा में भाषण देने के लिए ट्राम से उतरकर सभास्थल की ओर जाने लगे तो पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और कार में बैठाकर ले जाने लगी। उसे ऐसा करते देख हरनामसिंह और करतारसिंह सराबा अपनी-अपनी पिस्तौलें तानकर खड़े हो गए। पुलिस स्थिति को टाल गई। वह लाला हरदयाल से वारंट पर हस्ताक्षर कराके लौट गई।

हरनामसिंह बम बनाना सीखने लगे। एक दिन बम बनाते हुए उनका बायाँ हाथ उड़ गया। अब वे एक हाथ के रह गए। लेकिन उनकी मस्ती फिर भी नहीं गई। साथी लोग उन्हें 'हरनामसिंह टुंडा लाट' कहने लगे। वे स्वयं को किसी लाट (लॉर्ड) से कम नहीं समझते थे। टुंडा लाट से उनका नाम टुंडी लाट हो गया। यही नाम अंग्रेजी में लिखा जाने के कारण 'तुंडिलात' हो गया।

भारतवर्ष में गदर फैलाने के उद्देश्य से अपने अन्य गदर वीरों के साथ

हरनामसिंह तुंडिलात भी भारत पहुँच गए और छावनियों में पहुँचकर फौजियों को भड़काने का काम करने लगे। उन्हें एक हाथ का देखकर उनपर अधिक शक नहीं किया जाता था। जब लाहौर में गदर पार्टी के लोगों में मुखबिर कृपालसिंह भी घुस गया, तो यह हरनामसिंह तुंडिलात की ही सूझबूझ थी कि उन्होंने उसके पीछे अपना एक जासूस लगा दिया, जिसने आकर उन्हें बताया कि कृपालसिंह छावनी जाने के पहले कुछ सूचना देने पुलिस के दफ्तर में भी गया था। वह पुलिस को सूचना दे आया था कि २१ फरवरी, १९१५ विप्लव की तिथि निश्चित की गई है।

कृपालसिंह के लौटने के पूर्व ही हरनामसिंह तुंडिलात को सूचना मिल चुकी थी कि वह पुलिस के दफ्तर में गया था। उस समय उसके साथ लाला रामसरनदास और अमरसिंह भी थे। इशारों से उन्होंने तय किया कि कृपालसिंह की हत्या कर दी जाए। मकान बाजार में स्थित होने के कारण पिस्तौल चलाना ठीक नहीं समझा गया। इशारों से ही तय हुआ कि उसे गला घोंटकर मार दिया जाए। हरनामसिंह तुडिलात एक हाथ के आदमी थे, अत: वे यह काम नहीं कर सकते थे। लाला रामसरनदास बहुत कमजोर और दुबले-पतले व्यक्ति थे। अमरसिंह नौजवान था; पर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। स्थिति कृपालसिंह के पक्ष में रही।

गदर योजना विफल हो जाने के पश्चात् करतारसिंह और जगतसिंह के साथ अफगानिस्तान जानेवालों में तीसरे साथी हरनामसिंह तुंडिलात भी थे। कुछ विचार करके वे तीनों साथी अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश करके भी भारत लौट आए और सरगोधा के चक नं. ५ के फौजियों को भड़काते हुए गिरफ्तार कर लिये गए। लाहौर षड्यंत्र केस में करतारसिंह और जगतसिंह को तो फाँसी का दंड मिला, पर हरनामसिंह को आजीवन कारावास का दंड दिया गया।

□

★ बाबू हरिनामसिंह

बाबू हरिनामसिंह सचमुच ही हरि नाम के मतवाले थे। फौज में नौकरी कर लेने के पश्चात् भी हरि नाम आपसे नहीं छूटा और एक संकीर्तन मंडल बनाकर आप हरि नाम का स्मरण किया करते थे। कई बार आपको पश्चात्ताप होता था कि थोड़े से रुपयों के लिए कहाँ से यह नौकरी गले से लगा ली। फौज की नौकरी छोड़ने के लिए आप उचित अवसर की तलाश में थे। प्रसिद्ध क्रांतिकारी बलवंतसिंह भी फौज की नौकरी करते हुए आप ही के संपर्क में आकर हरिभक्त हुए थे। संयोग भी ऐसा

बाबू हरिनामसिंह

हुआ कि दोनों ने एक साथ ही फौज की नौकरी छोड़ी। फौज में नौकरी करने के पहले बाबू हरिनामसिंह का समय होशियारपुर जिले के 'साहरी' गाँव में व्यतीत हुआ था, जो आपका जन्म-स्थान था। आपके पिता का नाम लाभसिंह था। हाई स्कूल में पढ़ते हुए ही हरिनामसिंह ने फौज में नौकरी कर ली थी।
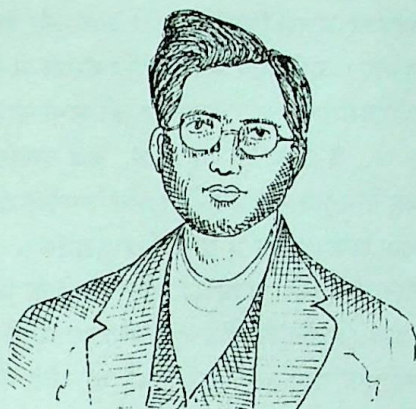
डेढ़ वर्ष फौज की नौकरी करने के पश्चात् उसे छोड़कर कुछ दिन के लिए हरिनामसिंह बर्मा चले गए और फिर हांगकांग जा पहुँचे तथा वहाँ ट्राम गाड़ी के विभाग में नौकरी कर ली। उन दिनों हांगकांग में कनाडा के इमीग्रेशन विभाग के सताए हुए बहुत से भारतीय पहुँचते थे। ये लोग बहुत खर्च करके और बड़ी आशा लगाकर कनाडा पहुँचते थे; पर इमीग्रेशन विभागवाले उन्हें भारत से कनाडा का सीधा टिकट न होने के कारण कनाडा में नहीं उतरने देते थे और उन्हें वापस हांगकांग पहुँचना पड़ता था। इस दोहरी यात्रा में उनके पास का सब पैसा खत्म हो जाता था और वे लोग भूखों मरने की स्थिति तक पहुँच जाते थे। ऐसे ही असहाय भारतीयों की सेवा हरिनामसिंह हांगकांग में रहकर किया करते थे। वे उन्हें वहाँ काम दिलाते थे और यथास्थान भिजवाते रहते थे।

कुछ दिन हांगकांग में रहने के बाद हरिनामसिंह की इच्छा स्वयं भी कनाडा जाने की हुई और तिकड़म लगाकर आप वहाँ पहुँच भी गए। कनाडा में रहकर आपने अच्छा पैसा कमाया। बचे हुए पैसे का आप बहुत सदुपयोग करते थे। आप वह पैसा भारत भेज देते थे—जो योग्य, होनहार और निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए खर्च किया जाता था।

कनाडा में कुछ दिन रहने के बाद हरिनामसिंह अमेरिका पहुँच गए और वहाँ सीएटल नगर में रहकर स्वयं भी उच्च अध्ययन करने लगे।

हरिनामसिंह एक स्थान पर टिकनेवाले व्यक्ति नहीं थे। जब उन्होंने देखा कि कनाडा में इमीग्रेशन विभागवाले भारतीयों को बहुत तंग करते हैं, तो उनसे निबटने-सुलझने के लिए आप फिर कनाडा जा पहुँचे और 'दि हिंदुस्तान' नाम का एक अखबार निकालने लगे। आपको अड़तालीस घंटे के अंदर कनाडा से चले जाने के लिए नोटिस मिला। अमेरिका में एक अमेरिकन महोदय मि. रैमिसबर्ग से

आपकी अच्छी मित्रता थी। वे आए और हरिनामसिंह को कनाडा से फिर अमेरिका ले गए। वहाँ आप बर्कले यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगे। अमेरिका में रहते हुए बाबू हरिनामसिंह 'गदर' अखबार की सभी तरह से सहायता कर रहे थे।

वे दिन आ पहुँचे थे, जब कनाडा में 'कामागाटामारू' नाम का जहाज भारतीयों को लेकर पहुँचा और उसके यात्रियों को कनाडा के तट पर नहीं उतरने दिया गया। यूरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ चुका था और गदर की लहर भी जोरों से चल चुकी थी। गदर का प्रचार करने के लिए बाबू हरिनामसिंह चीन, जापान और स्याम (थाईलैंड) होते हुए बर्मा जा पहुँचे। उन दिनों सुदूर पूर्व में भी अंग्रेजों के खिलाफ वातावरण बन चुका था और भारतीय फौजों ने सिंगापुर में अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत कर दी थी। इस बगावत को भड़काने में बाबू हरिनामसिंह जैसे क्रांतिकारियों का हाथ था। परिणाम यह हुआ कि उन्हें मांडले में गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग चला और उन्हें मृत्युदंड सुना दिया गया। एक बार हरिनामसिंह जेल से भी निकल भागे; पर दोबारा पकड़ लिये गए। उन्हें बर्मा में ही फाँसी पर लटका दिया गया। अपने वतन से दूर रहकर वतन के एक दीवाने ने वतन की आजादी के लिए अपने प्राण दे दिए।

□

★ भाई हृदय रामसिंह

हिमाचल प्रदेश निवासी भाई हृदय रामसिंह ने भी अपना संपूर्ण जीवन क्रांतिकारी आंदोलन को समर्पित कर दिया था।

सन् १९१४ में उन्होंने लाहौर को केंद्र बनाकर क्रांतिकारियों का संगठन किया। वे श्री रासबिहारी बोस के निकट संपर्क में भी रहे। १४ फरवरी, १९१५ को उन्हें गिरफ्तार कर, शासन के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया गया। उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई तथा बाद में उसे आजीवन कारावास में बदल दिया गया। उन्होंने अंडमान की जेल में विनायक दामोदर सावरकर, भाई परमानंद तथा आशुतोष लाहिड़ी के साथ अनेक यातनाएँ सहन कीं।

□□□
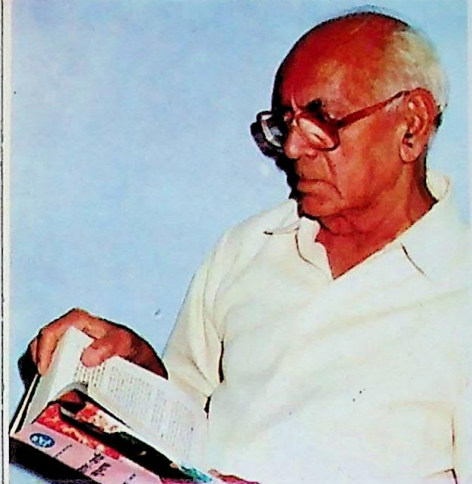
श्रीकृष्ण 'सरल'

जन्म : १ जनवरी, १९१९ को अशोक नगर, गुना (म.प्र.) में।

श्रीकृष्ण सरल उस समर्पित और संघर्षशील साहित्यकार का नाम है, जिसने लेखन में कई विश्व कीर्तिमान स्थापित किए हैं। सर्वाधिक क्रांति-लेखन और सर्वाधिक महाकाव्य (बारह) लिखने का श्रेय सरलजी को ही जाता है।

श्री सरल ने एक सौ सत्रह ग्रंथों का प्रणयन किया। नेताजी सुभाष पर तथ्यों के संकलन के लिए वे स्वयं खर्च वहन कर उन बारह देशों का भ्रमण करने गए, जहाँ-जहाँ नेताजी और उनकी फौज ने आजादी की लड़ाइयाँ लड़ी थीं।

श्रीकृष्ण सरल स्वयं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे तथा प्राध्यापक के पद से निवृत्त होकर आजीवन साहित्य-साधना में रत रहे। उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'भारत-गौरव', 'राष्ट्र-कवि', 'क्रांति-कवि', 'क्रांति-रत्न', 'अभिनव-भूषण', 'मानव-रत्न', 'श्रेष्ठ कला-आचार्य' आदि अलंकरणों से विभूषित किया गया।

निधन : १ सितंबर, २००० को।